

आनन्दाश्रमसंस्कृतग्रन्थावलिः ।

ग्रन्थाङ्कः ७०

श्रीधराचार्यविरचितः

स्मृत्यर्थसारः

वे० शा० सं० रा० रा० वैद्योपाध्वै रङ्गनाथशा-
स्त्रिभिः संशोधितः ।

स च

हरि नारायण आपटे

इत्यनेन

पुण्याख्यपत्तने

आनन्दाश्रममुद्रणालये

आयसाक्षरैर्मुद्रयित्वा

प्रकाशितः ।

शालिबाहनराकाब्दाः १८३४

ख्रिस्ताब्दाः १९१२

(अस्य सर्वेऽधिकारः राजशासनानुसारेण स्वायत्तीकृताः)

मूल्यमाणकदशकाधिको रूपकः । (रु० १०१०)

आदर्शपुस्तकोल्लेखपत्रिका ।

अस्य स्मृत्यर्थसाराख्यग्रन्थस्य पुस्तकानि यैः परहितैकपरतया संशोधनार्थं दत्तानि तेषां नामादीनि पुस्तकानां संज्ञाश्च कृतज्ञतया प्रदर्श्यन्ते—

(क.) इति संज्ञितम्—ववतमाळनिवासिनां डाक्टर नरहरगोपाळ सरदेसाई इत्येतेषाम् ।

(ख.) इति संज्ञितम्—पुण्यपत्तननिवासिनां रा० रा० गंगाधर कृष्ण आपटे इत्येतेषाम् ।

(ग.) इति संज्ञितम्—नंदुरबारनिवासिनां वे० शा० बाळशास्त्री इत्येतेषाम् ।

(घ.) इति संज्ञितम्—खेडनिवासिनां रा० रा० नागूभाऊ वकील इत्येतेषाम् । अस्य लेखनकालः शके १७०९, पूवङ्कनामसंवत्सरः ।

समाप्तेयमादर्शपुस्तकोल्लेखपत्रिका ।

अथ स्मृत्यर्थसारविषयानुक्रमणिका ।

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|--|---------------|---|-------------|
| मङ्गलम् | १ | अथ गोत्रप्रवरनिर्णयः ... | १४ |
| परिमाषा ... | १ | विवाहे कन्यार्तौ कर्तव्यम् ... | १७ |
| युगधर्माः ... | २ | विवाहे सूतकाभावः ... | १ |
| तत्र संस्काराः ... | ३ | अथाऽऽह्निकम् ... | १८ |
| तत्कालातिक्रमे प्रायश्चित्तम्. | १ | मूत्राद्युत्सर्गविधिः ... | १ |
| अथोपनयनम् ... | १ | अथ शौचविधिः ... | १ |
| षण्ढादिसंस्कारविधिः ... | ४ | अथाऽऽचमनविधिः ... | २० |
| गौणपुत्रपरिगणनम् ... | १ | अथाऽऽचमननिमित्तानि ... | १ |
| अथ यज्ञोपवीतविधिः ... | १ | यज्ञोपवीतनाशे कर्तव्यम् ... | २२ |
| अजिनादिविधिः ... | ५ | अथाऽऽचमनापवादः ... | २३ |
| ब्रह्मचारिधर्माः ... | ६ | अथ दन्तधावनविधिः ... | २४ |
| उपाकर्म ... | १ | अथ स्नानविधिः ... | २५ |
| तत्कालविधिः ... | १ | मध्याह्नस्नाने विशेषः ... | २८ |
| अध्ययनप्रारम्भः ... | १ | अथ ब्रह्मयज्ञतर्पणविधिः ... | २९ |
| अभिवादनविधिः ... | ७ | तिलतर्पणनिषेधः ... | १ |
| अथानध्याया वक्ष्यन्ते ... | ८ | वृद्धौ सत्यां तन्मासे तिलत- र्पणनिषेधः ... | ३० |
| तत्र युगादिमन्वादिपरिग- णनम् ... | ९ | यमतर्पणम् ... | १ |
| अथोत्सर्जनम् ... | ११ | अथाभ्यङ्गस्नानविधिः ... | ३२ |
| तत्कालविधिः ... | १ | भौजनादौ तैलानुज्ञा सर्वदा ... | १ |
| अथ विवाहः ... | १ | अथ संध्याविधिः ... | ३३ |
| विवाहभेदाः ... | १२ | अथ होमविधिः ... | ३४ |
| दत्तकन्याहरणम् ... | १ | प्रतिनिधिविचारः ... | १ |
| परिवेदाद्यद्रूषणम् ... | १३ | हविष्यद्रव्यम् ... | ३५ |
| मूर्धावासिक्तादिसंज्ञा ... | १ | अथ समिधः ... | ३६ |
| विवाहात्परं गृहस्थस्याग्निहो- मदर्शपूर्णमासादिविशे- | | अथ दर्भविधिः ... | १ |
| षधर्माः ... | १४ | अथ बर्हिः ... | ३७ |
| | | अथेधमः ... | ३८ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः | विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|--|-------------|-------------------------------------|-------------|
| अथ सुगादिः | ४२ | पिण्डदानविधिः | ४१ |
| आपद्धोमपक्षाः | ४४ | आमश्राद्धम् | ४२ |
| अथ देवतार्चनविधिः | ४५ | संकल्पविधानम् | ४३ |
| अथ माध्याह्निकम् | ४६ | हेमश्राद्धम् | ४४ |
| अथ ब्रह्मयज्ञः | ४७ | अथ श्राद्धकालविधिः | ४५ |
| अथ देवयज्ञः | ४८ | अथ खण्डतिथिषूच्यते | ४६ |
| अथ बलिहरणम् | ४९ | मृताहाज्ञाने | ४७ |
| अथ पितृयज्ञः | ५० | युगादिमन्वादिनिर्णयः | ४८ |
| अथ श्राद्धविधिः | ५१ | अथ संक्रान्तिनिर्णयः | ४९ |
| अथ श्राद्धकालः | ५२ | अथ पर्वनिर्णयः | ५० |
| अथ मोज्यब्राह्मणाः | ५३ | अथैकादशीनिर्णयः | ५१ |
| अथ निषिद्धा ब्राह्मणाः | ५४ | अथ तिथ्यन्तरनिर्णयः | ५२ |
| पार्वणश्राद्धमुच्यते | ५५ | अथ मलमासनिर्णयः | ५३ |
| दैवम् | ५६ | अथ मक्ष्याभक्ष्यविधिः | ५४ |
| अथ पैत्र्यम् | ५७ | अथ भोजनविधिः | ५५ |
| अथ हविष्याणि | ५८ | ग्रहणे भोजननिषेधः | ५६ |
| अथाहविष्याणि | ५९ | शयनविधिः | ५७ |
| काम्यश्राद्धम् | ६० | अथ द्रव्यशुद्धिः | ५८ |
| अथ वृद्धिश्राद्धम् | ६१ | उपहतिकारणगणनम् | ५९ |
| अथैकोद्दिष्टम् | ६२ | सौवर्णरौप्यताम्राणां शुद्धिः | ६० |
| अथ सपिण्डीकरणम् | ६३ | कांस्यादिशुद्धिः | ६१ |
| श्राद्धे मिथः स्पर्शने | ६४ | सुवसुवादिशुद्धिः | ६२ |
| मातृसपिण्डीकरणम् | ६५ | मृन्मयपात्रशुद्धिः | ६३ |
| अन्वारोहणे तु विशेषः | ६६ | वस्त्रशुद्धिः | ६४ |
| त्रिदण्डिश्राद्धम् | ६७ | धान्यशुद्धिः | ६५ |
| शूद्रप्रेतश्राद्धम् | ६८ | मृच्चर्मातृणकाष्ठादिशुद्धिः | ६६ |
| आहिताग्निश्राद्धम् | ६९ | पुस्तकशुद्धिः | ६७ |
| पित्रोर्मृताहैक्ये श्राद्धक्रमः | ७० | भूतलशुद्धिः | ६८ |
| मृताहैक्ये सह दहने | ७१ | प्रातिमाशुद्धिः | ६९ |
| अपरपक्षश्राद्धम् | ७२ | जलशुद्धिः | ७० |
| क्षित्यश्राद्धम् | ७३ | अन्नशुद्धिः | ७१ |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|-----------------------------------|---------------|--|---------------|
| घृतादिशुद्धिः | ७५ | अथ महापातकिनः | १०० |
| अथ शरीरशुद्धिः | ७६ | अथानुपातकानि ... | १०१ |
| अस्पृश्यस्पर्शने शुद्धिः ... | ७७ | अथ सुरापानसमानि ... | १०१ |
| अथाशौचविधिः ... | ७९ | अथ सुवर्णस्तेयसमानि ... | १०१ |
| शिशुमृताशौचम् | ८० | अथ गुरुतल्पगसमानि ... | १०१ |
| जलदानम् | ८३ | अथोपपातकानि ... | १०१ |
| दुर्मरणे प्रायश्चित्तम् | ८४ | अथ जातिभ्रंशकराणि ... | १०३ |
| पाखण्ड्यादिसंस्कारः | ८५ | अथ संकरीकरणानि ... | १०३ |
| अथ नारायणबलिः | ८६ | अथापात्रीकरणानि ... | १०३ |
| सर्पहते विशेषः | ८६ | अथ मलिनीकरणानि ... | १०३ |
| चण्डालादिहतप्रायश्चित्तम्. | ८७ | अथ महापातकप्रायश्चित्तम्. | १०६ |
| आशौचे कर्मानुज्ञा.... | ८९ | अथ निदेशः ... | १०६ |
| ज्वरितरजस्वलाशुद्धिः | ८९ | अथ सुरापानप्रायश्चित्तम्.... | १०७ |
| आतुरस्नानम् | ९० | अथ मद्यपानप्रायश्चित्तम् | १०७ |
| सूतिकादाहः ... | ९० | अथ सुवर्णस्तेयप्रायश्चित्तम्. | १०८ |
| रजस्वलादाहः ... | ९० | सुवर्णलक्षणम् | १०८ |
| अतीताशौचम् ... | ९० | अथ गुरुतल्पगप्रायश्चित्तम्. | १०९ |
| देशान्तरमृताशौचम् ... | ९० | अथातिपातकानुपातकप्राय- श्चित्तम् ... | १११ |
| देशान्तरनिर्णयः ... | ९१ | अथ महापातकिसंसर्गिप्राय- श्चित्तम् | १११ |
| आशौचनिर्णयः ... | ९१ | अथोपपातकप्रायश्चित्तान्यु- च्यन्ते ... | ११२ |
| एकदिनेऽनेकमृतौ ... | ९२ | गोहत्याप्रायश्चित्तम् ... | ११२ |
| अन्वारोहणविधिः... | ९२ | अथ ब्रात्यादौ प्रायश्चित्तम्. | ११४ |
| चितिभ्रष्टायाः प्रायश्चित्तम् | ९४ | अथ स्तेये प्रायश्चित्तम् ... | ११४ |
| पिण्डादिदानेऽधिकारिणः | ९५ | अथः क्रणानपाकरणे प्राय- श्चित्तम् ... | ११५ |
| अथ श्राद्धक्रमः ... | ९५ | अनाहिताग्निप्रायश्चित्तम् ... | ११५ |
| अथ संन्यासविधिः ... | ९६ | पण्यापण्यविक्रयप्रायश्चित्तम् | ११५ |
| अथ परिव्राजकसंस्कार- विधिः ... | ९८ | अथ परिवेदने प्रायश्चित्तम्. | ११६ |
| अथ संन्यासिनां दहनविधिः | ९९ | | |
| अथ प्रायश्चित्तान्युच्यन्ते.... | ९९ | | |
| तत्र कर्मविपाकः... | ९९ | | |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|---|---------------|--|---------------|
| भृतकाध्यापनादौ प्रायश्चित्तम् | ” | मिथ्याभिशांसने प्रायश्चित्तम् | ” |
| पारदार्ये प्रायश्चित्तम् | ... | अथ रजस्वलानां परस्परस्पर्शने | ... |
| परिवित्तेः प्रायश्चित्तम् | ११८ | रजस्वलानां चण्डालस्पर्शने | १२९ |
| अथ स्त्रीशूद्रविद्वक्षत्रवधे प्रायश्चित्तम् | ... | रजस्वलायाः श्वादिस्पर्शने प्रायश्चित्तम् | ... |
| अन्यहिंसाप्रायश्चित्तम् | ११९ | व्रतस्थाया रजोदृष्टौ | १२७ |
| अथ स्त्रीवधे | ... | रजस्वलाधर्माः | ... |
| किञ्चिदादिलक्षणम् | १२० | अथ सुतानां विक्रये | ... |
| मार्जारदिप्राणिवधे प्रायश्चित्तम् | ... | अथायाज्ययाजने | ... |
| अथ वृक्षच्छेदनप्रायश्चित्तम् | १२१ | अनध्यायाध्ययने | १२८ |
| अथ श्वमार्जारादिदृष्टेषु प्रायश्चित्तम् | ... | पितृमात्रादित्यागे | ... |
| श्वादिदृष्टरजस्वलाप्रायश्चित्तम् | ... | कन्यादूषणे | ... |
| व्रणे कृमिजनने प्रायश्चित्तम् | ” | व्रतलोपे प्रायश्चित्तम् | ... |
| निन्दितार्थोपजीवने प्रायश्चित्तम् | ... | अथामित्यागे | ... |
| नास्तिक्ये प्रायश्चित्तम् | ... | अभोज्यान्नभोजने | १२९ |
| अथ ब्रह्मलोपे प्रायश्चित्तम् | ” | हीनयोनिनिषेवणे | ... |
| संन्यासिनः स्त्रीसङ्गे प्रायश्चित्तम् | ... | अनाश्रमित्वे | १३० |
| संन्यासिनो गृहस्थत्वे प्रायश्चित्तम् | १२३ | परपाकरुचित्वे | ... |
| अनाशकनिवृत्तौ प्रायश्चित्तम् | ” | अथासत्प्रतिग्रहे | ... |
| उपनयनोत्तरं यज्ञोपवीतनाशे प्रायश्चित्तम् | १२४ | अमक्ष्यभक्षणे | ... |
| कृष्णाजिनादिलोपे प्रायश्चित्तम् | ” | भावदुष्टभक्षणे | ... |
| विषमे प्रेषणाच्छिष्यमृतौ प्रायश्चित्तम् | ... | अथ जातिदुष्टेषु | १३१ |
| | ” | अथाशुचिसंस्पृष्टभक्षणे | १३२ |
| | ” | अथाशुचिद्रव्यसंस्पृष्टभक्षणे | १३३ |
| | ” | अथ भावदुष्टभक्षणे | १३५ |
| | ” | अथ कालदुष्टभक्षणे | ” |
| | ” | अथ गुणदुष्टशुक्तादिभक्षणे | ” |
| | ” | अथ हस्तदानादिक्रियादुष्टाभोज्यभोजने | १३६ |
| | ” | अथ श्रान्द्भोजने | ” |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|--------------------------------|---------------|-----------------------------------|---------------|
| परिग्रहाशुचिदुष्टभोजने ... | १३८ | अथ चान्द्रायणसाधारण- | |
| जातमृताशौचान्नभोजने ... | १३९ | धर्माः | १४८ |
| अथ जातिभ्रंशकरादिप्राय- | | अथ प्रत्याम्नायो वक्ष्यते ... | १४९ |
| श्चित्तम् | १४० | अथ कृच्छ्रस्थाने तीर्थप्रत्या- | |
| अथ प्रकीर्णप्रायश्चित्तम् ... | " | म्नायो वक्ष्यते | " |
| नीलीवस्त्रादिधारणे प्रायश्चि- | | अन्यार्थं तीर्थगन्तुः फलम् | १५४ |
| त्तम् | १४२ | कालविशेषेण नदीनामस्पृ- | |
| प्रायश्चित्ताकरणे त्यागः ... | १४३ | श्यत्वम् | " |
| कृते प्रायश्चित्ते ग्रहणविधिः | १४४ | कुल्यादिलक्षणम् | " |
| रहस्यप्रायश्चित्तम् | " | प्राजपत्यादयस्तत्प्रत्याम्नाया- | |
| ब्रह्महत्याप्रायश्चित्तम् ... | " | श्चोच्यन्ते | १५५ |
| अथ सुरापाने प्रायश्चित्तम् ... | १४५ | अथ सर्वप्रायश्चित्तानि वक्ष्यन्ते | " |
| अथ सुवर्णस्तेये प्रायश्चित्तम् | " | सर्वत्रानुक्तनिष्कृतौ प्रायश्चि- | |
| अथ गुरुतल्पगमने प्रायश्चि- | | त्तम् | १५६ |
| त्तम् | १४६ | ग्रन्थसमापनम् | " |
| कृच्छ्रादिलक्षणम् | " | मङ्गलम् | " |

इति स्मृत्यर्थसारविषयानुक्रमणिका समाप्ता ।

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ।

श्रीधराचार्यकृतः

स्मृत्यर्थसारः ।

* गणेशब्रह्मविष्णुवीशाम्वाङ्गोमा लोकपान्मुहम् ।
दुर्गा मन्वादिकान्वन्दे व्याख्यातृश्च सदा गुरुन् ॥ १ ॥
श्रीकण्ठश्रीकराचार्यैः श्रुतिस्मृतिपुराणगैः ।
स्मृतिशास्त्रेष्वनेकेषु विप्रकीर्णेष्वनेकधा ॥ २ ॥
अनुष्ठानपकारार्थं स्मृतिच्छिद्रं प्रयत्नतः ।
पुराणन्यायमीमांसासाङ्गवेदैः प्रपूरितम् ॥ ३ ॥
कामधेनौ प्रदीप्तेऽब्धौ कल्पवृक्षलतासु च ।
शम्भुद्रविडकेदारलोलटाद्यैश्च माषितम् ॥ ४ ॥
मन्वाद्यनेकस्मृतिषु व्याख्यातृप्रतिपादितम् ।
स्मृत्यर्थसारं वक्ष्यामि सुखानुष्ठानसिद्धये ॥ ५ ॥
प्राची दिशामनुक्तौ स्यादुदीचीशानदिक्तया ।
तिष्ठत्प्रवृत्तानुक्तावासीनित्वं च कर्मसु ॥ ६ ॥
कर्त्तव्यणामनुक्तौ तु दक्षिणाङ्गं भवेत्तदा ।
कुत्सिते वामहस्तः स्यादक्षिणः स्यादकुत्सिते ॥ ७ ॥
यज्ञोपवीतिना कार्यं सर्वं कर्म प्रदक्षिणम् ।
मनःप्रसादात्सत्योक्त्या तपसा ज्ञानकर्मणा ॥ ८ ॥
आचान्त्या चाऽऽत्मनः शुद्धिं कृत्वा कर्म समाचरेत् ।
कर्मायथाकृतं ज्ञात्वा तावदेव पुनश्चरेत् ॥ ९ ॥
प्रधानस्याक्रियायां तु साङ्गं तत्क्रियते पुनः ।
तदङ्गाकरणे कुर्यात्प्रायश्चित्तं न कर्म तत् ॥ १० ॥
प्रभुः प्रथमकल्पे तु योऽनुकल्पेन वर्तते ।
स नाऽऽप्नोति फलं तस्य परत्रेति श्रुतिः स्मृतिः ॥ ११ ॥

* श्लोकत्रयं ख. पुस्तके नास्ति ।

१ ख. 'तादिषु' । २ ख. 'शा त्वम्' । ३ ख. 'व समाचरेत्' । ४ ख. 'कल्पस्य बो' ।
५ ख. 'लपेऽमुव' ।

कर्मणा मनसा वाचा यत्नाद्धर्मं समाचरेत् ।
 अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टं धर्ममप्याचरेन्न तु ॥ १२ ॥
 बह्वल्पं वा स्वगृह्योक्तं यस्य कर्म प्रचोदितम् ।
 तस्य तावति शास्त्रार्थं कृते सर्वं कृतं भवेत् ॥ १३ ॥
 श्रौतेषु सर्वशास्त्रोक्तं सर्वस्यैव यथोचितम् ।
 स्मार्तं साधारणं तेषु ग्राह्यं श्रौतेषु कर्मसु ॥ १४ ॥
 सैमयाचरिता धर्मा जातिदेशकुलोद्भवाः ।
 ग्रामाचाराः परिग्राह्या ये च विध्यविरोधिनः ॥ १५ ॥
 युगधर्माः परिग्राह्याः सर्वत्रैव यथोचितम् ।
 यत्कृते दशभिर्वर्षेच्छेतायां हायनेन तत् ॥ १६ ॥
 द्वापरे तच्च मासेन अहोरात्रेण तत्कलौ ।
 देवरेण सुतोत्पत्तिर्वानप्रस्थाश्रमग्रहः ॥ १७ ॥
 दत्ताक्षतायाः कन्यायाः पुनर्दानं परस्य च ।
 समुद्रयात्रास्त्रीकारः कमण्डलुविधारणम् ॥ १८ ॥
 महाप्रस्थानगमनं गोपशुश्च सुराग्रहः ।
 अग्निहोत्रहवण्याश्च लेहो लीढापरिग्रहः ॥ १९ ॥
 असवर्णासु कन्यासु विवाहश्च द्विजातिषु ।
 वृत्तं स्वाध्यायसापेक्षमघसंकौचनं तथा ॥ २० ॥
 अस्थिसंचयनाद्धूर्ध्वमङ्गुस्पर्शनमेव च ।
 प्रायश्चित्तविधानं च विप्राणां मरणान्तिकम् ॥ २१ ॥
 संसर्गदोषः पापेषु मधुपर्के पशोर्वधः ।
 दत्तौरसेतरे वा तु पुत्रत्वेन परिग्रहः ॥ २२ ॥
 *सत्रदीक्षा च स्तेयान्यमहापातकिनिष्कृतिः ।
 प्रतिमाभ्यर्चनाथार्थाय संकल्पश्च सधर्मकः ॥ २३ ॥
 संवर्णान्याङ्गनाहुष्टैः संसर्गः शोधितैरपि ।
 शामित्रं चैव विप्राणां सोमविक्रयणं तथा ॥ २४ ॥
 दीर्घकालं ब्रह्मचर्यं नरमेधाश्वमेधकौ ।
 कलौ युगे त्विमान्धर्मान्विज्यानाहुर्मनीषिणः ॥ २५ ॥

* इतः सार्धश्लोकः ख पुस्तके नास्ति । ग. पुस्तके तु दत्तारैसेति सार्धश्लोकद्वयं नास्ति ।

१ ख. °स्त्रार्थः कृते सर्वः कृतो° । २ ख. शास्त्रोक्त° । ३ ख. ग. सामयाचारिकाः । ४ ग. °बोधिताः । ५ ग. °न त्वहो । ६ ख. °मथ° ।

विप्रक्षत्रियविदूशूद्राश्चत्वारो वर्णास्तत्र विप्रक्षत्रियविशो द्विजास्त्रि-
जाश्च तेषां मातुः प्रथमे जन्म । उपनयनाद्वितीयं जन्म तृतीयं
यज्ञदीक्षायामुत्तमं जन्म । स्त्रीणां विवाह उपनयनस्थाने । द्विजानां
गर्भाधानादिकाः प्रेतद्वेयन्ताः क्रिया मन्त्रतः कार्याः ।

तत्र संस्काराः—गर्भाधानपुंसवनानवलोभनसीमन्तोन्नयनजातकर्मना-
मकरणनिष्क्रमणान्नप्राशनचौलोपनयनसावित्रीव्रतवेदमहाव्रतारण्यव्रता-
नि गौदानिकस्नातकविवाहाश्चेत्यावश्यकः षोडश प्रधानाः संस्काराः ।
तत्रतौ गर्भाधानं कार्यम् । रजःप्रभृतिषोडशरात्रान्तं क्रतुकालः । गर्भचल-
नात्पुत्रा तृतीये चतुर्थे मासे वा पुंसवनं कार्यम् । अनवलोभनं चतुर्थे । षष्ठेऽ-
ष्टमे वा सीमन्तोन्नयनम् जाते पुत्रे पिता स्नात्वा रात्रौ संध्यग्राहणे वा
वृद्धिश्राद्धं हिरण्येन कृत्वा जातकर्मदानादि दुरितक्षयाय प्रजापतिप्रीत्यै च
कुर्यात् । जाताशौचान्तर्मध्ये च जाते जातकर्मादि कुर्यात् । मृताशौचमध्ये
जाते तु तदाऽशौचान्ते वा कुर्यात् । नामकरणं जातकर्मानन्तरं वा द्वा-
दशेऽह्नि वाऽन्यस्मिन्ऽशुभेऽह्नि वा कुर्यात् । निष्क्रमणं चन्द्रदर्शनं सूर्यदर्शनं
देवनमस्कारं वा द्वादशेऽह्नि तृतीये चतुर्थे मासे वा कुर्यात् । अन्नप्राशनं
षष्ठेऽष्टमे वा दन्ते जाते कार्यम् । चौलं प्रथमे वर्षे तृतीये वा कार्यं बहुम-
तत्वाद्यथाकुलधर्मं वा । एते संस्कारा बीजगर्भस्य दुरितक्षयाय यथास्वा-
चारं कार्याः । स्त्रीणामहोमकास्तूष्णीं स्युः । विवाहस्तु समन्त्रकः ।
एते कालातिक्रमे व्याहृतिहोमं कृत्वा कार्याः । एतेष्वेकैकलोपे पाद-
कृच्छ्रः कार्यः । चौले त्वर्धकृच्छ्रः । मत्या लोपेऽनापदि च द्विगुणः ।
उपनयनात्प्राग्बाला उच्छिष्टादावप्रयता न स्युः । कामचारकामवाद-
[काम]भक्षाः स्युर्महापातकवर्जम् । तेषां चण्डालादिस्पर्शं सचैलं
स्नानम् । प्रागन्नप्राशनादभ्युक्षणम् । प्राक्चौलादाचमनम् । पश्चात्स्नान-
मित्येके । पित्रोः स्वधानिनयनाद्वते मन्त्रान्न ब्रूयुः ।

अथोपनयनम्—उपनयनं गर्भप्रभृति जन्मप्रभृति वाऽष्टमेऽब्दे एकादशे
द्वादशे विप्रादीनां क्रमात्कार्यम् । गुरुशुक्रादिशुभग्रहबलालाभे सति
पञ्चमाब्दादारभ्याऽऽषोडशादाद्वाविंशादाचतुर्विंशाद्विप्रादीनां क्रमात्का-
र्यम् । अत ऊर्ध्वं सावित्रीपतिता ज्ञात्याः स्युः । तेषामचीर्णप्रायश्चि-

१ ख. ग. 'अन्त्येष्ट्या' । २ ख. ग. 'क्रमणचन्द्रदर्शनसूर्यदर्शनदेवनमस्कारान्' । ३ ख. ग.
गोदा ह्य' । ४ ख. ग. घ. 'नानि दु' । ५ ख. ग. 'भेकालेऽह्नि' । ६ ख. ग. 'क्षयार्थाय' । घ.
'यार्थं स' । ७ ख. ग. 'नैते' ।

सनामुपमयनाध्यापमयाजनविवाहादिकं न कार्यम् । प्रात्यानां गुरु-
प्रायश्चित्तं वक्ष्यते ।

षण्ढान्धबधिरस्तब्धजडगदपङ्क्तुषु ।

कुब्जवामनरोगार्तशुष्काङ्गविकलाङ्गिषु ॥

मत्तोन्मत्तेषु मूकेषु शयनस्थे निरिन्द्रिये ।

ध्वस्तपुंस्त्वेऽपि चैतेषु संस्काराः स्युर्यथोचितम् ॥

मूकोन्मत्तौ न संस्कार्यावित्येके कर्मस्वनधिकारात्प्राप्तित्वं नास्ति ।
इदपत्यं संस्कार्यं ब्राह्मण्यां ब्राह्मणेनोत्पन्नो ब्राह्मण एवेति श्रुतेः । अन्ये
संस्कार्या इत्याहुः । होमं तावदाचार्यः करोति । उपनयनं च विधिनाऽऽ-
चार्यसमीपनयनं वाऽग्निसमीपनयनं वा सावित्रीवाचनं वा । अन्यदङ्ग-
पथाशक्ति कार्यम् । विवाहश्च कन्यास्वीकारोऽन्यदङ्गमिति ।

औरसः क्षेत्रजश्चैतौ संस्कार्यौ मागहारिणौ ।

औरसः पुत्रिकापुत्रः क्षेत्रजो गूढजस्तथा ॥

कानीनश्च पुनर्मूजो वृत्तः क्रीतश्च कृत्रिमः ।

वृत्तात्मा च संहोढजस्त्वपविद्धसुतस्ततः ॥

पिण्डदोऽशहरस्तेषां पूर्वमावे परः परः ।

एते द्वादश पुत्राश्च संस्कार्याः स्युर्द्विजातिषु ॥

केचिदाहुर्द्विजैर्(जा)तौ संस्कार्यौ कुण्डगोलकौ ।

*अमृते च मृते पत्यौ जारजौ कुण्डगोलकौ ॥

अथ यज्ञोपवीतविधिः—

+कार्पासक्षौमगोवालशणवलकतृणादिकम् ।

यथासंभवतो धार्यमुपवीतं द्विजातिभिः ॥

क्षुची देशे शुचिः सूत्रं संहताङ्गुलिमूलके ।

ओलेख्य षण्णवत्या तन्निगुणीकृत्य यत्नतः ॥

अवलिङ्गकैस्त्रिभिः सम्यक्प्रक्षाल्योर्ध्ववृत्तं तु तत् ।

अप्रदक्षिणमौवृत्य सावित्र्या त्रिगुणीकृतम् ॥

अथ प्रदक्षिणावृत्तं समं स्यान्नवसूत्रकम् ।

त्रिरावेष्टय दृढं बद्ध्वा हरिब्रह्मेश्वरान्नमेत् ॥

* ख. घ. पुस्तकयोरिदमर्थमधिकम् । + इदमर्थं ग. पुस्तके नास्ति ।

१ घ. °आङ्गिर्वि° । २ घ. °ति श्रुतिस्मृती । अ° । ३ घ. °वाङ्ममे प° । ४ क. °लकम् ।
आ° । ५ ख. न. आवेष्टय । घ. आवृत्य । ६ ख. घ. °मावृत° । ७ क. ख. ग. घ. अधःप° ।

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रमिति मन्त्रेण धारयेत् ।
 सूत्रं सलोमकं चेत्स्यात्ततः कृत्वा विलोमकम् ॥
 सावित्र्या दशकृत्वोऽद्भिर्मन्त्रिताभिस्तदुत्क्षिपेत् ।
 विच्छिन्नं वाऽप्यधो यातं भुक्त्वा निर्मितमुत्सृजेत् ॥
 यद्वा-पृष्ठवंशे च नाभ्यां वा धृतं यद्विन्दते कटिम् ।
 तद्धार्यमुपवीतं स्यान्नातिलम्बं नचोच्छ्रितम् ॥
 स्तनादूर्ध्वमधो नाभेर्न धार्यं तत्कथंचन ।
 ब्रह्मचारिण एकं स्वौत्सनातकस्य बहूनि च ॥
 *अहतं यन्त्रनिर्मुक्तमुक्तं वासः स्वयंभुवा ।
 तृतीयमुत्तरीयं वा वस्त्राभावे तदिष्यते ॥
 ब्रह्मसूत्रेऽपसव्येऽसे स्थिते यज्ञोपवीतिता ।
 प्राचीनावीतिता सव्ये कण्ठस्थे तु निवीतिता ॥
 वस्त्रं यज्ञोपवीतार्थं त्रिवृत्सूत्रं च कर्मसु ।
 कुशमुञ्जवालतन्तुरज्जुर्वा सर्वजातिषु ॥

इति यज्ञोपवीतविधिः ।

कार्ण्यरौरवबास्तानि विप्रादेराजिनानि तु ।
 अहतं वस्त्रयुग्मं तु श्वेतं वस्त्रमथापि वा ॥
 प्रवर्धग्रन्थिभिर्मौञ्जी त्रिवृत्स्यादक्षिणावृत्ता ।
 मुञ्जाभावे तु कर्तव्या कुशाश्मन्तकैबल्वजैः ॥
 पालाशाद्यास्तु सर्वेषां दण्डा याज्ञिकवृक्षजाः ।
 +पालाशबैल्वप्लाक्षास्ते षट्वेतसखादिराः ॥
 वेणवोदुम्बराश्वत्थाः क्रमाद्विप्रादिषु स्मृताः ।
 ते केशमालनासान्तप्रमाणाश्च क्रमाद्विजैः ॥
 धार्याः श्लक्ष्णाः सदा धार्यं कौपीनं कटिसूत्रकम् ।
 कौपीनमहतं धार्यं खण्डं वा वस्त्रपार्श्वयुक् ॥
 यज्ञोपवीतमजिनं मौञ्जीं दण्डं च धारयेत् ।
 नष्टे भ्रष्टे नवं मन्त्राद्भुत्वा भ्रष्टं जले क्षिपेत् ॥

* घ. पुस्तक इदमर्थं नास्ति । + इदमर्थं ख. ग. पुस्तकयोर्नास्ति ।

१ ख. ग. घ. दुक्षयेत् । २ क. धृत्वा । ३ ख. ग. घ. स्यान्न तस्य द्वे । ४ ख. ग. घ. मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा दक्षिणावृत्तसेखला । मु. ५ क. कविलम् । ६ ख. ग. आकृत्वा ।

उपनयनानन्तरं त्रिरात्रं द्वादशरात्रं वर्षं वाऽक्षारलवणाश्रयः शायी
 ब्रह्मचार्युपनयनव्रतं चरेत् । सर्वत्र व्रतान्ते नवानि यज्ञोपवीतानि धृत्वा
 पूर्वाणि त्यजेत् । वस्त्राणां त्यागानियमः । नित्यं स्वाध्यायाग्निकार्यब्रह्म-
 यज्ञतर्पणानि कुर्वीत । अनित्ये विप्रगेहे भैक्ष्यं गुर्वनुज्ञया चरन्भोजन-
 विधिना मुञ्जानो द्वादशाब्दं पञ्चाब्दं वेदग्रहणान्तं वा ब्रह्मचारी व्रतं
 चरेत् । गुरुशुश्रूषां छन्दसां साधनार्थं कुर्यात् । उपाकर्मान्तं सर्वेषां वेदा-
 ब्दव्रतम् । तत्र श्रीमधुमांसोच्छिष्टशुक्तपर्युषितताम्बूलदन्तधावेनावस-
 विथिकादिवास्वापच्छत्रपादुकागन्धमालयोद्वर्तनानुलेपनाञ्जनजलक्रीडा-
 द्यूतनृत्यगीतवाद्याल्लापाश्लीलपरिवादादीनासमावर्तनाद्वर्जयेत् । तदेका-
 पोह्ये व्याधौ मधुमांसमक्षणे गुरुच्छिष्टमक्षणम् । आद्धे तु वर्ज्यमेव ।
 उपनयनव्रतानन्तरं सावित्रीव्रतमुपाकर्मान्तमारण्यकव्रतानि च तथैव ।
 उपाकरणमौषधीजनने सति श्रावण्यां पौर्णमास्यां कार्यम् । श्रावणमा-
 सस्य श्रवणे वा पञ्चम्यां हस्ते वा पञ्चमीहस्तयोगे वा कार्यम् । भाद्र-
 पदस्य पौर्णमास्यां वा श्रवणे वा हस्ते वाऽऽष्टमाह्यां पौर्णमास्यां वा
 यथास्वाचारं कार्यम् । श्रवण आदौ घटिकाचतुष्टयमभिजिन्नक्षत्रांशं
 वर्ज्यम् । तिथिगण्डे सति उदयव्यापिनी प्रयोगपर्याप्ता तिथिरुपाकरणे
 ग्राह्या । श्रवणे खण्डे सति धनिष्ठासंयुक्तं प्रयोगपर्याप्तं ग्राह्यं नोत्तराषा-
 ढायुतम् । हस्तादिष्वन्यनक्षत्रेषु शुक्लपक्ष उदयव्यापि कृष्णपक्षेऽस्तमय-
 व्यापि प्रयोगपर्याप्तं ग्राह्यम् । सूतकादिविघ्नसंभवे चौषध्युत्पत्त्यभावे
 च श्रावणभाद्रपदयोः कस्मिंश्चिद्दिने ग्रहणसंक्रान्तिवर्जिते कार्यम् ।
 कर्मणो न लोपो नोत्कर्षः । मौञ्जीयज्ञोपवीतादि नवं दद्याद्धारयेच्च ।
 कटिसूत्रं नवं वस्त्रं तथैव । उपनयनादुपाकर्मान्तं सावित्रीव्रतं तत्संपूर्त्यर्थं
 विप्रसंबन्धिबालधवभोजनं शक्त्या कार्यम् । ततो वेदाब्दव्रतं ततश्चाऽऽ-
 रण्यकव्रतानि प्रतिव्रतं वपनं च । व्रतान्ते भोजने भैक्ष्यमाहार्यम् । एतेषु
 व्रतेषु लोपे तारतम्येन त्रीन्पञ्चवा द्वादश वा प्राजापत्यांश्चरित्वा
 पुनश्च व्रतं प्रारभेत । ततोऽनन्तरं वोदगयने वा शुक्लपक्षे शुभेऽहनि
 स्वाध्यायं प्रारभेत । पूर्वाह्णे गणेशं सरस्वतीमिष्टदेवं च गुरुं गुरुत्तमं च
 संपूज्य ब्रह्मचारिणो विप्रसुवासिनीरभ्यर्च्याऽऽशिषो गृहीत्वा ब्रह्मयज्ञवद्-

१ ख. 'नि वि' । २ ख. ग. 'या याचित्वा भो' । ३ घ. 'मानन्तरं स' । ४ क. शुक्लप' । घ. शुक्लप' । ५ ख. ग. 'नवशक्रियादि' । ६ ख. ग. 'तदेकवेद्यया' । ७ क. 'श्रवणेन वा हस्तेन वा' । ८ क. 'श्रवणादौ' । ९ क. 'पर्याप्त' । १० ख. ग. 'कवेदाब्दव्र' । ११ ख. ग. घ. 'गुरुत्तमं स' ।

मन्धारयमाणाः प्रणवव्याहृतिसावित्रीरुक्त्वा प्रणवपूर्वं स्वाध्यायं प्रारभ्य किञ्चिदधीत्य प्रणवेन समाप्य विरामोऽस्तिरुक्त्वा भूमिं स्पृष्ट्वा गुरुं वृद्धान्नमेयुः । ततोऽपरेद्युप्रभृति गणेशादीन्नत्वा प्रणवेन प्रारम्भं समाप्तिं च कुर्युः । जात्याचारसंशये नाध्याप्याः । ब्रह्मचारी संध्यामुपास्याग्निकार्यं कृत्वा गुरुपसंग्रहणं वृद्धतरेष्वभिवादनं वृद्धेषु नमस्कारं कुर्यात् । उपसंग्रहणं नाम अमुकगोत्रो देवदत्तशर्माऽहं भो अभिवादय इत्युक्त्वा कर्णौ स्पृष्ट्वा दक्षिणोत्तरपाणिभ्यां दक्षिणेन पाणिना गुरोर्दक्षिणपादं सव्येन सव्यं गृहीत्वा शिरोवनमनम् । अभिवादाने पादसंग्रहणं नास्ति । पादस्पर्शनं काय न वा । आयुष्मान्मव सौम्य देवदत्त इति प्लुतान्तमुक्त्वाऽमुकशर्मन्निति प्रत्यभिवादः कार्यः । आयुष्मान्मव सौम्येति वा प्रत्यभिवादः कार्यः । अथ मुरवो माता स्तन्यदात्री च पिता पितामहादयो माता मातामहादयश्चान्नदाता भयन्नाताऽऽचार्यश्चोपनेता मन्त्रविद्योपदेष्टा वा तेषां पत्न्यश्चोपसंग्राह्याः समावृत्तेन । बाले समवयस्के वाऽध्यापके सति गुरुवच्चेत् । मातुलाश्च पितृव्याश्च श्वशुराश्च मातृष्वसारः पितृष्वसारो यवीयांसोऽपि प्रत्युत्थायाभिवाद्याः । उपाध्यायर्विजो ज्येष्ठभ्रातरश्च सर्वेषां पत्न्यश्चैवं मातृष्वसा पितृष्वसा च सवर्णा भ्रातृभार्या च नित्यमभिवाद्याः ।

विप्रोष्य तूपसंग्राह्या जातिसंबन्धयोषितः ।

विप्रोष्य विप्रं कुशलं पृच्छेन्नूपमनामयम् ॥

वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रमारोग्यमेव च ।

न वाच्यो दीक्षितो नाम्ना यवीयानपि यो भवेत् ।

पूज्यैस्तमभिभाषेत भोभवत्कर्मनामभिः ॥

परपत्नीमसंवृद्धां मगिन्यम्बेति भाषयेत् ।

त्रिवर्षपूर्वः श्रोत्रियोऽभिवाद्यः । त्रिवर्षात्संबन्धिनश्च स्वल्पेनापि स्वयोनिजा अन्ये च ज्ञानवृद्धाः सदाचाराश्चाभिवाद्याः ।

उदक्यां सूतिकां नारीं भर्तृघ्नीं गर्भपातिनीम् ।

पाषण्डं पतितं व्रात्यं महापातकिर्न शठम् ॥

नास्तिकं कितवं स्तेनं कृतघ्नं नाभिवादयेत् ।

मत्तं प्रमत्तमुन्मत्तं धावन्तमशुचिं नरम् ॥

१ ख. ग. °पाणिर्दक्षि° । २ क. ख. घ. °शत्रु° । ३ क. ग. °संवृद्धां । ४ क. °वर्षश्रो° । ५ ख. ग. भत्रिवर्षात् । घ. भत्रिवर्षाः स° ।

वमन्तं जृम्भमाणं च कुर्वन्तं दन्तधावनम् ।
अभ्यक्तशिरसं स्नानं कुर्वन्तं नाभिवादयेत् ॥
जपयज्ञजलस्थांश्च समित्पुष्पकुशानलान् ।
उदपात्रार्घ्यमैक्ष्यान्नं वहन्तं नाभिवादयेत् ।
अभिवाद्य द्विजश्चैतानहोरात्रेण शुध्यति ॥
क्षत्रवैश्याभिवादाने विप्रस्वैवम् । शूद्राभिवादाने त्रिरात्रम् । कृष्णं तु
रजकादिषु ।

चाण्डालादिषु चान्द्रं स्यादिति संग्रहैकैन्मतम् ।
देवताप्रतिमां दृष्ट्वा यत्तिं दृष्ट्वा त्रिदण्डिनम् ॥
नमस्कारं न कुर्याच्चेदुपवासेन शुध्यति ।
सर्वे चापि नमस्कार्याः सर्वावस्थासु सर्वदा ॥
अभिवादो नमस्कारस्तथा प्रत्यभिवादनम् ।
आशीर्वाच्या नमस्कार्यैर्वयस्यस्तु पुनर्नमेत् ॥
स्त्रियो नमस्या घृद्धाश्च वयसा पत्युरेव ताः ।
ततोऽधीयीत वेदांश्च स्वाध्याये मुरुशिक्षितान् ॥

अपानध्याया वक्ष्यन्ते—

अनध्यायेष्वध्ययने प्रज्ञामायुः प्रजां श्रियम् ।
ब्रह्मचर्यश्रियं तेजो निकृन्तति यमः स्वयम् ॥
मन्त्रवीर्यक्षयमयादिन्द्रो वज्रेण हन्ति च ।
ब्रह्मराक्षसता चान्ते नरकश्च भवेद्भुवम् ॥

अष्टमीचतुर्दशीपर्वप्रतिपत्सु नित्यमहोरात्रमनध्यावः । अष्टकासु च ।
ऐन्द्रभवणद्वादशीमैघामरण्योश्च सोपपदतिथौ च ।
ज्येष्ठे शुक्लद्वितीया तु आश्विने दशमी सितौ ।
चतुर्थी द्वादशी माघ एताः सोपपदाः स्मृताः ॥

शयनोत्थानद्वादशयोश्च । आपाढीकार्तिकीफाल्गुनीसमीपस्वद्विती-
यासु च । अपरपक्षान्ते प्रेतद्वितीयायां च सर्वादभुतेष्वकालिकोऽन-
ध्यायः । अत्युत्पाते च महानवम्यां च रथसप्तम्यां च पुगादिषु ।

* अथ श्लोकः ख. ग. घ. पुस्तकेषु नास्ति ।

१ क. ख. 'द्विजांश्च' । २ ग. घ. कायं तु । ३ ख. ग. घ. 'कृत्स्नम्' । ४ ख. ग.
'वैश्याश्च' । ५ घ. 'क्षितः' । ६ ख. ग. 'ब्रह्मचर्यश्रियं' । घ. 'वैवीर्यश्रि' । ७ ख. ग. घ.
'महाम' । ८ ख. ग. 'अग्न्युत्पाते चाकालवृष्टौ' ।

शुक्लतृतीया वैशाखे प्रेतपक्षे त्रयोदशी ।
 कार्तिके नवमी शुक्ला माघे दर्शश्च पूर्णिमा ॥
 एता युगादयः प्रोक्ता दत्तस्याक्षयकारकाः ।
 मन्वन्तरादयः सर्वेऽनध्याया इति केचन ॥
 आश्वयुक्शुक्लनवमी कार्तिके द्वादशी सिता ।
 तृतीया चैत्रमासस्य सिता माद्रपदस्य च ॥
 आषाढे शुक्लदशमी माघे या शुक्लसप्तमी ।
 श्रावणस्याष्टमी कृष्णा तथा षष्ठी च पूर्णिमा ॥
 फाल्गुनस्य त्वमावास्या पौषस्यैकादशी सिता ।
 कार्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्यैष्ठी पञ्चदशी तथा ॥
 मन्वन्तरादयश्चैता दत्तस्याक्षयकारिकाः ।

शब्दानुगमनपरिचरणेषु चाऽऽकाशेशवदर्शनेषु चाहोरात्रम् । आञ्जिकं
 परिगृह्य चाऽऽरण्यकमधीत्य च मनुष्यप्रभृतीनां देवानां नागानां च स्थान-
 मुक्तौ चाहोरात्रं स्वप्नान्तमित्येके । नवभान्द्रभुक्तौ त्वन्नजरणान्तम् ।
 सूतकान्नभोजने चैवम् । महैकोद्विष्टे त्रिरात्रं गन्धलेपक्षयान्तं वा ।
 महागुरुमृतौ द्वादशरात्रम् । असपिण्डे गुरौ त्रिरात्रम् । आचार्यै चोपा-
 ध्याये पक्षिणी । समानविद्ये सब्रह्मचारिणि च । आचार्यभार्यापुत्रशि-
 ष्येष्वाहोरात्रम् । अग्न्युत्पाते गोविप्रभृतौ त्रिरात्रम् । ऋत्विग्याज्यस्वयो-
 निसंबन्धिषु चैवम् । वेदसमापने प्रथमसंस्थासु तदहोरात्रम् । परेद्युश्चा-
 नध्यायः । ग्रहणे तु रात्रौ मोक्षे त्रिरात्रम् । दिवा मोक्षे ड्यहम् । उपा-
 कर्मणि चोत्सर्गे ड्यहम् । अयनै विषुवे पक्षिणी । निर्घातभूकम्पोल्का-
 पातादिसर्वाद्भुतेष्वाकालिकोऽनध्यायः । अग्न्युत्पाते वाऽकाले वृष्टौ वा ।
 आर्द्रादिज्येष्ठान्तां तात्कालिक्यन्यत्राऽऽकालिकी वृष्टिः । सायंसंध्याग-
 र्जित उदयान्तोऽनध्यायः । अर्धरात्रादूर्ध्वं गर्जनेऽर्धरात्रे वाऽऽकालिकोऽन-
 ध्यायः । प्रातःसंध्यागर्जने त्वहोरात्रम् । काकोलूककुङ्कुरमूषकमण्डूका-
 द्यन्तरागमनै सति दिने चेद्दिनान्तं रात्रौ चेद्वाड्यन्तमनध्यायः । गवा-
 श्वमहिषपशुस्त्रीशूद्रादावहोरात्रम् । श्वमार्जारयोश्च । आरण्यमार्जारसर्प-
 नकुलर्षश्चनखादौ त्रिरात्रम् । आरण्यश्वशृगालादिवानररजकादौ द्वाद-

१ घ. शशब्दः । २ ख. ग. 'वदहने' । ३ क. द्विरात्रम् । प्रभृतौ त्रिरात्रम् । ऋत्विग्या-
 ज्यस्वयोनिसंबन्धिषु चैवम् । अग्न्युत्पाते गोविप्रगं । ४ ख. ग. अभूत्पा । ५ ख. ग. 'मसंख्यासु' ।
 ६ ख. ग. 'न्तास्त्रालादन्य' । ७ ख. ग. घ. 'कुङ्कुटम्' । ८ ख. ग. 'पञ्चमजालादौ' ।

शरात्रम् । खरवराहोद्गादिषण्डालादिसूतिकोदक्याशवादौ मासम् ।
शशमेघश्वपाकादौ षण्मासम् । गजगण्डसारससिंहव्याघ्रमहापापिकृत-
ग्रादावध्दमनध्यायः ।

स्वाध्याये वा प्रवचने वर्तमानेऽन्तरागते ।

आधिव्याधिविघ्नसृत्युपापानि गुरुशिष्ययोः ॥

शोभनगृहे शोभनदिने चानध्यायः । विवाहमौञ्जीबन्धप्रतिष्ठोद्याप-
नादिष्वामार्जनमाससमाप्तेः सपिण्डगोभ्राणामनध्यायः । यज्ञे चानुब-
न्धान्तमृत्विजामाचार्याणां वा श्वोऽनध्याये सत्याद्यरात्रावनध्यायः ।
एकानध्याययुग्मे त्वन्त्यापररात्रमनध्यायः । अनध्याययुग्मे पूर्वदिना-
पररात्रावित्येके ।

श्वक्रौष्टुगर्दभोलूकसामबाणार्तनिस्वने ।

अमेध्यशवशूदान्त्यश्मशानपतितान्तिके ॥

वेशे शुचावात्मनि च विद्युस्तनितसंप्रवे ।

मुक्त्वाऽऽर्घ्वाणि रश्मोन्तरर्धरात्रेऽतिमासते ॥

पांसुवर्षे दिशां दाहे संध्यानीहारभीतिषु ।

धावतः पूतिगन्धे च शिष्टे च गृहमागते ॥

खरोद्ग्यानहस्त्यश्वनौवृक्षगिरिरोहणे ।

सप्तत्रिंशदनध्यायानेतांस्तात्कालिकान्विदुः ॥

सर्वकुत्सितगन्धेषु परिवेषे सभासु च ।

अभ्यक्तस्नानकाले च महास्वेदेऽतिकम्पने ॥

गोविप्ररोधने सर्वशब्देषु श्राद्धपङ्क्तिषु ।

शालमलस्य मधूकस्य कोविदारकपित्तयोः ॥

श्लेष्मातकस्य च्छायायामेतांस्तात्कालिकान्विदुः ।

चतुर्दश्यष्टमीपर्वप्रतिपत्सु च सर्वदा ॥

दुर्मेधसामनध्यायस्त्वन्तरागमनेषु च ।

तथा विस्मृतिशीलानां बहुवेदप्रपाठिनाम् ॥

चतुर्दश्यष्टमीपर्वप्रतिपद्वर्जितेषु तु ।

वेदाङ्गन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राणि चाभ्यसेत् ॥

उद्यास्तमये वाऽपि मुहूर्तत्रयगामि यत् ।

तद्विनं तदहोरात्रमनध्यायविदो विदुः ॥

केचिदाहुः कचिद्देशे यावत्तद्दिननाडिकाः ।
 तावदेव त्वनध्यायो न तस्मिंश्चेद्दिनान्तरे ॥
 उपवासव्रतादीनां तिथिमाहुस्तथैव च ।
 चतुर्थ्यां पूर्वरात्रे च नवनाडीषु दर्शने ॥
 नाध्येयं पूर्वरात्रे स्यात्सप्तमी च त्रयोदशी ।
 अर्धरात्रात्पुरा स्याच्चेन्नाध्येयं पूर्वरात्रके ॥
 प्रणव्याहृतीनां च सावित्र्याः शिरसस्तदा ।
 नित्ये नैमित्तिके कार्ये व्रते यज्ञक्रतौ तथा ॥
 प्रवृत्ते काम्यकार्ये च नानध्यायाः स्मृतास्तथा ।
 देवतार्चनमन्त्राणां नानध्यायः स्मृतस्तथा ॥

अथोत्सर्जनम्—ततः सार्धंचतुरो मासान्वण्मासं वाऽधीत्य पौषमासस्य
 रोहिण्यामष्टकायां पौषे माघे फाल्गुने वा शुक्लपक्षे प्रतिपद्यन्यस्मि-
 न्वाऽह्नि पौर्णमास्यां वा सह शिष्यैर्ग्रामाद्बहिर्जलान्त उत्सर्जनं कार्यं
 तर्पणं च । वर्षं चाधीत्योपाकर्मदिन उत्सर्जनं कार्यं न वा । तर्पणं कार्य-
 मेव । एवं वेदव्रतानि चोभयं वा पारं नीत्वाऽविप्लुतब्रह्मचर्यो विप्लवे
 कृतप्रायश्चित्तो गुरुं संपूज्य तदनुज्ञया समावृत्तो विवहेत् ।

इति ब्रह्मचारिप्रकरणम् ॥

अथ विवाहः—

मातृतः पितृतः शुद्धार्मनुरूपं गुणान्विताम् ।
 अदीर्घरोगां संचारिरोगपातित्यवर्जिताम् ॥
 असपिण्डां च पितृतः सप्तमात्पुरुषात्पराम् ।
 मातृतः पञ्चमादूर्ध्वमसमानार्पणोत्रजाम् ॥
 अनन्योद्वां भ्रातृमतीं स्त्रियं कन्यां यवीयसीम् ।
 पुमान्धीमान्वरो धीरो द्विजो वर्णानुपूर्वशः ॥
 विवहेद्भर्ममार्गेण ब्राह्ममादिषु यथाविधि ।
 मातुलस्य सुतां केचित्पितृष्वसुसुतादिकाम् ॥
 विवहन्ति कचिद्देशे संकोच्यापि सपिण्डताम् ।
 दद्याच्च प्रतिगृह्णीयात्स्वात्वैव सुसमाहितः ॥

ब्राह्मो विवाह आहूय दीयते शक्त्यलंकृताः ।
 दैवो विवाहः कन्याया ऋत्विजे दानमुच्यते ॥
 आर्षो गोमिथुने दत्ते कन्यादानं यदा तदा ।
 प्राजापत्यः सह धर्मं चरतामिति दानतः ॥
 आसुरो द्रविणादानाद्गान्धर्वः समयान्मिथः ।
 राक्षसो युद्धहरणात्पैशाचः कन्यकाच्छलात् ॥

ब्राह्मदैवार्षप्राजापत्या धर्म्याः । आसुरगान्धर्वराक्षसपैशाचा अधर्म्याः ॥
 तेजान्तस्थाश्चत्वारो विप्रस्यैव । राक्षसः क्षत्रियस्यैव । इतरे त्रयः
 सर्वेषाम् । ब्राह्मादिषु पूर्वं होमः प्रशस्तः पश्चात्कन्यास्वीकारः । आसु-
 रादिषु पूर्वं कन्यास्वीकारः पश्चाद्धोमः कार्यः ।

पिता पितामहो भ्राता सैकुल्यो गोत्रजो गुरुः ।
 मातामहो मातुलो वा कन्यादा बान्धवाः क्रमात् ॥
 पित्रादिदानमावे तु कन्या कुर्यात्स्वयंवरम् ।
 शुल्कं दत्त्वा वरे याते पञ्चनृन्संप्रतीक्ष्य तु ॥

कन्याऽन्यस्मै प्रदातव्या बाग्दानेऽपि कृते सति । दशमासान् ।

* वरे देशान्तरगते त्रीनृन्संप्रतीक्ष्य च ॥
 कन्याऽन्यस्मै प्रदातव्या बाग्दानेऽपि कृते सति ।
 मृतेऽन्यस्मै तथा देया वरे सप्तपदात्पुरा ॥
 पुरा पुरुषसंयोगान्मृते देयेति केचन ।
 ऋतावदृष्टे कन्यैव पुनर्देयेति केचन ॥
 आगर्भधारणात्कन्या पुनर्देयेति चापरे ।
 देशकालादिमे धर्मा अनुष्ठेया विजानता ॥
 कुलशीलविहीनस्य षण्ढादेः पतितस्य च ।
 अपस्मारिविक्रमस्थरोगिणां वेषधारिणाम् ॥
 दत्तामपहरेत्कन्यां सगोत्रोढां तथैव च ।
 मन्त्रसंस्काररहिता देयाऽन्यस्मै वराय च ॥
 कन्या च दूषिता वज्या देयाऽन्यस्मै वराय सा ।
 अन्यथा तु हरन्दण्ड्यो व्ययं दद्याच्च सोदयम् ॥

* क. ख. पुस्तकयोः पद्यमिदं नास्ति ।

षष्ठान्धव्याधितादीनां विवाहस्तु यथोचितम् ।
 विवाहासंभवे तेषां कनिष्ठो विवहेत्तदा ॥
 षष्ठान्धवधिरस्तब्धजडगदपञ्चुषु ।
 कुब्जवामनरोगार्तशुष्काङ्गविकलाङ्गिषु ॥
 ध्वस्तपुंस्त्वे च मत्ते च शयनस्थे निरिन्द्रिये ।
 मूकोन्मत्तेषु सर्वेषु न दोषः परिवेदने ॥
 पितृव्यपुत्रे सापत्ने परदारसुतादिषु ।
 विवाहाधानयज्ञादौ परिवेदाद्यदूषणम् ॥
 *ज्येष्ठभ्रात्रा त्वनुज्ञाते परिवेदाद्यदूषणम् ।
 पितुः सत्यप्यनुज्ञाने नाऽऽधीत कदाचन ॥
 पाणिग्रह्यः सवर्णासु गृह्णीयात्क्षत्रिया शरम् ।
 वैश्या प्रतोदमादद्याद्विवाहे ब्राह्मणस्य तु ।
 +वसनस्य दशा ग्राह्या गूढयोत्कृष्टवेदने ॥
 सवर्णेभ्यः सवर्णासु जायन्ते हि सजातयः ।
 अनिन्द्येषु विवाहेषु पुत्राः संतानवर्धनाः ॥
 विप्रान्मूर्धावसिक्तो हि क्षत्रियायां विशः स्त्रियाम् ।
 अम्बष्ठः शूद्रां निषादो जातः पारशवोऽपि वा ॥
 वैश्यागूढोस्तु राजन्यान्माहिष्योग्री सुतौ स्मृतौ ।
 वैश्यात्तु करणः शूद्रां विज्ञास्वेष विधिः स्मृतः ॥
 एतेऽनुलोमजाः पुत्राः संस्कार्याः स्युर्द्विजातिजाः ।
 तथा मूर्धावसिक्तादिजातिजाश्च द्विजातयः ॥
 ब्राह्मण्यां क्षत्रियात्सुतो वैश्याद्वैदेहकस्तथा ।
 शूद्राज्जातस्तु चण्डालः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥
 क्षत्रिया मागधं वैश्याञ्छूद्राक्षत्तारमेव च ।
 शूद्रादायोमवं वैश्या जनयामास वै सुतम् ॥
 माहिष्येण करण्यां तु रथकारः प्रजायते ।
 इत्याद्याः प्रतिलोमाः स्युर्द्विजधर्मबहिष्कृताः ॥

* ख. घ. पुस्तकयोरीदमर्थं नास्ति । + ख. ग. घ. पुस्तकेष्विदमर्थं नास्ति ।

१ ख. ग. घ. 'न्धवधिरादी' । २ क. 'नाऽऽधीयीत' । ३ ख. ग. 'जातोऽम्बष्ठस्तु शूद्रायां निषादः पार्श्ववोऽपि वा' । ४ क. 'देहक' । ५ ख. 'स्युः सर्वध' ।

विवाहात्परमाधाय जुह्वदेवाग्निहोत्रिकम् ।
 दर्शपूर्णमासाग्रयणसोमयागान्क्रमाच्चेत् ॥
 सर्वथा प्रथमः सोमयागः कार्यो द्विजातिभिः ।
 यथासंभविनाऽङ्गेन फलं दत्त्वाऽपि दक्षिणाम् ॥
 भ्रात्यदुर्बाह्मणत्वमदिमहादोषोपशान्तये ।
 सूर्यग्रहे कुरुक्षेत्रे मेषीकृष्णाजित्तादिकम् ॥
 चाण्डालात्प्रतिगृह्यापि यजेदावश्यकैर्मसैः ।
 अथ चोषासनं कृत्वा जुह्वन्गाह्याणि वाऽऽच्चेत् ॥
 अर्धाधाने महाश्रेयो गार्ह्यश्चौतोभयात्मकम् ।
 *एकत्वं स्त्री गता भर्तुः पिण्डे गोत्रे च सूतके ॥
 सत्यामन्यां सवर्णायां धर्मकार्ये न कारयेत् ।
 सवर्णासु विधौ धर्म्ये ज्येष्ठया न विनेतरा ॥
 आज्ञासंपादनी दक्षा पुत्रसूश्च प्रिया शुचिः ।
 मिथीज्या धर्मकार्येषु नाधिवेद्या कथंचन ॥
 शौक्या भक्त्या शुचिर्दक्षा नियोज्या धर्मकर्मसु ।
 अशुद्धां जारिणीं शूद्रां दूषितां तु विसर्जयेत् ॥
 सुरापी व्याधिता धूर्ता वन्ध्याऽर्थघ्न्यप्रियंवदा ।
 स्त्रीप्रसूश्चाधिवेत्तव्या पतिद्विदच मृतप्रजा ॥
 गृहस्थस्तु षडग्निः स्यात्पञ्चाग्निश्चतुराग्रिकः ।
 स्याद्विद्यग्निरथैकाग्निर्नाग्निहीनः कथंचन ॥
 गार्ह्यमौपासने कुर्यात्सर्वाधानी तु लौकिके ।
 स्मार्तं च लौकिके कार्यं श्रौतं वैतानिकाग्निषु ॥

अथ गोत्रप्रवसतिर्णयः—

अथात्र गोत्रप्रवरनिर्णयो वर्ण्यतेऽश्वसा ।
 जमदग्निमरद्वाजविश्वामित्रात्रिगौतमाः ॥
 वसिष्ठकश्यपागस्त्या मुनयो गोत्रकारिणः ।
 एतेषां यात्यपत्यानि तानि श्वेत्राणि मन्वते ॥

* इदमर्थं ख. ग. पुस्तकयोर्नास्ति ।

१ ख. ग. 'महच्छेयो' । २ ख. ग. घ. 'शक्ता भक्ता शु' । ३ ख. ग. 'प्रियाशुचिः । स्त्री' ।

त्रियमाणतया वाऽपि सत्तया वाऽमुवर्तमम् ।
 एकस्य दृश्यते यत्र तद्गोत्रं तस्य कथ्यते ॥
 समानमुनिभूयस्त्वमेकप्रवरतामपि ।
 समानप्रवरत्वं च द्वेधा बोधायनोऽब्रवीत् ॥
 मुनिप्रणीतप्रवरैरुनपञ्चाशता वयम् ।
 अनन्तान्यपि गोत्राणि वर्गीकृत्याऽभिदध्महे ॥
 जामदग्न्या वत्सबिदावाष्टिषेणाः परस्परम् ।
 नान्वियुः प्रवरैक्येण सगोत्रत्वेन चाऽऽदिमौ ॥
 यस्का मित्रयवो वैन्याः शुनकाः प्रवरैक्यतः ।
 स्वं स्वं हित्वा गणं सर्वं विवहेयुः परावरैः ॥
 उक्ताः सप्त भृगोर्वंशा वक्ष्यन्तेऽङ्गिरसौ गणाः ।
 गौतमाः सप्त चाऽऽयास्याः शौरद्वतास्तथा परे ॥
 कौमण्डो दीर्घतमसस्ततः कारेणुपालयः ।
 वामदेवा औशनसा गोत्रैक्याच्च नान्वियुः ॥
 भरद्वाजाः सकपयो गर्गा रौक्षायणा इति ।
 चत्वारोऽपि भरद्वाजा गोत्रैक्यान्नान्वियुर्मिथः ॥
 कैवलाङ्गिरसश्चैके विष्णुवृद्धाः सकण्वजाः ।
 हारीता रथीतराश्च मुद्गलाः प्रवरैक्यतः ॥
 स्वं स्वं हित्वा गणं सर्वं विवहेयुः परावरैः ।
 षोडशाङ्गिरसश्चेधा प्रोक्ताः संकृत्यस्तथा ॥
 संकृतीनां द्विवंश्यत्वाद्वसिष्ठैश्च चतुर्विधैः ।
 स्वधर्मीयैः सगोत्रत्वात्प्रवरैक्याच्च नान्वियुः ॥
 चत्वारोऽत्रय आद्यान्निवाद्भुतका गविष्ठिराः ।
 मुद्गलाश्चेति गोत्रैक्यात्प्रवरैक्याच्च नान्वियुः ॥
 त्रयश्च कश्यपगणा निधुवा रेमशाण्डिलाः ।
 गोत्रैक्यात्प्रवरैक्याच्च नोद्वहेयुः परस्परम् ॥
 वसिष्ठैः काश्यपैर्मित्यं लौगाक्षीणामनन्वयः ।
 अहर्वसिष्ठतोक्तिस्तु प्रयाजाप्यादिगोचरा ॥

१ ख. 'वा प्रव'। ग. वाऽपि व'। २ ख. ग. 'दग्न्या'। ३ ख. 'शौरद्वतस्त'। ग. घ. शर-
 द्धन्तस्त'। ४ ख. 'कौमंडा द्वेध'। घ. 'कौ गण्डा'। ग. कौमण्डा द्वेध'। ५ घ. नान्वयः'। ६ घ.
 'आत्रिवाधृतकम्'।

वसिष्ठाः कुण्डिनश्चैवमुपमन्युपराशराः ।
 वसिष्ठा इति चत्वारो गोत्रैक्यान्नाव्युर्मिथः ॥
 कुशिका रोहितगणा रौक्षकाः कामकायनाः ।
 कता धनंजया आज्ञा अधमर्षणपूरणाः ॥
 इन्द्रकौशिकजाश्चेति विश्वामित्रमणा वृक्षः ।
 नोद्वहेयुः सगोत्रत्वात्कचिच्च प्रवरैक्यतः ॥
 अगस्त्यतः सौम्यवाहाः सौमवाहा इति त्रयः ।
 गोत्रैक्यात्प्रवरैक्याच्च नोद्वहेयुः परस्परम् ॥
 वर्गा एकोनपञ्चाशत्प्रसिद्धा मुनिभिः स्मृताः ।
 अप्रसिद्धाः परे वंश्या अन्तर्भूता इहैव ते ॥
 विश्वामित्रादिगोत्रेण नोद्वहेयुर्धनंजयाः ।
 अत्रेस्तु पुत्रिकापुत्रा वामरथ्यादयस्तथा ॥
 तथैव जातूकर्ण्याश्च वसिष्ठैरत्रिभिः सह ।
 भरद्वाजेन शुक्लेन विश्वामित्रस्य शैशिरे ॥
 क्षेत्रे जातो द्विगोत्रर्षिः प्रोच्यते शौङ्गशैशिरिः ।
 विश्वामित्रभरद्वाजैस्तज्जानां तेन नान्वयः ॥
 कपिलानां भरद्वाजैर्विश्वामित्रैश्च नान्वयः ।
 गुरोः सगोत्रप्रवरा नोद्वहाद्याः क्षत्रविद्भजनैः ॥
 स्वगोत्राद्यनभिज्ञैश्च विप्रैराचार्यगोत्रजाः ।
 दानादिनाऽन्यगोत्राः स्युरज्ञातगुरुगोत्रिणः ॥
 समानप्रवरोद्वाहनिषेधः क्षत्रवैश्ययोः ।
 प्रवरान्ननवेत्यास्मात्प्रवराच्चान्यगोत्रजाः ॥
 इत्थं सगोत्रसंबन्धविवाहविषये स्थिते ।
 यदि कश्चिज्ज्ञानतस्तां कन्यामूढाऽपि गच्छति ॥
 गुरुतल्पव्रताच्छुद्ध्येद्गर्भस्तज्जोऽन्यतां व्रजेत् ।
 भोगतस्तां परित्यज्य पालयेज्जननीमिव ॥
 अज्ञानाद्वैन्द्वैः शुद्ध्येन्निभिर्गर्भस्तु कंद्यप ।
 महद्भिर्महतो यत्नात्कृतः प्रवरनिर्णयः ॥

१ ग. 'इन्द्रकाः कौशिकाश्चे' । २ ग. 'सौमवा' । ३ ख. ग. 'त्रात्रिगोत्रैश्च नो' । ४ ख.
 'प्रवरान्नानवेत्यास्मा' । ग. घ. 'प्रवरान्मान' । ५ ख. ग. घ. 'कंद्यप' ।

जामदग्न्या वत्सविदावाष्टिषेणास्तथैव च ।
 पञ्चावत्तिन एवान्ये सर्वे चतुरवत्तिनः ॥
 विवाहे वितते तन्त्रे होमकाल उपस्थिते ।
 कन्यामृतुमतीं दृष्ट्वा कथं कुर्वन्ति याज्ञिकाः ॥
 स्नापयित्वा तु तां कन्यामर्चयित्वा यथाविधि ।
 युञ्जानामाहुतिं हुत्वा ततः कर्म प्रवर्तते ॥
 षड्धा । विवाहहोमे प्रक्रान्ते यदि कन्या रजस्वला ।
 त्रिरात्रं दंपती स्थातां पृथक्शय्यासनाशनौ ॥
 चतुर्थेऽहनि सुस्नातौ तस्मिन्नग्नौ यथाविधि ।
 विवाहहोमं कुर्यातामित्यादिस्मृतिसंग्रहः ॥
 विवाहे दंपती स्यातां त्रिरात्रं ब्रह्मचारिणौ ।
 अलंकृता वधूश्चैव सहशय्यासनाशनौ ॥
 अधर्म्येषु विवाहेषु ताम्बूलमनुमोदनम् ।
 हवनं भोजनं चैव वर्जयेत्सर्वथा द्विजः ॥
 आसुरेषूपवासः स्याद्दान्धर्वेषु त्रिरात्रकम् ।
 राक्षसे चैव पैशाचे कुर्याच्चान्द्रायणं तथा ॥
 गर्भाधानादिसंस्कारेष्विष्टापूर्तकृषिष्वपि ।
 वृद्धिश्राद्धं पुरा कार्यं कर्मादौ स्वस्तिवाचनम् ॥
 वृद्धमुख्यास्तु पितरो वृद्धिश्राद्धेषु भुञ्जते ।
 चूडाहोमावसाने तु बालमुख्यास्तु भुञ्जते ॥
 वसवो रुद्रा आदित्यारुयवस्थाः कामरूपिणः ।
 बाला युवानो वृद्धाश्च पितृणामाश्रयाः स्मृताः ॥
 प्रेतानामाश्रया रुद्रा यमश्चैवान्तकः स्मृतः ।
 असंस्कृतप्रमीतानां ब्रह्मा विष्णुः समाश्रयः ॥
 अनाश्रितानां जीवानां दत्तं नैवोपतिष्ठति ।
 प्रारम्भादूर्ध्वमाशौचे विवाहः कार्य एव तु ॥
 प्रारम्भो वरणं यज्ञे संकल्पो व्रतसन्नयोः ।
 नान्दीश्राद्धं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया ॥
 निमन्त्रणं वा श्राद्धे तु प्रारम्भः स्यादिति स्मृतिः ।
 गणेशः क्रियमाणानामेकं स्यान्मातृपूजनम् ॥
 वृद्धिश्राद्धं च तन्त्रं स्याद्धोमास्तु स्युः पृथक्पृथक् ।

अथाऽऽहिकमुच्यते—

तत्र प्रमात उत्थायेष्टदेवतां मनसा नत्वा तदहःकृत्यं स्मृत्वा संध्या-
पासनादि कुर्यात् । तत्र मूत्रपुरीषोत्सर्गमेवं कुर्यात् । अवानस्पत्याया-
ज्ञिकशुष्ककाष्ठलोष्टतृणपर्णादिकं गृहीत्वा शिरः प्रावृत्य यज्ञोपवीतं
निधीतं पृष्ठतः कण्ठलम्बितं धृतैकवस्त्रश्चेद्दक्षिणे कर्णे निधाय दिगन्-
वलोकनं च कृत्वा काष्ठाद्यन्तर्धानं कुर्यान्न वा मौनं वाग्यमं वा घ्राणस्य
पिधानं च क्रमात्कृत्वा दिवा संध्ययोरुदङ्मुखो रात्रौ दक्षिणामुखो
मूत्रपुरीषोत्सर्गं कुर्यात् ।

कालकृष्टे जले चित्यां बल्मीके गिरिमस्तके ।

देवालये नदीतीरे दर्भपत्रेषु शाङ्खले ॥

सेव्यच्छायेषु वृक्षेषु मार्गे गोष्ठाम्बुमस्मसु ।

अग्नौ च गच्छंस्तिष्ठंश्च विष्ठां मूत्रं च नोत्सृजेत् ॥

वाप्यग्न्यर्कक्षंगोसोमसंध्याम्बुस्त्रीद्विजन्मनः ।

पश्यन्नामिमुखश्चेतान्विष्ठां मूत्रं च नोत्सृजेत् ॥

सर्वे निषेधा नैव स्युः प्राणवाधामयेषु च ।

काष्ठादिना त्वपानस्थममेध्यं निमृजीत च ॥

रथ्याचत्वरतीर्थेषु श्मशाने गोमये जले ।

अङ्गारोद्यानसप्राणियज्ञभूमिषु नोत्सृजेत् ॥

कन्दमूलफलाङ्गारैर्नामेध्यं निमृजीत च ।

इति मूत्रपुरीषोत्सर्गविधिः ॥

अथ शौचविधिः—

शौचे यतनः सदा कार्यः शौचमूलो द्विजः स्मृतः ।

शौचाचारविहीनस्य समग्रं कर्म निष्फलम् ॥

शौचं च द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यन्तरं तथा ।

मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यं भावशुद्धिस्तैथाऽऽन्तरम् ॥

गृहीतशिश्रश्चोत्थाय मुद्गिरभ्युद्धृतैर्जलैः ।

गन्धलेपक्षयकरं शौचं कुर्यादतन्द्रितः ॥

अन्तर्जलाद्देवगृहाद्वल्मीकान्मूषकस्थलात् ।

कृतशौचापविद्धाश्च न ग्राह्याः पञ्च सुसिकाः ॥

मार्गस्थ्याश्मशानस्थाः पांसुला मलिनास्त्यजेत् ।
कीटाङ्गारास्थिरहिता नाऽऽहरेच्छर्करान्विताः ॥
वापीकूपतडागेषु नाऽऽहरेद्वाह्यमृत्तिकाः ।
अन्तर्जलगता ग्राह्याः परतो मणिवन्धनात् ॥
आरण्यकेषु त्वेवं स्याद्ग्रास्येष्ववाहरणं विदुः ।

सूत्रे—

एका तु मृत्तिका लिङ्गे तिस्रः सव्येतरे मृदः ॥
करद्वये मृद्वयं स्यान्मृत्प्रमाणमनेकधा ।
त्रिपर्वपूरमात्रा वा मृत्तिकाऽक्षप्रमाणिका ॥
आर्द्रामलकमात्रा वा मूत्रशौचे तु मृत्तिका ।
मूत्रात्तु द्विगुणं शुके मैथुने त्रिगुणं स्मृतम् ॥

पुरीषे तु—

पञ्चापाने मृदः क्षेप्याः करे वामे दश स्मृताः ।
करयोः सप्त दातव्याः पुरीषे मृत्प्रमाणकम् ॥
अर्धप्रसृतिमात्राद्यास्तदर्धार्धास्ततः स्मृताः ।

[*हस्तेऽर्धमात्रं प्रसृतेस्तदर्धं पुनस्तदर्धं तु यथाक्रमेण ।
मृदोऽपि मानं कथयन्ति केचिद्दिवा गृहस्थस्य सुखस्थितस्य ॥]

यद्वाऽपाने मृदस्तिस्रः प्रसृत्यर्धत्रिमागिकाः ।
यद्वा प्रसृतिमात्रास्त्रिः पौदपाण्योः पृथक्पृथक् ॥
एतच्छौचं गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम् ।
त्रिगुणं स्याद्वनस्थानां यतीनां तु चतुर्गुणम् ॥
यद्दिवा विहितं शौचं तदर्धं निशि कीर्तितम् ।
तदर्धमातुरे प्रोक्तमातुरस्यार्धमध्वनि ॥
श्रीशूद्रादेरशक्तानां बालानां चोपनीतितः ।
गन्धलेपक्षयकरं शौचं कुर्यान्न संख्यया ॥
एकैकया मृदा पादौ हस्तौ प्रक्षालयेत्ततः ।

इति शौचविधिः ॥

* धनुर्बिहान्तर्गतः श्लोकः ख. ग. पुस्तकयोर्वर्तते ।

अथाऽऽचमनविधिः ॥

तत्र हस्तौ पादौ प्रक्षाल्य यज्ञोपवीती शुद्धमूमौ पादौ प्रतिष्ठाप्य बद्धकच्छशिखः पुण्डरीकाक्षमिष्टदेवतां स्मृत्वा प्रकृतिस्थं फेनबुद्बुदरहितं संहताङ्गुलिपाणिनाऽम्बु गृहीत्वाऽङ्गुष्ठकनिष्ठिके मुक्त्वा शेषं वीक्षितं ब्रह्मतीर्थेन त्रिश्रतुर्वारं समाहितः पिबेत् । कायेन तीर्थेन वा दैवेन वा पिबेत् । न पित्र्येण कदाचन । पीत्वा हस्तौ प्रक्षाल्य [*ओष्ठान्ततः संकोच्य संहताङ्गुलमूलेनालोमकेन मुखं द्विः प्रमृज्य] संहताङ्गुलिभिर्मुखं सकृदवमृज्य हस्तौ प्रक्षाल्य पादौ शिरश्चाभ्युक्षेत्र वा संहताङ्गुलिमिरास्यं सलोमप्रदेशे स्पृष्ट्वा हस्तं प्रक्षाल्याङ्गुष्ठप्रदेशिनीभ्यां घ्राणे स्पृशेत् । अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां चक्षुषी श्रोत्रे वा स्पृशेत् । अङ्गुष्ठकनिष्ठिकाभ्यां नाभिं हृदयं तलेन सर्वाङ्गुलिभिः शिरो बाहुमूले सर्वाङ्गुल्यग्रैः स्पृशेत् । सर्वत्र मध्ये मध्येऽपि स्पृशेत् । अत्यन्ताशक्तौ त्रिः पीत्वा हस्तं प्रोक्ष्य श्रोत्रं स्पृशेत् ।

हृत्कण्ठतालुगामिः स्युरग्निः शुद्धा द्विजाः क्रमात् ।

शूद्रादयोऽन्ततः सकृत्स्पृष्टाभिः शुद्धाः ।

न वर्षधारास्वाचामेत्तप्ताभिश्चाप्यकारणात् ।

कनिष्ठादेशिन्यङ्गुष्ठमूलेषु कायपित्र्यब्रह्मतीर्थानि । कराग्रे दैवं तीर्थं करमध्ये सौम्यं तीर्थमग्नितीर्थं च निर्वपणसंश्रयलाजहोमादिनित्यहोमान्कायेन तीर्थेन कुर्यात् । दैविकं चार्चनबलिप्रक्षेपपर्युक्षणमार्जनभोजननित्यहोमान्दैवेन दैविकं च पैतृकं पित्र्येण । कमण्डलुस्पर्शनं दधिप्राशनं नवान्नप्राशनं सुराग्रहणं दैविकं च सौम्येन कुर्यात् । आग्नेयेन प्रतिग्रहं कुर्यात् ।

इत्याचमनविधिः ।

अथाऽऽचमननिमित्तानि—उच्छिष्टस्पर्शने पादावसेचने शिखामोक्षे यज्ञोपवीतापगमे चोदकमुत्तीर्यावतीर्य च संदेहेषु सर्वेष्ववाचामेत् । आस्यगतश्मश्रुस्पर्शने च लोमकोष्ठस्पर्शने च दन्तसक्तस्य जिह्वया स्पर्शने च रथ्याप्रसर्पणे च स्नेहपञ्चनखस्पर्शने च रोदने च विण्मूत्ररेतःशौचान्ते च पीत्वा लीढे च [+दन्तसक्तं निष्ठीव्य च देवताभिगमने च द्विराचामेत् ।

* धनुश्चिह्नान्तर्गतपाठो ग. पुस्तके । + धनुश्चिह्नान्तर्गता पङ्क्तिः क. पुस्तके नास्ति ।

१ ख. ग. त्ताभिस्तिष्ठभिरास्यमलो । २ ख. ग. घ. °तु । लीशू । ३ ख. ग. °संश्रवणत्वं । घ. संश्रवण° । ४ ख. ग. घ. °न सुग्रह° ।

स्तात्वा पीत्वा च लीढे च] निष्ठीव्य सुप्त्वाऽधोवायौ वासो विपरिधाय
चाभ्यङ्गे कृते च हविर्मक्षणे च कृते द्विराचामेत् ।

भोजने हवने दान उपहारे प्रतिग्रहे ।

संध्यात्रयाम्बुपानेषु पूर्वं पश्चाद्विराचामेत् ॥

स्वाध्याये च वस्त्रसहित उच्छिष्टस्पर्शश्चेत्तदालभ्याङ्गे निधाय वा
तत्सहित आचान्तः शुध्येत् । निधाय वाऽऽचम्य वस्त्रादिकं प्रोक्षेत् ।
अन्नपानादिना सहित उच्छिष्टस्पृष्टश्चेन्निधायाऽऽचम्य प्रोक्षेत् । अन्ना-
दिरक्षाशक्तौ तु तदालभ्यान्तिके निधाय वा शौचाचमनं कुर्यात् । परि-
वेषणं कुर्वन्नुच्छिष्टं स्पृष्ट्वाऽन्नपात्रं निधायाऽऽचम्याभ्युक्ष्य परिविष्यात् ।
परिवेषणं कुर्वन्मूत्राद्युच्छिष्टश्चेदन्नादिकं निधाय शौचं कृत्वाऽन्नादिकं
प्रोक्ष्याग्निमर्कं वा संस्पृश्य परिविष्यात् । परिवेषणे रजोदृष्टौ तत्स्पृष्टा-
न्नस्य त्यागः । अन्नागारे चाण्डालसूतिकोदक्यापतितादिस्पृष्टे चेत्याग
एव । रजकादिस्पृष्टे तु जलेनाऽऽस्पृष्याग्निमर्कं वा स्पर्शयेत् । उच्छिष्टोपहत-
स्त्रीशूद्रसंभाषणे चास्पृश्यदर्शने च ।

पित्र्यमन्त्रानुब्रवणे चाऽऽत्मात्मने च प्रोक्षणे ।

अधोवायुसमुत्सर्ग आक्रन्दे क्रोधने क्षुते ॥

[*मार्जामूषिकास्पर्शं प्रहासे ष्ठीवनेऽनृते ।

अन्त्यसंभाषणे दर्शने च कर्म कुर्वन्नाचामेत्] । श्वकाकादिदर्शने
चैवम् ।

अकर्म कुर्वन्पूर्वेषु दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत् ।

अनुष्ठानेऽग्निगोविप्रस्त्रीप्रच्युतकेशनखस्पर्शने नीवीसंसने चापः
स्पृशेत् । आर्द्रतृणं गोमयं भूमिं वौषधीर्वा स्पृशेत् । कर्णं वा स्पृशेत् ।
सिङ्घाणिकारक्तपूर्यस्वेदस्पर्शने तु प्रक्षाल्याद्यादि स्पृशेत् । आपत्सु
नैमित्तिककर्माङ्गाचमनस्थाने श्रवणस्पर्शनं स्यान्मनःशुद्ध्यर्थम् ।

अग्निस्तीर्थानि वेदाश्च वरुणार्केन्दुर्वायवः ।

विप्रस्य दक्षिणे कर्णे नित्यं तिष्ठन्ति देवताः ॥

जपहोमप्रदानेषु पितृपिण्डोदकाग्निषु ।

कृतेष्वाचमनं कार्यं पितृकार्येषु सर्वथा ।

* धनुश्चिह्नातर्गत्यं पक्तिः कपुस्तके नास्ति ।

नास्पृश्यं स्पृशन्नाचामेन्न फलकाद्यासनासीनो न त्रिपद्यां नान्यार्थं
आसने मोजनार्थासने भुक्त्वाऽऽचामेद्वा । नान्यासने शयनयानपादुको-
पस्थो न दुर्देशे पादाग्रस्थो न प्रह्वो न तिष्ठन्न व्रजन्नाप्रणतो नान्यमना
न विलोकयन्न हसन्न रुदन्न जल्पन्न नग्नो नैकवस्त्रो नाञ्जलिना न परं
स्पृशन्वामहस्तेन न बहिर्जानुकरो न प्रौढषादो न प्रसारितपादो न
बद्धासनो न गले बद्धो नाऽऽवेष्टितशिरा न यज्ञोपवीतमुत्तरीयं चान्यथा
धृत्वाऽऽचामेत् । तत्र सम्यग्धृत्वा पुनराचामेत् । यज्ञोपवीते नष्टेऽन्य-
त्सूत्रं वस्त्रं चोपवीत्याचामेत् । वामहस्ते कुशेऽन्यद्वर्मे वा स्थिते दक्षिणेन
न पिबेत् । अपः करनखस्पृष्टा न पिबेत् । तत्सुरावद्दुष्टम् । आचमना-
द्युच्छिष्टे दूर्वा दूरतो वर्जयेत् ।

न चाङ्गुलिभिराचामेन्नातीर्थेन न शब्दवत् ।

नावीक्षितं नास्वभावं नोष्णं जलमकारणात् ॥

वासने पात्रमुद्धृत्य न पिबेद्दक्षिणेन तु ।

सौवर्णरौप्यताम्रैश्च वेणुबिल्वाश्मचर्मभिः ॥

अलाबुदारुपात्रैश्च नारिकेलकपित्थकैः ।

तृणकाष्ठैर्जलाधरैरन्यान्यन्तस्तिमृन्मयैः ॥

वामेनोद्धृत्य वाऽऽचामेदन्यदातुरसंभवे ।

तत्र मृन्मयपात्रस्थजलं नैवोपहन्यते ॥

तीर्थतोयं च शुध्येत करकादिस्थितं सदा ।

पादक्षौचं शिखाकच्छबन्धं धौतोपवीतकम् ॥

विनाऽऽचान्तोऽशुचिर्नित्यं बद्धः कण्ठे शिरस्यपि ।

पवित्रकर आचामेच्छुचिः कर्मार्थमावृणत् ॥

कुशमात्रकरो वाऽपि दर्ममात्रकरोऽथ वा ।

तदोङ्कारेणाऽऽचमनं यद्वा व्याहृतिभिर्भवेत् ॥

सावित्र्या वाऽपि कर्तव्यं यद्वा कार्यममन्त्रकम् ।

तत्कुशं विधिवल्लूनं न त्यजेदन्यथा त्यजेत् ॥

अन्ये दर्मास्तु संत्याज्यास्त्यजेद्दूर्वाङ्कुरौ न तु ।

न पादप्रक्षालनशेषमाचामेत् । नान्याचमनशेषेण चाऽऽचामेद्यद्याचा-
मेद्मूमौ जलं स्रावयित्वाऽऽचामेत् । नात्राऽऽचमनशेषेण नाग्न्युक्कशेषेण

कर्माणि कुर्यात् । यदि कुर्याद्भूमौ जलं स्नायित्वा तत्रैवाम्बुपात्रं
स्थापयित्वाऋत्य कर्माणि कुर्यात् ।

अथाऽऽचमनापवादः—

अस्नेह औषधे जग्धे स्निग्ध बद्धे सलेपने ।
नाऽऽचामेद्भोजने वृत्ते शुद्ध्यर्थं क्रमुकादिषु ॥
अन्येषु चाऽऽममक्षयेषु संमारेषु सुगन्धिषु ।
ताम्बूले क्रमुके होमे मुक्तस्नेहानुलेपने ॥
इक्षुदण्डे फले मूले पत्रपुष्पतिलेषु च ।
तथा त्वक्तृणकाष्ठेषु नाऽऽचामेदाममक्षणे ॥
मधुपर्के च सोमेषु प्राणाहुतिषु चाप्सु च ।
आस्यहोमेषु सर्वेषु नोच्छिष्टो भवति द्विजः ॥

दन्तवदन्तलग्नं रसाज्ञाने शुद्धम् । जिह्वया स्पर्शनेऽशुद्धम् । तत्र
कर्णस्पर्शमम् । अन्यत्वास्यगतं शुद्धम् । अन्यत्वाचान्तेन तत्स्थाना-
च्छ्रुतेन निगिरंस्त्यजन्वा कर्णं स्पृशेत् । यद्वा निगीर्णं कर्णस्पर्शः । त्यक्ते
त्वाचमनम् ।

रसज्ञाने त्वसंभावे द्विराचमनमिष्यते ।
अन्यत्वास्यगतं चैव त्वाचान्ते त्ववशिष्टकम् ॥
आस्यं संशोधयेद्यत्नादन्तांश्च मृदुयत्नतः ।
दन्तमेदे महत्पापं रक्तं मद्यसमं विदुः ॥
एवं कृते यत्स्थितं स्यात्तन्न दोषाय सर्वदा ।
ओष्ठश्मश्रुगतो लेपः शुद्धः प्रक्षालिते स्थितः ॥
मुखजा विप्रुषः सूक्ष्माः शुद्धाः स्वाश्च परस्य ताः ।
स्थूलाश्च विप्रुषः शुद्धा यद्यङ्गे न पतन्ति ताः ॥
अङ्गपाते तु प्रक्षाल्या आचामेच्च परस्य चेत् ।
बिन्दुष्वाचमनं कुर्युरनङ्गे पतितेष्वपि ॥
वेदाभ्यासे मुखज्जाताः शुद्धा एव तु सर्वदा ।
श्मश्रु चाऽऽस्यगतं शुद्धं यद्यङ्गेन तु संस्पृशेत् ॥
परस्य स्पर्शने शुद्धा मूस्पृष्टाचामबिन्दवः ।
जानुमात्रजले तिष्ठन्नाचामन्हि न दुष्यति ॥

उपविष्टः समाचामेज्जानुमात्रादधोजले ।
 जलाचान्तो जले शुद्धो बहिराचमनो बहिः ॥
 बहिरम्भस्थ आचान्तः सर्वत्र शुचिरेव तु ।
 जलस्थो जलकार्येषु स्थलस्थः स्थलकर्मसु ॥
 उभयोरुभयस्थस्तु स्वाचान्तः शुद्धिमाप्नुयात् ।
 न जले शुष्कवस्त्रेण न शुष्के चाऽऽर्द्रवाससा ॥
 आचमादिक्रियां कुर्याद्वहिर्जानुर्न कुत्रचित् ।

इत्याचमनप्रकरणम् ।

अथ दन्तधावनविधिः—

प्रातःकाले च कर्तव्यं शुद्ध्यर्थं दन्तधावनम् ।

प्राङ्मुख ऐशान्यभिमुखो वा दक्षिणं बाहुमुद्धृत्यान्तर्जानुंकर उप-
 विश्य तिक्तकषायकटुकसुगन्धिकण्टकिक्षीरिवृक्षगुल्मलतादीनामेकेन
 प्रक्षालितेन वाग्यतो दन्तान्धावयेत् । तत्र वृक्षजकाष्ठं स्यादव्रणं मृदु-
 कीटाग्न्युदकादृषितं द्वादशाङ्गुलमष्टाङ्गुलं वा ।

कनिष्ठाग्रसमस्थूलं पर्वार्धकृतपूर्वकम् ।

दन्तधावनमुद्दिष्टं जिह्वालेखनिका तथा ॥

क्षत्रियादिष्वङ्गुलाङ्गुलह्रासः । स्त्रीणां चतुरङ्गुलम् । सर्वेषां चैके ।

दन्तधावनमन्त्रः—

आयुर्वलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च ।

ब्रह्मप्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते ॥

प्रक्षाल्य मङ्क्त्वा त्यजेत् । तत्र खदिरगराकेतकीकरवीरकुटजासना-
 र्कसर्जारिमेदापामार्गमालतीबिल्वाम्रकदम्बकरञ्जव्रजीवेणुपूक्षमाषकैबद-
 रीशिरीषकोविदारपालाशशाकवृक्षशिखण्डिप्रियङ्गुतमालाः प्रशस्ताः ।
 शाल्मल्यरिष्टमव्यकिंशुकपीलुबिभीतकगुग्गुलूकप्रकुम्भयष्टितिन्दुकमधूके-
 ङ्गुदधतूरपारिमद्राम्लिकाश्च वर्ज्याः ।

इष्टकौकाष्ठपाषाणैर्न कुर्याद्वन्तधावनम् ।

दधिनीलधवामोचाकदम्बेङ्गुदतिन्दुकाः ॥

बन्धूकमलिकाराजकार्पासाः श्रीहरस्तथा ।

औदुम्बरवटक्रमुकशिशिपाश्वस्थशग्रुभिः ॥

कुशकाशैर्दन्तशुद्धौ गां पश्येन्नान्यथा शुचिः ।

कोविदारशमीकाचश्लेष्मातकपलाशकाः ॥

निर्गुण्डीशिशपाशोककदम्बकुटजा वटाः ।

विहिताः प्रतिषिद्धाः स्युरिमे तस्माद्विकल्पिताः ॥

पलाशं कुसुमं शौकं शिशिपां कार्पासं दमयन्तीं शाल्मलीं शिरीषं शमीं
लक्ष्मणां करञ्जवटार्कचकुलपारिजातनिर्गुण्डीसूचीमुखकण्ठकिनश्च पूति-
गन्धोग्रगन्धमधुरविदलवित्त्वग्विषदिग्धोर्ध्वशुष्कांश्च वर्जयेदित्येके ॥

आसने शयने याने पादुकादन्तधावने ।

पालाशाश्वत्थकौ वज्र्यौ सर्वकुत्सितकर्मसु ॥

श्राद्धे यज्ञे च नियमे पत्यौ च प्रोषिते तथा ।

अजीर्णे च विवाहे च उपवासे व्रतेषु च ॥

प्रतिपदर्शषष्ठीषु नवम्यां च विशेषतः ।

दन्तधावनं वर्ज्यम् । अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पौर्णमास्यां स्त्रीतैलदन्त-
काष्ठानि वर्ज्यानि । अर्कवारव्यतीपातजननदिनसंक्रान्तिनन्दादिषु
विशेषतः । षष्ठीप्रतिपदोर्भूताष्टमीपर्वसु विशेषतो दर्शं नवम्यां च ।

तैलाभ्यङ्गं स्त्रियं मांसं दन्तकाष्ठं च वर्जयेत् ।

दन्तकाष्ठालाभे प्रतिषिद्धदिने चापां द्वादशगण्डूषैर्मुखशुद्धिः । यद्वा
मृणपर्णोदकेनाङ्गुल्या वा दन्तान्धावयेत् प्रदेशिनीवर्ज्यम् ।

मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैर्दन्तदाढ्यं भवत्यपि ।

इति दन्तधावनविधिः ।

अथ स्नानविधिः ।

संशोध्य दन्तानाचम्य विधिवत्स्नानमाचरेत् ।

स्नानमूलाः क्रियाः सर्वाः श्रुतिस्मृत्युदिता मृणाम् ॥

अस्नातस्तु पुमान्नाहो जपहोमादिकर्मसु ।

गुणा दश स्नानशीलस्य पुंसो रूपं च तेजश्च बलं च शौचम् ॥

आयुष्यमारोग्यमलोलुपत्वं दुःस्वप्नघातश्च तपश्च मेधा ।

स्नानेनाऽऽत्मप्रसादः स्याद्देवा अभिमुखाः सदा ॥

सौभाग्यं श्रीः सुखं पुष्टिः पुण्यं विद्या यशो धृतिः ।

१ ख. ग. 'मीप्रक्षले' । २ ख. ग. 'म्बककुभा व' । ३ ग. काशं । ४ ख. ग. 'इदासु वर्ज' ।
वेत् । ५ ख. ग. 'मे मनः प्र' ।

महापापान्यलक्ष्मीश्च दुरितं दुष्टचिन्तितम् ॥
 शोकदुःखादिहरणं प्रातःस्नानं विशेषतः ।
 प्रातर्मध्याह्नयोः स्नानं वानप्रस्थगृहस्थयोः ॥
 यतेस्त्रिषवणं स्नानं सकृत्तु ब्रह्मचारिणः ।
 सर्वे वाऽपि सकृत्कुर्वुरशक्तौ चोदकं विना ॥
 स्नानं च सर्ववर्णानां कार्यं शौचपुरःसरम् ।
 समन्त्रकं द्विजानां स्यात्स्त्रीशूद्राणामन्त्रकम् ॥
 नमस्कारेण मन्त्रेण शूद्राणां तु क्रिया स्मृता ।
 न जले शुष्कवस्त्रेण स्थले चैवाऽऽर्द्रवाससा ॥
 तर्पणाचमनं जाप्यं मार्जनादिकमाचरेत् ।
 ब्राह्मस्नानेषु सूर्यार्ध्यं जपोत्सर्जनतर्पणे ॥
 जलेष्टिहोमाञ्शुष्केण जले कुर्वन्न दुष्यति ।
 स्नानं च द्विविधं प्रोक्तं वारुणतरमेदतः ॥
 तत्रापि वारुणं मुख्यमितरद्वौणमेव तु ।
 आग्नेयं वारुणं ब्राह्मं वायव्यं दिव्यमेव च ।
 सारस्वतमिति स्नानं स्मृतं षोडैव तत्र तु ॥
 आग्नेयं भस्मना स्नानमद्भिर्वारुणमुच्यते ।
 आपोहिष्ठामयं ब्राह्मं मन्त्रस्नानं च तत्स्मृतम् ॥
 पच्छोऽर्धर्चश ऋक्शश्च मार्जनं तन्मयं तृचे ।
 ब्राह्मं हस्तैस्थितं तोयं शिरसा धारयेदिति ॥
 यत्स्मृतं तदपि ब्राह्मं वायव्यं रजसा गवाम् ।
 [*दिव्यमातपवर्षाद्भिर्गङ्गास्नानसमं स्मृतम् ॥
 विद्वत्सरस्वतीवाचा प्राप्तं सारस्वतं स्मृतम् ।]
 दिव्यतीर्थमयं स्नानं गुर्वाचार्येरितं तथा ॥
 सर्वतीर्थाभिषेकात्तु पवित्रा विदुषां हि वाक् ।
 चाण्डालादिस्पर्शने च कार्यं वारुणमेव तु ॥
 काम्यं मलापकर्षं च क्रियास्नानं च वारुणम् ।
 इतराणि यथायोग्यं देशकालाद्यपेक्षया ॥

* धनुश्चिह्नान्तर्गतः श्लोकः ख. ग. पुस्तकयोर्विद्यते ।

१ ख. ग. 'णसच्छूद्राणां क्रि°' । २ ख. ग. 'णशुष्के वै°' । ३ ख. ग. 'योर्ध्वं ज°' । ४ ख. ग. 'जने स' । ५ ख. 'जयंस्तदुन' । ६ ख. ग. 'स्तच्युत°' । ७ ख. ग. घ. 'भिमव' ।

स्रोतसोऽभिमुखः स्नायान्मार्जने चाघमर्षणे ।
 अन्यत्रार्कमुखो रात्रौ प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा ॥
 संध्यामुखस्तु संध्यायां तथैवाऽऽद्यन्तयामयोः ।
 नित्यं नैमित्तिकं काम्यं क्रियाङ्गं मलकर्षणम् ॥
 क्रियास्नानं तथा षष्ठं षोढा स्नानं प्रकीर्तितम् ।
 नित्यमेव तु मध्याह्ने प्रातश्च क्वच कस्यचित् ॥
 यतिव्रतिब्रह्मचारिहोत्रध्येतृतपस्विनाम् ।
 उच्छिष्टाद्युपघातेषु चास्पृश्यस्पर्शनेषु च ॥
 ग्रहसंक्रमणादौ च स्नानं नैमित्तिकं भवेत् ।
 पुण्यस्नानादिकं काम्यं दैवज्ञविधिचोदितम् ॥
 इष्टापूर्तक्रियार्थं यत् क्रियाङ्गं स्नानमुच्यते ।
 मलापकर्षणं यत्तत्स्नानमभ्यङ्गपूर्वकम् ॥
 स्नानमेव फलं तीर्थे क्रियास्नानं तदुच्यते ।
 अनर्हस्त्ववगाह्यैव स्वाचान्तः स्नानमाचरेत् ॥
 प्रक्षाल्योच्छिष्टमुच्छिष्टस्तथैव स्नानमाचरेत् ।
 नाल्पाम्भसि शिरो मज्जेन्नावगाहेत्समुद्रके ॥
 क्रियास्नाने शिरो मज्जेदन्यत्रापि सरःसु च ।
 उदयात्पूर्वमूर्ध्वं वा स्नानं स्यात्संगवेऽपि वा ॥
 प्रातः संक्षेपतः स्नानं होमाद्यर्थं तदिष्यते ।
 नदीसरिद्वेवखातगतप्रस्रवणेषु च ॥
 सरःसु चाकृत्रिमेषु शस्तं तीर्थं विशेषतः ।
 वाप्यां कूपे तडागे वा पारक्ये वोष्णवारिणि ॥
 प्रातःस्नानं सदा कुर्यादुष्णेनैव सदाऽऽतुरः ।

तत्र पादौ मुखं प्रक्षाल्य प्रणवं सावित्रीं च स्मृत्वा शिखां बद्ध्वाऽऽ-
 चम्य तटं प्रक्षाल्य दर्भादीन्निधाय दर्भपाणिः कृतसंकल्पो जलं नत्वा प्रद-
 ताञ्जलिः प्राङ्मुखोऽवगाह्य कक्षादीन्निमृज्य स्नात्वा द्विराचम्य दर्भपाणि-
 रापोहिष्ठाद्यैरब्देवतैर्मार्जने कृत्वा जलालोडनं चाघमर्षणं (*कुर्वन्नेव
 पुनः स्नात्वा द्विराचम्य जलतर्पणं) कुर्यान्न वा ततो वस्त्रप्रान्तं निष्पीड्या-

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः क. पुस्तके नास्ति ।

१ ख. ग. 'स्रोऽभिमु' । २ ख. ग. घ. 'स्नानार्हस्त्वव' । ३ ख. ग. 'सरिस्तु' । ४ ख. ग.
 'द्वैरर्धवन्तै' । ५ घ. 'कुर्यान्नवा' ।

(*पः स्पृष्ट्वा वस्त्रद्वयं परिधानोत्तरीये कृत्वा स्नानवस्त्रं निष्पीड्य)
आचम्य संध्यामुपासीत ।

मध्याह्नान्ने त्वेवं विशेषः—

कार्यं माध्याह्निकस्नानं संक्षिप्तं वाऽपि विस्तृतम् ।

संक्षिप्तस्य प्रयोगोऽत्र वक्ष्यते स्मृतिसंग्रहात् ॥

तत्र कृतशौचो द्विराचम्य विष्णुं शिवं सूर्यं चेष्टदेवतां नत्वा प्रक्षालिततटे मृत्तिकां दर्भानक्षतान्स्तण्डुलांस्तिलान्संस्थाप्य मृत्तिकां त्रिधा विभज्यैकेन मागेन नाभेरधः संलिप्य प्रक्षाल्य स्नात्वा द्विराचम्य भूर्भुवः स्वरिति मृत्तिकां प्रोक्ष्य हस्ताभ्यां तत्सवितुर्वरेण्यमिति सूर्यस्य दर्शयित्वा नाभेरधः स्योना पृथिवि भवेति द्यावापृथिवी शान्तेति वा लिप्त्वाऽन्यभागं सूर्यदर्शितं नाभेरूर्ध्वं गन्धद्वारामित्थालिप्य 'आपो अस्मान्मातरः' 'इदमापः प्रवहत' । 'सुमित्र्या न आप ओषधयः' इति शिरस्यभ्युक्ष्य 'दुर्मित्र्यास्तस्मै सन्तु' इति बहिः प्रसिञ्च्य योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः' इति मृच्छेषं प्रक्षाल्यान्यतीर्थं गङ्गातीर्थं स्मृत्वा नत्वा 'हिरण्यशृङ्गं वरुणं प्रपद्ये' इति वरुणं नत्वा तीर्थं चतुर्हस्तं प्रैकल्प्य प्रदक्षिणमुदकमावर्तयेत् । जानुमात्रसरिज्जले तिष्ठेदन्यत्रोपविशेत् । स्नात्वा देहं प्रक्षाल्य पुनः स्नात्वा द्विराचम्याब्देवतैर्वारुणैः शुद्धशुचिपवित्रलिङ्गैर्मार्जनं कृत्वा 'इमं मे गङ्गे' इति जलं त्रिरालोड्य मग्नोऽघमर्षणं कुर्यात् । तच्च घमर्षणमङ्गुष्ठाङ्गुलिभिः श्रोत्रद्वन्द्वनासिकामुखं पिधाय निमग्नस्त्रिषडष्टद्वादशवारमावर्तयेदघमर्षणम् ।

ऋतं चेति तुचं सूक्तं दुपदां वा जपेद्द्वयम् ।

ओंकारं वा जपेद्विष्णुं शिवं सूर्यं स्मरेत्तथा ॥

ततस्त्रिषडष्टद्वादशवारं वाऽऽप्लुत्य द्विराचम्यैवाऽऽर्द्रवासा जलतर्पणं कुर्यात् । ततो जलादुत्तीर्य स्नानवस्त्रप्रान्तं तटे निष्पीडयेत्—ये के चास्मत्कुले जाता इति ।

ततः स्नानार्द्रवस्त्रं त्यक्त्वा शुष्कं शुद्धमहतं कार्पासं क्षौमं वा श्वेतं धौतुरक्तं वा वस्त्रद्वयं धृत्वा जङ्घे पादौ प्रक्षाल्य द्विराचम्य गङ्गादिमुक्तिकयोर्ध्वपुण्ड्रं कुर्यात् ।

इति स्नानप्रकरणम् ।

* धनुश्चिह्नान्तर्गता पङ्क्तिः क. पुस्तके नास्ति ।

१ ख. ग. 'लालेप्य' । २ ग. 'सिञ्च्य' । ३ ख. ग. 'प्रक्षाल्य' । ४ ख. ग. 'शुद्धम्' ।
५ क. जात्युक्तं ।

अथ ब्रह्मयज्ञतर्पणविधिः—

अन्वारब्धेन सव्येन दक्षिणेन तु पाणिना ।
सव्योत्तराभ्यां पाणिभ्यामथवा तर्पणं भवेत् ॥

आन्द्रे पिण्डे विवाहे च दाने चैकेन दीयते ।
तर्पणे तूभयेनैवं जलं देयं तु नान्यथा ॥

यामहस्ते तिलान्क्षिप्त्वा जलमध्ये तु तर्पयेत् ।
स्थले शाठ्यां तटे पात्रे रोममूले न कुत्रचित् ॥

असंस्कृतप्रमीतानां स्थले दद्याज्जलाञ्जलिम् ।

शुक्लैस्तिलैर्दूर्ध्वैर्देवानुपवीती दैवेन तीर्थेन प्राङ्मुखस्तर्पयेत् । शबलै-
स्तिलैर्ऋषीन्निवीती कायेनोदङ्मुखस्तर्पयेत् । आचार्यान्पितृन्प्राची-
नावीती पित्र्येणः कृष्णैस्तिलैर्दक्षिणाभिमुखस्तर्पयेत् । यद्वा शुद्धोदकै-
र्देवानृषींश्च पितृंस्तिलैः सर्वान्वा सर्वैस्तर्पयेत् । यद्वा देवानक्षतैस्तण्डुलै-
र्ऋषींस्तिलैः पितृन्देवानामेकैकमञ्जलिं दद्यात् । ऋषीणां द्वौ द्वौ पितॄणां
त्रींस्त्रीन्दद्यात्स्वाचारप्राप्तैर्मन्त्रैः । यद्वा ब्रह्मादयो ये देवास्तान्देवांस्तर्प-
यामि । भूर्देवांस्तर्पयामि । भुवर्देवांस्तर्पयामि । स्वर्देवांस्तर्पयामि ।
भूर्भुवः स्वर्देवांस्तर्पयामि । कृष्णद्वैपायनादयो य ऋषयस्तानृषींस्तर्प-
यामि । भूर्ऋषींस्तर्पयामि । भुवर्ऋषींस्तर्पयामि । स्वर्ऋषींस्तर्पयामि ।
भूर्भुवःस्वर्ऋषींस्तर्पयामि । सोमः पितृमान्यमोऽङ्गिरसोऽग्निष्वात्ताः
कव्यवाहनादयो ये पितरस्तान्पितॄंस्तर्पयामि । भूः पितॄंस्तर्पयामि ।
भुवः पितॄंस्तर्पयामि । स्वः पितॄंस्तर्पयामि । भूर्भुवः स्वः पितॄंस्तर्पयामि ।
ततः पित्रादीन्प्रतिपुरुषं तर्पयेत् । मात्रादीर्मातामहादीन्मातामह्यादीः
पितृव्यांस्तत्पत्नीर्ज्येष्ठभ्रातृस्तत्पत्नीर्मातुलांस्तत्पत्नीर्गुर्वाचार्योपाध्याया-
न्मुहूर्त्संबन्धिवान्धवांश्च द्रव्यदातृपोषकांश्च तत्पत्नींश्च तर्पयेत् ।

तिलाभावे स्वर्णरूप्यताम्रदर्भतिलोदकैः ।

खड्गमौक्तिकहस्तेन कार्यं वा पितृतर्पणम् ॥

न केवलजलेनैव कर्तव्यं सति संभवे ।

न जीवत्पितुकः कृष्णैस्तिलैस्तर्पणमाचरेत् ॥

सप्तम्यां रविवारे च जन्मर्क्षदिवसेषु च ।

गृहे निषिद्धं सतिलं तर्पणं तद्बहिर्भवेत् ॥

शोभनगृहे शोभनदिने न तिलतर्पणम् ।
 विवाहे चोपनयने चौले सति यथाक्रमम् ॥
 वर्षमर्धं तदर्धं च नेत्येके तिलतर्पणम् ।
 * वृद्धौ सत्यां च तन्मासे नेत्येके तिलतर्पणम् ॥
 तिथितीर्थविशेषे तु कार्यं प्रेते च सर्वदा ।
 पिण्डान्सपिण्डा नो दद्युः प्रेतपिण्डं विनाऽत्र तु ॥
 पितृयज्ञे च यज्ञे च गयायां दद्युरेव ते ॥
 गयासाम्यं मृताहस्य केचिदाहुः पुराणकाः ।
 वसुरुद्रादित्यरूपाञ्छ्राद्धार्थं तर्पयेत्पितृन् ॥
 नामगोत्रे समुच्चार्य तिलैस्तीर्थेषु संयतः ।
 दीपोत्सवश्चतुर्दश्यां कार्यं च यमतर्पणम् ॥
 कृष्णाङ्गारचतुर्दश्यामपि कार्यं सदैव तु ।
 यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च ॥
 वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ।
 औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने ॥
 वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः ।
 चतुर्दशैते मन्त्राः स्युः प्रत्येकं च नमोन्विताः ॥
 एकैकेन तिलैर्मिश्रान्दद्युर्ध्नीनुदकाञ्जलीन् ।
 यज्ञोपवीतिना कार्यं प्राचीनावीतिनाऽथ वा ॥
 देवत्वं च पितृत्वं च यमस्यास्ति द्विरूपता ।

ततः स्नानवस्त्रं निष्पीडयेत् । न त्रिगुणीकृतं पीडयेत् । न जले
 पीडयेत् । न दक्षिणाग्रं प्रसारयेत् । स्नात्वाऽऽर्द्रवस्त्रो विण्मूत्रे कृत्वा
 प्राणायामत्रयं कृत्वा पुनः स्नायात् ।

नोत्तरीयमधः कुर्यान्नोपर्यधस्थमम्बरम् ।
 न सर्वकृष्णं रक्तं वा परिदध्यात्कदाचन ॥
 कुतुपं शाणमजिनं योगपट्टोत्तरीयके ।
 यज्ञोपवीतमन्यद्वा द्वितीयं तु भवेदिह ॥
 स्नात्वा न पीडयेत्केशान्नाङ्गेभ्यस्तोयमुद्धरेत् ।
 न वस्त्रं विधुनेच्छश्च केशानवधूनयेत् ॥

स्नातो नाङ्गानि मृज्यात्तु स्नानवस्त्रेण सर्वथा ।
 नान्योऽन्यं पृषतो मृज्यान्न लिम्पेत्पृषतो मिथः ॥
 स्नात्वा न धावयेदन्तान्न मृज्याद्वाससा मुखम् ।
 न रात्रौ सृत्तिकासनानं नैव भौमार्कवारयोः ॥
 संध्योर्नैव गोमूत्रं न शुद्धेद्रोमयं निशि ।
 दिवाऽम्बुगोशकृन्मूत्रैः शुद्धिर्निश्यम्बुमस्ममिः ॥
 पश्च पिडांस्त्रिपिण्डान्वाऽप्युद्धरेत्परवारिषु ।
 स्नायादपत्युपहते नित्यार्थं न महानिशि ॥
 महानिशा द्वे घटिके रात्रौ मध्यमयामयोः ।
 न महानिशि नित्यार्थं काम्यं नैमित्तिकं भवेत् ॥
 स्नायात्तु पूर्वमस्नातो निश्युष्णेन जलेन च ।
 नाम्बु हन्यान्न निन्देच्च तीर्थे तीर्थान्तरं स्मरेत् ॥
 न स्नायादुत्सवेऽतीते माङ्गल्यं विनिवर्त्य च ।
 अनुव्रज्य सुहृद्वन्धूनर्चयित्वेष्टदेवताम् ॥
 मृते जन्मर्क्षदिवसे प्रतिपन्नवमीषु च ।
 श्राद्धे कर्ता चान्यदिने संक्रान्तिग्रहणेषु च ॥
 अर्कवारे च सप्तम्यां चतुर्दश्यष्टमीषु च ।
 एकादश्यां पौर्णमास्यां षष्ठ्यां दर्शे विशेषतः ॥
 तैलाभ्यङ्गं रतिं मांसं दन्तकाष्ठं च वर्जयेत् ।
 उष्णोदकेन न स्नायादन्यदा वाऽप्यकारणात् ॥
 क्रियास्नानं च काम्यं च पारक्योष्णेन वर्जयेत् ।
 नद्यां नास्तमिते स्नाया(*द्विशेषान्मध्ययामयोः ।
 अग्निं प्रज्वालय वा स्नाया)द्वाप्यादिषु महाजले ॥
 राहुदर्शनसंक्रान्तिविवाहोत्क्रान्तिवृद्धिषु ।
 स्नानदानादिकं कार्यं निशि काम्यव्रतेषु च ॥
 नद्यां स्नात्वा नदीं चान्यां न प्रैशस्येच्च धर्मवित् ।
 अस्पृश्यस्पर्शने स्नाने नाघमर्षणतर्पणे ॥
 उभावप्यशुची स्यातां दंपती मिथुनं गतौ ।
 शयनादुत्थिता नारी शुचिः स्यादशुचिः पुमान् ॥

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः क. पुस्तके नास्ति ।

क्रतौ तु मैथुने स्नायाद्गर्भधारणशङ्कया ।
 अनृतौ तदभावाच्च शौचं मूत्रपुरीषवत् ॥
 रोगेण यद्रजः स्त्रीणां न तेनाशुचयः स्मृताः ।
 चाण्डालादिस्पर्शनादौ विस्तरौ वक्ष्यते पृथक् ॥
 शवासुगमने स्नानं घृतप्राशो विकल्पितः ।
 यत्र पुंसः सचैलं स्यात्स्नानं तत्र सुवासिनी ॥
 कुर्वती वा शिरः स्नानं शिरोरोगी जटी सदा ।
 अशक्तौ शोभनगृहे शोभनाहे च सर्वदा ॥
 न शीतलजलस्नानं कार्यं नैषोष्णसेविना ।

उद्धृतजलस्नाने मार्जनं कार्यम् । अघमर्षणजपोऽस्ति न वा । जल-
 तर्पणं तु कार्यं नवा । स्थलतर्पणं तु पात्रस्थे जलेऽक्षतादीन्निक्षेप्य
 पात्रान्तरे कार्यं सौदके गर्ते वा । सबर्हिषि मूस्थले कार्यं माबर्हिषि
 नाशुचौ स्थले कार्यम् ।

अथाम्यङ्गस्नानविधिः—

तैलाभ्यङ्गे निषिद्धाः स्युः सर्वाश्च तिथयः सदा ।
 द्वितीयां वर्जयित्वैव दृष्टादृष्टद्विदोषतः ।
 सार्पपं गन्धतैलं च यत्तैलं पुष्पवासितम् ॥
 अन्यद्रव्ययुतं तैलं न दुष्यति कदाचन ।
 तैलाभ्यङ्गनिषेधेषु तिलतैलं निषिध्यते ॥
 अभ्यङ्गस्य निषेधस्तु सार्पपादेरपीष्यते ।
 स्नेहेनाभ्यङ्गो भवति स स्नेहः सार्पपादिकः ॥
 न भोजनाय तैलस्य निषेधोऽभ्यङ्ग एव सः ।
 तैलशब्दस्तिलस्नेहे सुख्खो नैव यौगिकः ॥
 अतस्तिलविकारेऽपि पिण्याकतिलमोदके ।
 शङ्कुलीकृसरादौ च निषेधो नैव जायते ॥
 सार्पपादौ तैलशब्दस्तत्कार्यसदृशत्वतः ।
 संतापः कान्तिरल्पायुर्धनं निर्धनता तथा ॥
 अनारोग्यं सर्वकामा वारेष्वभ्यङ्गकारिणः ।
 असौभाग्यं च वैधव्यं वारयोर्गुरुशुक्रयोः ॥

१ ख. कुर्वीत वा । ग. कुर्वीतैव । घ. कुर्वीतैवाशि° । २ ख. °द्वगर्तं । ३ ख. ग. अनारोग्यं
 च वैधव्यं ।

निषिद्धदिवसे वारे रात्रौ च व्याधितस्य च ।
द्रव्यान्तरयुतं तैलं न दुष्यति कदाचन ॥
शिरःस्नातस्तु तैलेन नाङ्गं किञ्चिदुपस्पृशेत् ।
सर्वथा नित्यकर्मार्थं स्नायादेव कदाचन ॥
विना मुक्तिकया वाऽपि सकृदुष्णेन वारिणा ।

इति स्नानविधिः ।

अथ संध्याविधिः—

संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु ।
यत्किञ्चित्कुरुते कर्म न तस्य फलमश्नुते ॥

तत्र पादौ हस्तौ प्रक्षाल्य द्विराचम्य दर्भपाणिरापो हिष्ठाद्यैर्द्देवतैर्म-
न्त्रैर्दर्भैः शिरसि मार्जनं कृत्वाऽऽत्मानं परिषिच्य सूर्यश्चेत्यपः पीत्वा
द्विराचामेत् । सायंकाले तु अग्निश्चेत्यपः पिबेत् । ततो द्विराचम्य पुनश्चा-
द्देवतैर्मार्जनं कृत्वाऽऽत्मानं परिषिच्य गायत्र्याऽभिमन्त्रितं तोयमञ्ज-
लिना सूर्यायाध्वं त्रिरुत्क्षिपेत् । अशुद्धे देशे धाराम्बुमार्जनं परिवर्जयेत् ।

पात्रस्थेनाम्बुना कुर्याद्द्वामहस्तस्थितेन वा ।

ततः प्राणायामत्रयं कृत्वाऽऽसूर्यदर्शनात्तिष्ठन्प्राङ्मुखो गायत्रीं जपेत् ।

आनक्षत्रदर्शनादासीनः सायं प्रत्यङ्मुखो जपेत् ।

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च शतमष्टोत्तरं जपेत् ॥

वानप्रस्थो यतिश्चैव सहस्रादधिकं जपेत् ।

यद्वाऽऽपत्सु जपेद्देवीमष्टाविंशतिमष्ट वा ॥

सदर्भपाणिराहोमाहर्भस्थस्तूक्तसंख्यया ।

हस्तेनाऽऽवर्तयेद्देवीमक्षसूत्रैरथापि वा ॥

सौवर्णैराजतैस्ताम्रैः स्फाटिकै रत्नजैस्तथा ।

अरिष्टैः पुत्रजीवोत्थैरिन्द्राक्षैः शङ्खसंभवैः ॥

रुद्राक्षैरपि पद्माक्षैः कुशग्रन्थिभिरेव च ।

मणिभिस्त्वक्षसूत्रं स्यात्तदष्टोत्तरसंख्यया ॥

चतुष्पञ्चाशता वाऽपि सप्तविंशतिभिस्तु वा ।

ओष्ठयाजपादुपांशुः स्याच्छ्रेष्ठो वै मानसस्ततः ॥

१ ग. 'कुदोष्णेन चाम्बुना । २ ग. मार्जयेत् । ३ क. 'रक्षजै' । ४ ख. ग. 'जीवैश्च इ' ।

५ ख. ग. 'षष्ठशतसं' । घ. 'दष्टजपसं' । ६ क. 'सः स्मृतः ।

स उपांशुजपोऽशब्दश्चलज्जिह्वारदच्छदः ।

मानसस्त्वचलज्जिह्वादशनच्छद ईरितः ।

नाधोरतिर्नान्यमना न च व्यत्यस्तपत्करः ।

जपेन्न प्रौढपादश्च नावष्टब्धोऽलसोऽशुचिः ॥

न च कामन्न जल्पंश्च न पार्श्वमवलोकयन् ।

नासंख्यातमदर्भश्च नाशिखाकच्छबन्धनः ॥

मनःसंहरणं शौचं मौनं मन्त्रार्थचिन्तनम् ।

अव्यग्रत्वमनिर्वेदो जपसंपत्तिहेतवः ॥

जपान्ते प्रातः सौरैर्मन्त्रैः सूर्यमुपतिष्ठेत् । सायं वारुणैः । यद्वोमयत्र
जातवेदसेन वैष्णवै रौद्रैर्वोपतिष्ठेत् । दिग्भ्यो दिग्देवताभ्यो नमस्कृत्य
संध्यायै गायत्र्यै सावित्र्यै सरस्वत्यै सर्वाभ्यो देवताभ्यो नमस्कुर्यात् ।
इत्यादि यथास्वाचारं कार्यम् ।

पुनः सूर्यं नमस्कृत्य नामगोत्रेण वाग्यतः ।

गुप्तमग्न्यम्बु नीत्वाऽथ होमं कुर्याद्यथा विधिः ॥

इति संध्योपासनविधिः ।

अथ होमविधिः—

होमे मुख्यो यजमानः पत्नी पुत्रश्च कन्यका ।

ऋत्विक् शिष्यो गुरुभ्राता माग्निनेयः सुतापतिः ॥

एतैरेव हुतं वस्तु तद्धुतं स्वयमेव तु ।

पर्युक्षणवर्ज्यं पत्नी जुहुयात्कुमारी च ॥

असमक्षं तु दंपत्योर्होतव्यं नर्त्विगादिना ।

द्वयोरप्यसमक्षं चेद्भवेद्धुतमनर्थकम् ॥

संनिधौ यजमानः स्यादुद्देशत्यागकारकः ।

*असंनिधौ तु पत्नी स्यादुद्देशत्यागकारिका ॥

असंनिधौ तु पत्न्याः स्यादध्वर्युस्तदनुज्ञया ।

उन्मादे प्रसवे चतौ कुर्वताऽनुज्ञया विना ॥

नोपवासी प्रवासे स्यात्पत्नी धारयते व्रतम् ।

सर्वदा यजमानो वा त्यजेत्तद्दिङ्मुखः शुचिः ॥

* इदमर्थं ख. ग. पुस्तकयोर्नास्ति ।

प्रातर्होमे संगवान्तः कालस्त्वनुदिते तथा ।
 सायमस्तमिते होमकालस्तु नव नाडिकाः ॥
 बहुशुष्केन्धने वाऽग्नौ सुसमिद्धे विधूमके ।
 साङ्गारे लेलिहाने च होतव्यं नान्यथा क्वचित् ॥
 अग्निः प्रदक्षिणावर्तः कर्मदश्च शुभावहः ।

अग्निं परिसमुह्य परिस्तीर्य पर्युक्ष्य ततो गन्धपुष्पैरलंकृत्य समिधं
 क्षिप्त्वा प्रदीप्तां समिधं द्यङ्गुलमतिक्रम्य देवायतने संपूर्णं हौम्यं देवती-
 र्थेन कायेन सौम्येन वा हुत्वा पुनः समिधं क्षिप्त्योपस्थाय परिसमुह्य
 पर्युक्ष्य हुतशेषं ब्राह्मणाय दत्त्वा नमेत् ।

पयो दधि यवागूश्च सर्पिरोदनतण्डुलाः ।
 सोमो मांसं तैलमापो दशैतान्यग्निहोत्रके ॥
 स्यादग्निहोत्रवद्बृह्ये संस्कारो मन्त्रवर्जितः ।
 यद्वा त्रिः प्रोक्षणं तेषां मांसमौपासने न च ॥
 शालिश्यामाकनीवारा ब्रीहिगोधूमयावकाः ।
 एतेषां तण्डुला होम्या यावानलप्रियङ्गवः ॥
 प्रियङ्गवैश्च गोधूमाः श्यामाका ब्रीहयो यवाः ।
 साहस्रैप्येणापि होम्याः स्युः स्वरूपेणैव वै तिलाः ॥
 द्रव्यं सुवेण होतव्यं पाणिना कठिनं हविः ।
 ब्रीहीणां च यवानां च शतमाहुतिरिष्यते ॥
 तदन्नं द्विगुणो ग्रासो मयूराण्डाकृतिस्तथा ।
 कुक्कुटाण्डकमात्रं तु पिण्ड इत्यभिधीयते ॥
 अङ्गुष्ठपर्वमात्रं स्यादवदानं ततोऽपि वा ।
 ज्यायः स्विष्टकृदाज्यं तु चरुश्ङ्गुलसंमितः ॥
 ग्रासमात्रा भवेद्भिक्षा अग्रं ग्रासचतुष्टयम् ।
 अग्रं चतुर्गुणीकृत्य हन्तकारः स उच्यते ॥
 भिक्षापुष्कलमग्रं वा पूर्वं पूर्वं चतुर्गुणम् ।
 नृभोजनं तद्विगुणं शरावः पात्रमेव च ॥

कृद्वा—प्रस्थं धान्यं चतुःषष्टेराहुतेः परिकीर्तितम् ।

तिलानां तु तदर्धं स्यात्तदर्धं स्यादधृतस्य तु ॥

१ क. 'क्षिने तं' । २ क. 'क्षिणीकृत्य कं' । ३ क. 'जिते' । य^१. ४ क. ग. घ. 'कः शालयश्च
 गोधूमादी' । ५ ख. ग. घ. 'स्वरूपेण' । ६ क. 'द्रवं सु' ।

अथ समिधः—

पलाशखदिराश्वत्थशम्युदुम्बरजा समित् ।
अपामार्गार्कदूर्वाश्च कुशाश्चेत्यपरे विदुः ॥
सत्वचः समिधः कार्या ऋज्व्यः श्लक्षणाः समास्तथा ।
शस्ता दशाङ्गुलास्तास्तु द्वादशाङ्गुलिकास्तथा ॥
आर्द्रपक्वाः समच्छेदास्तर्जन्यङ्गुलिवर्तुलाः ।
अपाटिताः अद्विशाखाः कृमिदोषविवर्जिताः ॥
दग्धाः कृशास्तथा स्थूला ह्रस्वा दीर्घास्तु वर्जयेत् ।

यद्वा—समित्पवित्रं वेदश्च त्रयः प्रादेशसंमिताः ।

इध्मस्तु द्विगुणः कार्यस्त्रिगुणः परिधिः स्मृतः ॥
स्मार्ते प्रादेश इध्मो वा द्विगुणः परिधिः स्मृतः ।

अथ दर्भविधिः—

कुशाः काशा यवा दूर्वा उशीराश्चैव कन्दुराः ।
गोधूमा व्रीहयो मुञ्जा दश दर्भाः समुज्ज्वलाः ॥
नभोमासस्य दर्शे तु शुचिर्दर्भान्समाहरेत् ।
अयातयामास्ते दर्भा नियोज्याः स्युः पुनः पुनः ॥

कुशदर्भोत्पाटने मन्त्रः—

विरिञ्चिना सहोत्पन्न परमेष्ठिनिसर्गज ।
नुद पापानि सर्वाणि दर्भं स्वस्तिकरो मम ॥
एवं मन्त्रं समुच्चार्य ततः पूर्वोत्तरामुखः ।
हुंफट्कारेण मन्त्रेण सकृच्छित्वा समुद्धरेत् ॥
अच्छिन्नाग्रा अशुष्काग्राः पिड्ये तु हरिताः शुभाः ।
अमूला देवकार्येषु प्रयोज्याश्च जपादिषु ॥
सप्तपत्राः कुशाः शस्ता दैवे पिड्ये च कर्मणि ।
अनन्तौ तरुणौ साग्रौ प्रादेशौ तु पवित्रके ॥
चतुर्भिर्दर्भपिड्जूलैर्बाह्यणस्य पवित्रकम् ।
एकैकं न्यूनमुद्दिष्टं वर्णे वर्णे यथाक्रमम् ॥

१ क. 'संस्तक्ष्याः' । २ ख. ग. अर्धप° । ३ क. 'ता सदि°' । ४ क. 'र्भाः कुशिरा°' ।
५ ख. ग. सवत्सजाः । घ. सवित्वजाः ।

सर्वेषां वा भवेद्वाभ्यां पवित्रं ग्रन्थितं न वा ।
 त्रिभिस्तु शान्तिके कार्यं पौष्टिके पञ्चभिस्तथा ॥
 चतुर्भिश्चाभिचारे स्यान्निष्कामैरिति केचन ।
 सपवित्रः सदर्भो वा कर्माङ्गाचमनं चरेत् ॥
 नोच्छिष्टं तद्भवेत्तस्य भुक्तोच्छिष्टं तु वर्जयेत् ।
 यैः कृतः पिण्डनिर्वापः श्राद्धं वा पितृतर्पणम् ॥
 विण्मूत्रादिषु ये दर्मास्तेषां त्यागो विधीयते ।
 नीवीमध्ये स्थितास्त्याज्या यज्ञभूमौ स्थिताः सदा ॥
 वामहस्ते स्थिते दर्भे न पिबेद्वाक्षिणेन तु ।
 चर्षकादिनोपग्रहणे न दोषः पिबतो भवेत् ।
 न ब्रह्मग्रन्थिनाऽऽचामेन्न दूर्वाभिः कदाचन ॥
 स्नाने दाने जपे होमे स्वाध्याये पितृतर्पणे ।
 सपवित्रौ सदर्भौ वा करौ कुर्वीत नान्यथा ॥
 कुशाभावे तु काशाः स्युः काशाः कुशसमाः स्मृताः ।
 काशाभावे ग्रहीतव्या अन्यदर्भा यथोचितम् ॥
 नार्द्रालुनीयाद्वात्रौ तु लुनीयाद्वाऽपि संधयोः ।
 दर्भाभावे स्वर्णरूप्यताम्रे रत्नैः क्रियाश्चरेत् ॥
 इति दर्माञ्चयविधिः ॥

अथ बर्हिः—

बर्हिः काशमयं ग्राह्यं न लभ्येत कुशो यदि ।
 शैरोर्यनुजवाश्चैव बालमौञ्जार्जुनेक्षवः ॥
 सुगन्धितेजना दूर्वा क्षीरद्वमा अपि ।
 यदा सर्वतृणेभ्योऽपि ग्राह्यं बर्हिर्यथेप्सितम् ॥
 शूलशुण्डकृष्णमूलदुर्गन्धितृणवर्जितम् ।
 शूकलानेरकांश्चापि वर्जयन्त्यपरे बुधाः ॥
 कुशाभावे परे प्राहुः पर्णवल्लसदोषधीः ।
 बन्धूकशूकरोष्विष्टः परिव्याधकवर्जितः ॥
 मुरव्यान्दर्मान्विशेषेण केचित्काशान्कुशाञ्छरान् ।
 ब्रह्मजान्पुण्डरीकाणि यवव्रीहितृणान्यपि ॥

१ क. ताः पूज्या यः । २ ख. ग. घ. वस्त्रादि । ३ ख. ग. घ. शरशैर्भुतवै । ४ ख. ग. दारदू । घ. दाखदू । ५ ख. ग. शुकशुण्डकृष्णतूलदू । घ. शूकमण्ड । ६ ख. घ. पर्वपर्णवदो ।

अथेधमः—

पालाशः खादिरश्चेधमो मुख्यः स्यात्तदलामतः ।
 शमीवटोदुम्बरंज आश्वत्थस्तदलामतः ॥
 वनस्पतीनां सर्वेषामिधमः कार्यो विशेषतः ।
 तच्चैतान्वर्जयेद्वृक्षान्कोविदारविभीतकान् ॥
 कपित्थामलकौ राजवृक्षं शाकद्रुमं तथा ।
 नीपं निम्बं करञ्जं च तिलकं शात्मलीमपि ॥
 श्लेष्मातकमपि त्यक्त्वा ग्राह्योऽन्यः सकलो द्रुमः ।

अथ क्षुगादिः—

वैकङ्कती वा पालाशी अग्निहोत्रहवण्यपि ।
 जुहूः पालाश्युपभृदाश्वत्थी वैकङ्कती ध्रुवा ॥
 यद्वा सर्वाः सुचः कार्यं एतेषामन्यवृक्षतः ।
 शमीमध्यः सुचः सर्वाः सर्वा वा भूर्जवृक्षजाः ॥
 तदभावे यथालाममन्ययज्ञियवृक्षजाः ।
 खादिरस्य सुचः स्यात्तु शम्याप्राशिन्नमेक्षणे ॥
 खादिरो मसलः कार्यः पालाशः स्यादुलूखलः ।
 यद्गोमौ वारुणौ कार्यौ तदलामेऽन्यवृक्षजौ ॥
 पालाशाद्वा वटाद्वाऽन्यवृक्षाद्वा चमसाः स्मृताः ।
 आश्वत्थं वारणं नोचेदिडापात्रमिहान्यजम् ॥
 मुख्याभावे तु सदृशं द्रव्यं प्रतिनिधीयते ।
 यावद्यावत्तु सदृशं तत्तदेव तु गृह्यते ॥
 काम्ये प्रतिनिधिर्नास्ति नित्ये नैमित्तिके हि सः ।
 काम्येऽप्युपक्रमादूर्ध्वमन्ये प्रतिनिधिं विदुः ॥
 न स्यात्प्रतिनिधिर्मन्त्रस्वामिदेवाग्निकर्मसु ।
 स देशकालयोर्नास्ति अरण्योरग्निरेव सा ॥
 समारूढां च समिधमरणिं ब्रुवते बुधाः ।
 नाभावस्य प्रतिनिधिरभावान्तरमिष्यते ॥
 नापि प्रतिनिधातव्यं निषिद्धं वस्तु कुत्रचित् ।
 श्रोत्रियाणामभोज्यं यद्द्रव्यं हि तददोषतः ॥

ग्राह्यं प्रतिनिधित्वेन होमकार्यं न कुत्रचित् ।
 द्रव्यं वैकल्पिकं केचिद्यत्र संकल्पितं भवेत् ॥
 तदभावे सद्ग्राह्यं न तु वैकल्पिकान्तरम् ।
 मुख्यद्रव्यापचारे तु प्रतिनिध्यभिसंधिना ॥
 प्रयुञ्जानस्य मुख्यार्थलाभे ग्राह्यः स एव हि ।
 उपात्ते तु प्रतिनिधौ मुख्योऽर्थो लभ्यते यदि ॥
 तत्र मुख्यमनादृत्य गौणेनैव समापयेत् ।
 उपात्ते यस्मिन्कस्मिन्वा मुख्योपचरिते सति ॥
 अन्यद्रव्यं सजातीयं विजातीयमथापि वा ।
 उपादाय प्रयुञ्जानो यदि पूर्वमवाप्नुयात् ॥
 उपात्तत्वाविशेषेऽपि पूर्वं हित्वा परं श्रयेत् ।
 मुख्याभावे यदा गौणमुपात्तं तद्विनश्यति ॥
 तत्र मुख्योपमं गौणं ग्राह्यं गौणोपमं न तु ।
 संस्काराणामयोग्योऽपि मुख्य एव हि गृह्यते ॥
 न तु संस्कारयोग्योऽन्यो गृह्यते प्रतिरूपकः ।
 मुख्ये कार्यासमर्थे तु लब्धेऽप्येतस्य नाऽऽदरः ॥
 प्रतिरूपमुपादाय शक्तं तेन प्रयुज्यते ।
 द्यवत्तमात्रपर्याप्तमुख्यद्रव्यस्य संभवे ॥
 पुरोडाशमहत्स्वार्थं न नीवारपरिग्रहः ।
 कृष्णव्रीह्यादिके द्रव्ये शिष्टे यच्चरिते सति ॥
 ग्राह्योऽकृष्णोऽपि सन्व्रीहिर्नाव्रीहिः कृष्णगुण्यपि ।
 कार्यै रूपैस्तथा पर्णैः क्षीरैः पुष्पैः फलैरपि ॥
 गन्धै रसैः सदा ग्राह्यं पूर्वाभावे परं परम् ।
 घ्रीहिर्यवो वा श्यामाको नीवारो वा हविर्भवेत् ॥
 वेणुर्यवाः स्वरसं वा कन्दमूलफलं जलम् ।
 सत्यं वा हविरेतेषु यथासंभवमाचरेत् ॥
 प्रतिनिध्यन्तरं सत्यं विज्ञेयं हविरत्यये ।
 प्रधानदेवतोद्देशात्सत्यजेत्सत्यमात्मनः ॥

१ ख. ग. सदा ग्रा° । घ. सकृद्ग्रा° । २ ग. °पाकृत्वा विशेषेण पू° । ३ ख. ग. °क्तं नैवो-
 पयु° । ४ घ. °युज्यते । ५ ख. शिष्टोपचरि° । ग. शिष्टोपच° । ६ क. कार्ये रूप° । ७ क. घ.
 °वास्तरसं° ।

अतोऽन्यदपि वा ग्राह्यं सदृशं धान्यमात्रकम् ।
 न ग्राह्यं सर्वथा माषवरकोदारकोद्वम् ॥
 यद्वा व्रीहियवाभावे तुषतण्डुलयोगिनीः ।
 औषधीः प्रतिगृह्णीयादाणुकोद्ववर्जिताः ॥
 ग्राह्याणां च भवेद्ग्राह्यमारण्यानामरण्यजम् ।
 यवाभावे तु गोधूमास्ततो वेणुयवादयः ॥
 छन्दोगगृह्यवचनाज्जुहुयान्द्वविरत्यये ।
 फलं याज्ञिकवृक्षस्य पवित्रमथ वा जलम् ॥
 यथाऽग्निहोत्रहोमार्थं पयो न स्यात्कदाचन ।
 तदा व्रीहिर्यवौ ग्राह्यावोषध्यन्तरमेव च ॥
 आरण्यौषधयो वृक्षफलान्याप इति क्रमात् ।
 होमं कर्तुमुपादेयं पूर्वाभावे परं परम् ॥
 तेषामभावे जुहुयाच्छ्रद्धया सत्यमात्मनः ।
 हव्यार्थं गोघृतं ग्राह्यं तदभावे तु माहिषम् ॥
 आजं वा तदलाभे तु साक्षात्तैलं ग्रहीष्यते ।
 तैलाभावे ग्रहीतव्यं तैलजं तिलसंभवम् ॥
 तदभावेऽतसीस्नेहः कौसुमः सर्षपोद्भवः ।
 वृक्षस्नेहोऽथवा ग्राह्यः पूर्वाभावे परः परः ॥
 तदभावे यवव्रीहिश्यामाकान्यतरोद्भवः ।
 पिष्टमालोढ्य तोयेन घृतार्थं योजयेत्सुधीः ॥
 वृक्षतैलेषु पुंनागनिम्बैरण्डोद्भवं त्यजेत् ।
 यद्वा गव्यघृते छागमहिष्यादिघृतं क्रमात् ॥
 तदलाभे गवादीनां क्रमात्क्षीरं विधीयते ।
 तदलाभे दधि ग्राह्यमलाभे तैलमिष्यते ॥
 यत्राऽऽज्यमञ्जनाद्यर्थं न लभ्येत कदाचन ।
 तत्र क्षीराद्यनादृत्य साक्षात्तैलं ग्रहीष्यते ॥
 यत्र मुख्यं दधि क्षीरं तत्रापि तदभावतः ।
 अजादेः क्षीरदध्यादि तदलाभे तु गोघृतम् ॥

१ ग. 'शियवृ' । २ ख. ग. 'यवैर्ग्राह्यमोष' । ३ ख. ग. 'छान्माषायति' । ४ ख. ग. 'हवि-
 ष्याय' । ५ ख. ग. 'तैलं यति' । ६ ख. ग. 'मशाना' ।

मुख्यसंपादकं ग्राह्यं कार्यकारणसंततौ ।
 अत एव घृताभावे पूर्वं दधि ततः पयः ॥
 येषां केषांचिदन्येषां हविषामथ संभवे ।
 सर्वत्राऽऽज्यमुपादेयं भरद्वाजमुनेर्मतात् ॥
 मुख्यकाले यदावश्यं कर्म कर्तुं न शक्यते ।
 गौणकालेऽपि कर्तव्यं गौणोऽप्यत्रेवृशो भवेत् ॥
 सायमाहुतिराप्रातरासायं प्रातराहुतिः ।
 कर्तव्या नातिपद्येत पार्वणं पार्वणान्तरात् ॥
 श्यामाकैर्बीहिभिश्चैव यवैर्वाऽन्योन्यकालतः ।
 प्राग्यष्टुं युज्यतेऽवश्यं न त्वत्राऽऽग्रयणात्ययः ॥
 एवमागामिकार्यस्य मुख्यकालादधस्तनः ।
 स्वकालादुत्तरो गौणः कालः पूर्वस्य कर्मणः ॥
 सर्वत्र गौणकालेषु कर्म चोदितमाचरेत् ।
 प्रायश्चित्तं व्याहृतिभिर्हुत्वा कर्म समाचरेत् ॥
 मुख्यकाले तु मुख्यं चेत्साधनं नैव लभ्यते ।
 मुख्यकालमुपाश्रित्य गौणमप्यस्तु साधनम् ॥
 न मुख्यद्रव्यलोभेन गौणकालप्रतीक्षणम् ।
 एकपक्षगतो याषद्भूमसंघोऽतिपद्यते ॥
 पक्षहोमविधानात्ताम्हुत्वा तन्तुमतीं यजेत् ।
 स्वकालोत्कर्षतः कश्चिद्गौणः कालो निरूपितः ॥
 अपकर्षादथान्योऽपि गौणः कालो निरूप्यते ।
 आमयव्याधिनानापद्धतो वाऽध्वगतोऽपि वा ॥
 राष्ट्रभ्रंशे धनाभावे गुरुगेहे वसन्नपि ।
 अन्येष्वेवंप्रकारेषु निमित्तेष्वगतेषु च ॥
 समासमग्निहोत्राणां यथासंभवमाचरेत् ।
 निमित्तानामिहैतेषां निर्दिश्यैकं यदुच्यते ॥
 तत्सर्वेषु निमित्तेषु जानीयात्प्रतिपादितम् ।
 पक्षहोमानशेषान्वा पक्षहोमानथापि वा ॥

१ ख. प्राप्तेषु पद्यतेऽव° १ ग. प्राप्तेषु यु° । २ ग. द्योमः सद्योति° । ३ ख. °धाने तांस्तुत्वा
 तन्तुमतीं य° । ४ क. 'प्रभवेऽग्रया भा° ।

समस्य जुहुयात्तत्र प्रयोगोऽयं निरूप्यते ।
 प्रतिपद्यन्नेत्सायमापद्यन्त्यत्र वा दिने ॥
 यावन्त्यौपवसथ्याहात्प्राग्दिनानि भवन्ति हि ।
 तावन्ति परिगृह्णीयाच्चतुरुन्नयनानि तु ॥
 पात्रान्तरसहायायां नित्यायां प्रकृतौ सुचि ।
 स्थूलं सुगन्तरं वाऽपि कृत्वा तत्र समुन्नयेत् ॥
 एका समित्सकृद्धोमः सकृदेव निमार्जनम् ।
 उपस्थानं सकृत्कार्यं शेषा प्रकृतिरिष्यते ॥
 एवमेवोत्तरत्रापि प्रातर्होमात्समस्य तु ।
 जुहोत्यौपवसथ्याहात्प्रातर्होमावधीन्सकृत् ॥
 समारोपविधानेन समारोपयतेऽनलान् ।
 एवं प्रतिपदोऽन्यत्र यत्राऽऽपदुपजायते ॥
 तथैवोपवसथ्यात्प्राग्यत्राह्नयापद्विनश्यति ।
 आपदेवावधिर्होमसमासस्याभ्युपेयते ॥
 तस्मात्कदाचिदारभ्य यावत्स्तावतोऽपि वा ।
 आपत्कालसमान्होमान्समस्येदेकपक्षगान् ॥
 एवमेकत्र पक्षे ये होमास्तेषामशेषतः ।
 न्यूनानां वा समासः स्यान्न पक्षान्तरवर्तिनाम् ॥
 सर्वथौपवसथ्याहे सायं होमः पृथग्भवेत् ।
 तथैव यजनीयाहे प्रातर्होमो भवेत्पृथक् ॥
 सर्वोपवासशून्यं चेत्प्राप्तं केनापि हेतुना ।
 तदा तत्सायहोमोऽपि पूर्वेः सह समस्यते ॥
 तावता नापेगच्छेच्चेदापत्पक्षान्तरेऽपि च ।
 पुनस्तत्रापि कर्तव्यः समासः पृथगेव हि ॥
 न तु पक्षान्तरस्थानां समासश्चाद्यते मिथः ।
 एवमापद्रुतः पक्षे पक्षे चैवं समाचरेत् ॥
 तृतीयेऽनन्तरे पक्षे समासं न समाचरेत् ।
 आपच्चेदनुवर्तेत दीर्घकालं कथंचन ॥
 यावज्जीवमविच्छिन्नं पक्षहोमं समाचरेत् ।
 आपदेवावधिस्तत्र न पक्षगणनावधि ॥

अथापरः समासस्य प्रकारः प्रतिपाद्यते ।
 सायंप्रातस्तनौ होमावुभौ सायं समस्य तु ॥
 आपत्तौ जुहुयात्तत्र समिदेकाऽथवा द्वयम् ।
 सायं होमस्य मुख्यत्वात्तदीयं तन्त्रमिष्यते ॥
 चतस्र आहुतीः कुर्यात्तत्र द्वे सायमाहुती ।
 द्वे प्रातराहुती सायं होमेऽथैका समिद्यदि ॥
 समित्कृता द्वितीया चेत्सा भवेत्प्रातराहुतौ ।
 द्विः सायं होमवन्मृज्याहिः प्रातर्होमवत्सु च ॥
 उपस्थानं सकृत्कार्यं शेषं प्रकृतिवद्भवेत् ।
 केचिद्वे आहुती हुत्वा संवेश्यैव निमील्य च ॥
 विच्छिद्यैतावता होमौ कुर्याद्वे आहुती ततः ।
 गुर्वापदि समस्यन्ते प्रातः सर्वे कथंचन ॥
 दीर्घकालापदं मत्वा पक्षहोमे कृते सति ।
 अत्रान्तराले यद्यापत्कदाचिदपगच्छति ॥
 काले काले पुनर्होमः कर्तव्यो विधिना न वा ।
 यावन्तोऽत्र समस्यन्ते सर्वे सायमुपक्रमाः ॥
 प्रातःकालापवर्गाश्च न तु प्रातरुपक्रमाः ।
 प्रातर्होमादिका यद्वा प्रातश्चेदाप्रदागता ॥
 तथा पूर्वापराल्लादौ निमित्ते च समस्यति ।
 पूर्वपक्षे तु रात्रौ चेन्मृतिशङ्काऽग्निहोत्रिणः ॥
 सायं हुत्वा तदैवाथ जुहुयात्प्रातराहुतीः ।
 यदि त्वपरपक्षे स्यान्मृतिशङ्काऽग्निहोत्रिणः ॥
 हुतावशिष्टाः पक्षेस्मिञ्जुहुयात्सकलाहुतीः ।
 दर्शेष्टिं च तदा कुर्यादिष्टिर्यदि न संभवेत् ॥
 देवतानां प्रधानानामेकैकस्य पृथक्पृथक् ।
 पुरोनुवाक्यायाज्याभ्यां चतुरात्तघृताहुतीः ॥
 जुहुयादेवमन्यत्र सर्वत्राऽऽपदि हूयते ।
 अथेष्टचयनमध्ये स्यात्पत्युर्मरणशङ्कनम् ॥
 अवाशिष्टेष्टिदेवेभ्यस्तत्संख्यानि घृतानि च ।
 चतुर्गृहीतान्येकत्र गृहीत्वा चमसैः सह ॥

पुरोनुवाक्यायाज्याभिः पूर्ववज्जुहुयात्तथा ।
 चातुर्मास्यान्तराले स्यात्स्वामिनो मृत्युशङ्कनम् ॥
 तन्त्रान्तपर्वपर्यन्तमग्निहोत्राण्यशेषतः ।
 तदैव कुरुते दर्शपूर्णमासान्वहनपि ॥
 चातुर्मास्यावशिष्टानि पर्वाण्यत्र समाचरेत् ।
 पश्वलाभे पुरोडाशं निर्वपेत्पशुदैवतम् ॥
 आमिक्षामथवा कुर्यात्पूर्णाहुतिमथापि वा ।
 आहिताग्निः कदाचित्तु कृष्णपक्षे मृतो यदि ॥
 तदा शेषाहुतीः सर्वा जुहोतीत्याश्वलायनः ।
 अन्ये तदैव दर्शष्टिं कुर्युः कृष्णे मृतस्य तु ॥
 शुक्लपक्षे निशि प्रेतस्येच्छन्ति प्रातराहुतिम् ।
 य आहिताग्नेर्धर्मः स्यात्स औपासनिकस्य च ॥
 इति शाट्यायनकमाचष्टे ब्राह्मणमत्र तु ।
 संध्यामिष्टिं चरुं होमं यावज्जीवं समाचरेत् ॥
 न त्यजेत्सूतके वाऽपि त्यजन्गच्छेदधो द्विजः ।
 कुर्यात्पञ्चमहायज्ञान्नित्यशः सूतकं विना ॥
 नित्यं नैमित्तिकं चान्यत्स्वकर्मापि न हापयेत् ।
 स्वकर्महानौ पतनमब्देनैव त्वनापदि ॥
 स्वकर्महानौ नास्ति क्यान्मासेन पतनं स्मृतम् ।
 द्वादशाब्दव्रतेनैव तस्य शुद्धिस्तु नान्यथा ॥
 तं निरीक्ष्यार्कमीक्षेत स्पर्शं स्नायात्सचैलकम् ।
 तेन संभाषणं हास्यं कुर्वन्नब्देन तत्समः ॥
 तदन्नभुक्तौ सद्यस्तु सहशय्यासनेषु च ।

इति होमविधिः ।

अथ देवतार्चनविधिः—

ब्रह्माणं विष्णुमीशानं सूर्यमग्निं गणाधिपम् ।
 दुर्गां सरस्वतीं लक्ष्मीं गौरीं वा नित्यमर्चयेत् ॥
 अपस्वग्नौ हृदये सूर्ये स्थण्डिले प्रतिमासु च ।
 शालग्रामे च चक्राङ्के पदे मुद्रासु देवताः ॥

नित्यं सन्ति हिरण्येषु रत्नगोब्राह्मणेषु च ।
 पौरुषेणैव सूक्तेन गायत्र्या प्रणवेन वा ॥
 तल्लिङ्गैरेव वा मन्त्रैरर्चयेद्वर्चनुज्ञया ।
 देवतानामभिर्वा स्याच्चतुर्थ्यन्तैर्नमोन्वितैः ॥
 आवाहनासने पाद्यमर्धमाचमनीयकम् ।
 स्नानमाचमनं वस्त्रमाचामं चोपवीतकम् ॥
 आचामं गन्धपुष्पं च धूपं दीपं प्रकल्पयेत् ।
 नैवेद्यं पुनराचामं नत्वा स्तुत्वा विसर्जयेत् ॥
 शूद्राणां चैव भवति नाम्ना वै देवतार्चनम् ।
 सर्वे वाऽऽगममार्गेण कुर्युर्वेदानुसारिणा ॥
 गुरुक्तेन प्रकारेण वेदबाह्येन नार्चयेत् ।
 यां कांचिद्देवतां कश्चिदाराधयितुमिच्छति ॥
 स सर्वोपाययत्नेन ब्राह्मणान्गाश्च तोषयेत् ।
 एवं देवार्चनं कृत्वा गुरुन्संपूज्यं यत्नतः ॥
 पुष्पं क्षिप्त्वा प्रणम्याथ नित्यदानं स्वशक्तितः ।
 कृत्वा वृन्दान्नमस्कृत्य कर्तव्यं मङ्गलेक्षणम् ॥
 विप्राग्न्यर्काम्बुगोहेमनृपाज्यं मङ्गलं स्मृतम् ।
 अग्निचित्कपिला सत्री यज्वा मृष्टान्नदोऽम्बुधिः ॥
 ज्ञानसिद्धस्तपःसिद्धः शतायुर्धार्मिकः शुचिः ।
 एते पापहराश्चैतान्सदा पश्येन्नमेदपि ॥
 रोचनां चन्दनं हेम मृदङ्गं दर्पणं मणिम् ।
 घृतं चार्कं गुरुं विप्रं प्रातः पश्येत्सदा बुधः ॥
 कृष्णब्राह्मीं च दूर्वां च चन्दनं शङ्खपुष्पिकाम् ।
 सिद्धार्थकान्प्रियङ्गूश्च प्रातः शिरसि धारयेत् ॥
 पापिष्ठं दुर्भगं चान्धं नग्नमुत्कृत्तनासिकम् ।
 प्रातर्न पश्येदेतांस्तु दृष्ट्वा पश्येद्दिवाकरम् ॥

इति देवतार्चनविधिः ।

अथ माध्याह्निकम्—

माध्याह्नस्नानं कृत्वा नित्यं माध्याह्निकं कार्यम् । तत्र पादौ [वा] प्रक्षाल्य

१ ख. ग. °भासने चो° । २ ख. ग. घ. स्त्रीशूद्राणां च भ° । ३ ख. ग. °ज्य भक्तितः ।

४ ख. ग. °दो बुधः ।

द्विराचम्याऽऽपो हिष्ठाद्यैर्मार्जनं कृत्वाऽद्भिः परिप्रोक्ष्याऽऽपः पुनन्तु
पृथिवीमिति जलं दर्भपाणिः पीत्वा द्विराचम्य पुनश्चापो हिष्ठाद्यैर्मार्जनं
कृत्वाऽद्भिः परिप्रोक्ष्य गायत्र्या सकृत्सूर्यायार्घ्यं दत्त्वा प्रदक्षिणमावृ-
त्यापः स्पृष्ट्वा हंसः शुचिषदिति सूर्यमुपस्थायोदृत्य चित्रमित्याद्यैश्चोप-
स्थाय नत्वा भूमिं स्पृष्ट्वा प्राणायामत्रयं कृत्वा गायत्रीं पूर्ववज्जपेत् ।
पुनः सूर्यं नत्वा ब्रह्मयज्ञादिकानि कुर्यात् ।

ब्रह्मयज्ञो देवयज्ञो भूतयज्ञस्ततः परः ।
पितृयज्ञो नृयज्ञश्च पञ्च यज्ञाः प्रकीर्तिताः ॥
स्वाध्यायो ब्रह्मयज्ञः स्याद्देवयज्ञोऽग्निहोमकः ।
भूतयज्ञो बलिः प्रोक्तो हुतशेषान्तस्ततः ॥
पितृयज्ञः स्वधा पितृभ्य इत्यादिदानतः ।
मनुष्ययज्ञोऽतिथ्यादेर्मनुष्योद्देशदानतः ।

अथ ब्रह्मयज्ञः—

तत्र पादौ प्रक्षाल्य द्विराचम्य प्रांगणेषु दर्भेषु प्राङ्मुख आसीनो दर्भ-
पाणिः पवित्रगर्भब्रह्माञ्जलिः प्रणवव्याहृतीरुक्त्वा सावित्रीं पच्छोऽ-
र्धर्चशः सकुशो नवानां चोक्त्वा प्रणवमुक्त्वा, ऋचं सूक्तमनुवाकं वा
यजुर्वा साम वा सावित्रीं वेतिहासं पुराणं च मन्त्रेण मध्यमेन वा
स्वरेणाधीत्य नमो ब्रह्मण इति त्रिरुक्त्वा उत्तरसंस्थां प्रारभ्योत्तसदिति
समापयेत् । ग्रामे मनसाऽधीयीत । ततः स्वशाखोक्तविधिना देवा-
नृषीन्पितृंश्च तर्पयेत् । यद्वा ब्रह्मादयो ये देवा इत्याद्यैर्वा यथाचारं
कुर्यात् । ततो वस्त्रं निष्पीड्याऽऽचम्याश्याम्बु गृहीत्वा गृहं गत्वा वैश्वदेवं
कुर्यात् ।

अथ देवयज्ञः—

गृहस्थो वैश्वदेवाख्यं कर्म प्रारभते दिवा ।
अन्नस्य चाऽऽत्मनश्चैव सुसंस्कारार्थमिष्यते ॥

औपासनाग्निमन्यं वा समिध्य परिसमुह्य पर्युक्ष्याक्षतगन्धपुष्पाणि
दिक्षु चाग्नौ च क्षिप्त्वाऽलंकृत्य हविष्यं पक्वं घृतप्लुतं व्यञ्जनाक्तं वा
यथास्वाचारं हुत्वा परिसमुह्य पर्युक्षेत् ।

अथ बलिहरणम् -

देवयज्ञहुतशेषेण शुद्धिदेशमभ्युक्ष्य तत्र कुर्यात् ।

अथ पितृयज्ञः—तत्र भूतबलिहरणशेषं सोदकं स्वधा पितृभ्य इति प्राचीनावीती दद्यात् । ततस्तथैव बहिर्निवेशनं सोदकमन्नं भूमौ श्वचण्डालपतितभूतवायसेभ्यश्च निक्षिपेत् । एते देवयज्ञभूतयज्ञपितृयज्ञा वैश्वदेव इत्युच्यते ।

अहविष्यं समस्तं च वैश्वदेवे विवर्जयेत् ।

यद्वा—कोद्रवं चणकं माषं मसूरं च कुलित्थकम् ।

क्षारं च लवणं सर्वं वैश्वदेवे विवर्जयेत् ॥

यद्वा न क्षारलवणहोमो वा विद्यते तथा ।

तथा पैरान्नसंस्पृष्टस्य हविष्यस्य होम उदीचीनमुष्णं भस्मापोह्येत-
स्मिञ्जुहुयात् । तद्धुतमहुतं चाग्नौ भवति । न स्त्री जुहुयात् ।

यद्वा सभस्माङ्गारेषु जुहुयादहविष्यकम् ।

अथाऽऽचम्य मनुष्ययज्ञं कुर्यात् । तत्रातिथ्यादिमर्चयित्वा निवीती सनकादिमनुष्येभ्यो हन्तेति दद्यात् । यद्वाऽग्रं हन्तकारं वा हन्तेति वाऽन्नं त्यजेत् ।

सर्वथा—अन्नं पितृमनुष्येभ्यो देयं वाऽपि जलं तथा ।

स्वाहाकारवषट्कारनमस्कारा दिवौकसाम् ॥

स्वधाकारः पितॄणां तु हन्तकारो नृणां स्मृतः ।

पक्वाभावे प्रवासे च तण्डुलानोषधीस्तथा ॥

पयो दधि घृतं वाऽपि कन्दमूलफलादि वा ।

योजयेद्देवयज्ञादौ जलं वाऽऽपत्सु वा जले ॥

द्रव्यं सुवेण होतव्यं पाणिना कठिनं हविः ।

स्नातको ब्रह्मचारी वा पृथक्प्राकी वैश्वदेवं कुर्यात् । स्त्री बालश्च कारयेत् ।

होमाग्रदानरहितं नै मोक्तव्यं कदाचन ।
 अविमक्तेषु संसृष्टेष्वेकेनापि कृतं तु यत् ।
 देवयज्ञादि सर्वार्थं लौकिकाग्नौ कृतं यदि ॥
 इक्षूनपः फलं मूलं ताम्बूलं पय औषधम् ।
 भक्षयित्वाऽपि कर्तव्याः स्नानदानादिकाः क्रियाः ॥
 कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा ।
 पयोमूलफलैर्वाऽपि श्राद्धान्यन्यानि भक्तितः ॥

इति स्मृत्यर्थसार आचारप्रकरणं समाप्तम् ।

कामधेनौ प्रदीप्तेऽब्धौ कल्पद्रुमलतादिषु ।
 शंसुद्रविडकेदारलोलटाद्यैश्च भाषितम् ॥
 मन्वत्रियाज्ञवल्क्यादिव्याख्यातृप्रतिपादितम् ।
 स्मृत्यर्थसारं वक्ष्यामि सुखानुष्ठानसिद्धये ॥

अथ श्राद्धविधिरुच्यते—

तत्र तावच्छ्राद्धं द्विविधम्—पार्वणमेकोद्दिष्टमिति । ऋग्वेदेशेन पार्व-
 णम् । एकोद्दिशेनैकोद्दिष्टम् । तच्च त्रिविधम्—नित्यं नैमित्तिकं काम्यमिति ।
 तत्र नित्यमहरहरमावास्याष्टकादिषु । नैमित्तिकं पुत्रजन्मादिषु । काम्यं
 फलार्थिनां तिथिनक्षत्रादिषु । पुनश्च पञ्चविधम्—अहरहःश्राद्धं पार्वण-
 श्राद्धं वृद्धिश्राद्धमेकोद्दिष्टं सपिण्डीकरणं चेति । तत्र श्राद्धदेशः पुण्योऽ-
 स्थिकेशश्लेष्मादिरहितः शोधितो वृक्षिणोऽप्रवणो गोमयेनोपलितः ।

अथ श्राद्धकालः—अमावास्याऽष्टका वृद्धिः कृष्णपक्षोऽयं नै विधुवत्सं-
 क्रमो व्यतीपातो गजच्छायाग्रहणयुगादिमन्वादयश्च । तथा विशिष्ट-
 देशे गयादौ विशिष्टे काले मृताहादौ ब्रह्मब्राह्मणसंपत्सु वाऽऽत्मरुचिश्चे-
 त्याद्याः कालाः ।

अथ भोज्या ब्राह्मणाः—अनुवाचनज्ञातपूर्वः श्रुताध्ययनसंपन्नो वेदाध्ययन-
 विद्वद्भ्यविश्विधुस्त्रिसुपर्णास्त्रिनाचिकेतो ज्येष्ठसामकृत्विग्याज्यादिः ।
 अथवा दौहित्रो माग्निनेयो जामाता मातुलः श्वशुरः शिष्यसंबन्धिबा-
 न्धवाः कर्मनिष्ठस्तपोनिष्ठः षडग्निः । पञ्चाग्निश्चतुरभिस्त्रेताग्निरैकाग्निर्वै-
 षाध्यायी यतिर्ब्रह्मचारीत्याद्याः प्रशस्ताः ।

१ ख. ग. 'णाप्लवो गो' । २ ख. ग. 'यनद्वयं वि' । ३ ख. ग. घ. अनुवाचनः श्रुत' । ४ ख.
 ग. घ. 'वार्थवि' ।

अथ निषिद्धाः—रोगी न्यूनाङ्गोऽतिरिक्ताङ्गः काणो बधिरो नपुंसकोऽ-
पविद्धपुंस्त्वो जारो जारिणीपतिः खलतिर्निजकृष्णदन्तः कुनखो
दुश्चर्मा विकीर्णी पौनर्भवः कुण्डगोलौ निषिद्धान्नाशी मेढ्रमगाशी भृता-
ध्यायी भृताध्यापकः कन्यादूषी चाभिषस्तो मित्रधुक्पिशुनः सोम-
विक्रयी परिवित्तिः परिवेत्ता तयोर्दातृयाजकौ च वृथा भ्रातापितृसुतभा-
र्थाभिरुत्यामी पुनर्भूपतिः । स्तेनः कितवो देवलकः कर्मदुष्टो विहित-
त्यागी निषिद्धग्राहीत्याद्यः वज्र्याः । सर्वत्र प्रशस्तालाभे निषिद्धराहिते
आह्वयम् । नित्यश्राद्धे वैश्वदेवो ग्रहबलिश्च पूर्वमेव । दर्शश्राद्धे वैश्वदेवः
पूर्वं पश्चाद्वा ।

(* वृद्धावादौ क्षयाहेऽन्ते दर्शे मध्ये महालये ।)

आचान्तेषु च कर्तव्यो वैश्वदेवश्चतुर्विधः ॥

ग्रहबलिस्तु पश्चादेव । अन्यश्राद्धेषु पश्चादेव कार्यं सर्वम् ।

अथामावास्यापार्वश्राद्धमुच्यते—तच्च पितॄणां मातामहानां च कार्यम् ।
तत्र पूर्वद्युस्तद्दिने वा नियतो नियतान्ब्राह्मणश्चिन्तयेत् क्षणः क्विप्तामिति
निमन्त्र्य तानाहूय स्वागतं पृष्ट्वा सुस्वागतमित्युक्ते दाहनीलीछिद्रादि-
वर्जिताहतशुक्लद्विवस्त्रो द्विराचम्य प्राङ्मुखः कृतगोमयमण्डले कुशयव-
गन्धाद्यर्चिते वैश्वदेवब्राह्मणपादानुपवीती सूर्याभिमुखः प्रक्षाल्य कुशति-
लगन्धाद्यर्चितमण्डले पित्रर्थे ब्राह्मणपादान्प्राचीनावीती प्रक्षाल्य स्वयं
द्विराचान्तो द्विराचान्तानुपवेशयेत् । तत्र वैश्वदेवार्थं ब्राह्मणौ प्राङ्-
मुखौ द्वौ भेदयुगदाहायःसंबन्धवर्जितश्लक्ष्णचतुष्पाच्छुद्धपीठे नेपाल-
कम्बले वा ताणांसने वोषवेश्य त्रीन्ब्राह्मणानुदङ्मुखान्पित्रर्थे समुप-
वेशयेत् । यद्वा, एकैकमुभयत्रोपवेशयेत् । मातामहादीनां चैवम् । तन्त्रं वा
वैश्वदेवं स्यात् । ततो गृहाद्वहिः कुशरांस्तिलान्विकीर्य ब्राह्मणसमीपे
कुशेषु प्राङ्मुख उपविश्येष्टदेवं गवरां देवादीन्वस्वादीन्पितृञ्जनार्दने
च नत्वा कुतपादिकाले समन्त्रकं प्रणयामद्वयं कृत्वा प्राचीनावीती
पितॄणां पितामहानां प्रपितामहानां सपत्नीकानां मातामहानां मातुः
पितामहानां मातुः प्रपितामहानां सपत्नीकानाममुकगोत्राणां चक्षुरुदा-

* धनुर्विहान्तर्गत ग्रन्थः क. ग. पुस्तकयोर्नास्ति ।

१ ख. ग. घ. जाराप° । २ ग. खल्वो निज° । ३ ख. ग. तृभोज° । ४ ख. ग. घ. मन्त्रको-
सम्प्रकप्रा° ।

दित्यस्वरूपाणामस्मिन्काले सदैवं पार्वणश्राद्धं युष्मदनुज्ञया करिष्य इति संकल्प्यापहता असुरा रक्षांसीति सर्वतस्तिलान्प्रकीर्योदीरतामित्यूचा प्रोक्षयेत् । दैवं सर्वमुपवीती प्रदक्षिणं युग्मत्वपूर्वमुदगग्रमुदगपवर्ग-मुदङ्मुखः कुर्यात् । ततो वैश्वेदेवार्थं विप्रहस्तेऽपो दत्त्वा युग्मान्कुशानृजूनानासनेष्वासनं दक्षिणतो विश्वेषां देवानामिदमासनमिति यवसहितान्क्षिपेत् ।

आसनेष्वासनं दद्याद्विजहस्ते न कुत्रचित् ।

ततः पुनरपो दत्त्वा पुनर्निमन्त्रयेद्दैवे क्षणः क्रियतामिति । ॐ तथेति विप्रो ब्रूयात् । ततः प्राप्नोतु भवानिति कर्ता ब्रूयात् । ततः प्राप्नवानीति विप्रो ब्रूयादिति ग्रन्थसंग्रहकारस्मृतिः ।

अक्षय्यासनयोः षष्ठी द्वितीयाऽऽवाहने तथा ।

अन्नदाने चतुर्थी स्याच्छेषाः संबुद्धयः स्मृताः ॥

इति श्लोकसंग्रहकारस्मृतिः ।

यद्वा सर्वत्र चतुर्थ्येव प्रयोज्याऽऽवाहनवजम् । सर्वत्र पुनः पुनरपो दद्यात् । ततः पुरुरवाद्देवान्वैश्वदेवानावाहयिष्य इति यवहस्तः पृष्ठाऽऽवाहयेति तैरनुज्ञातो विश्वे देवास आगतेत्यृचाऽऽवाह्य यवान्दक्षिणपादादिमस्तकान्ते समारोप्य विश्वे देवाः शृणुतेमं हवं मे । आगच्छन्तु महाभागा इत्याभ्यामुग्भ्यामुपस्थाय तत्समीपे भूमौ यवान्विकीर्य कुशावास्तीर्य तत्र स्वर्णादितैजसाश्ममयमृन्मयपलाशपत्रादिष्वेकद्रव्यपात्रद्वये द्विकुशकूर्चान्तर्हिते । शं नो देवीरभिष्टय इत्यृचाऽपो निषिच्य यवोऽसि धान्यराज इत्यृचा यवान्क्षिप्त्वा गन्धपुष्पादि क्षिप्त्वा स्वाहाऽर्घ्यं इति निवेद्य विप्रहस्ते कूर्चं प्रागग्रं क्षिप्त्वा या दिव्या आपः पयसेत्यृचा विश्वे देवा इदं वोऽर्घ्यमिति तद्धस्तेऽर्घ्यं दद्यात् । ततो विश्वे देवा अयं वो गन्ध इत्यादि प्रयोगैर्गन्धादि दद्यात् । श्रीखण्डकुङ्कुमकर्पूरागरुपद्मकादिगन्धामुलेपनं कर्ता कुर्यात् । गन्धं दत्त्वा कर्ता दर्भपाणिनाऽनुलिम्पेन्न तु सदर्भेण हस्तेन लिम्पेत् । ब्राह्मणः स्वयं लिम्पेन्नायं नियमः । ततो जातीमल्लिकाश्वेतयूथिकाचम्पककुङ्कुमजात्यादीनि पुष्पाणि मरुबकादिसुगन्धिपत्राणि च देयानि । उग्रगन्धीन्यगन्धीनि वृक्षजरक्तान्यशुक्लान्यसुगन्धिकण्टकिजानि चार्कधचूरशिरीषकाञ्चनारतुलसीबिल्व-

दीनि वर्ज्यानि । ततो घृतमधुसंयुक्तगुग्गुलश्रीखण्डागरुसरलादिसंभवे
समस्तो वा धूपो देयः । प्राण्यङ्गहस्तवाताहतं च धूपं वर्जयेत् । ततो
घृतेन तिलतैलेन वाऽनिषिद्धेन वाऽन्येन दीपं दद्यात् । वसामेदोद्धवं वर्ज-
येत् । ततः शुक्लं शुद्धमहतं सदशवस्त्रमाच्छादनं दद्यात्तन्मूल्यं वाऽलाम
उत्तरीयं यज्ञोपवीतं वाऽशक्तौ दद्यात् । ततोऽर्चनं संपूर्णमस्त्विति
ब्रूयात् । अस्त्विति ते ब्रूयुः । संकल्पसिद्धिरस्त्विति भवन्तो ब्रुवन्त्विति
कर्ता ब्रूयात् । अस्तु संकल्पसिद्धिरिति विप्राः प्रतिब्रूयुः । आसनादिषु
स्वासनम् । अस्त्वर्घ्यम् । सुगन्धः । सुपुष्पाणि । सुमाल्यम् । सुधूपः ।
सुदीपः । सुज्योतिः । स्वाच्छादनमिति विप्रा ब्रूयुरिति संग्रहकारस्मृतिः ।

अथ पित्र्यम्—प्राचीनावीत्यप्रदक्षिणमयुग्मत्वपूर्वं दक्षिणापवर्गं दक्षि-
णामुखः कुर्यात् । पित्र्युपचारेष्वेकवचनं बहुवचनं वा प्रयोज्यम् । जघ-
न्येष्वेकवचनमेव पित्र्यविप्रहस्तेष्वपो दत्त्वाऽयुग्मकुशान्द्रिगुणान्सति-
लानासनेष्वासनं पितृणामिदमासनं पितामहानामिदं प्रपितामहानामि-
दमिति वा पितुरिदं पितामहस्येदं प्रपितामहस्येदमासनमिति वा पित्रे
पितामहाय प्रपितामहायेदमासनमिति वा । पितृभ्यः पितामहेभ्यः प्रपि-
तामहेभ्य इदमासनमिति वा वामभागे दद्यात् । मातामहेषु चैवम् । ततश्च
श्राद्धे क्षणः क्रियतामित्यादिमिनिमन्त्र्य पितृन्पितामहान्प्रपितामहा-
नावाहयिष्य इति तिलहस्तो ब्राह्मणान्पृष्ट्वा पितरं पितामहं प्रपितामहमा-
वाहयिष्य इति वा पृष्ट्वाऽऽवाहयेति विप्रैरनुज्ञात उशन्तस्त्वेत्यूचाऽऽवाह्य
तिलान्मस्तकादिदक्षिणपादान्तमारोप्य, आयन्तु नः पितर इत्युपतिष्ठेत् ।
मातामहेषु चैवं कृत्वा पितृसमीपे भूमौ तिलान्विकीर्य कुशेषु राजता-
दिपूर्वोक्तपात्रत्रये कुशकूर्चान्तर्हिते शं नो देवीरभिष्टय इत्यपो निषिच्य
तिलोऽसि सोमदेवत्य इति तिलान्क्षिप्त्वा गन्धपुष्पादि च क्षिप्त्वा
स्वधाऽर्घ्यं इति निवेद्य विप्रहस्ते कूर्चं क्षिप्त्वा या दिव्या आप इत्युक्त्वा
पितरिदं तेऽर्घ्यं पितामहेदं तेऽर्घ्यं प्रपितामहेदं तेऽर्घ्यमिति क्रमेणार्घ्यं
दत्त्वा चतुर्थ्या वा दत्त्वा तद्धस्तानिःसृतार्घ्योदकं पितृपात्रे प्रसिच्य
दक्षिणाग्रेषु कुशेषु पितृभ्यः स्थानमसीति सपवित्रं न्युब्जं कुर्यात् ।
न्युब्जं कृत्वा च तस्योपर्यर्घ्यपात्रपवित्राणि क्षिप्त्वा तिलपुष्पादि
क्षिपेत् । तत्पात्रमा समातेनं चालयेत् । मातामहेषु चैवम् । अलाम एकपात्रं
त्रिपवित्रं कार्यम् । उशन्तस्त्वा, आयन्तु नः, तिलोऽसीति मन्त्राणामूहो
न कार्यः । देवे पित्र्ये च पात्रनिवेदनान्त आवाहनमिति केचित् । ततः

पितरयं ते गन्धः पितरोऽयं वो गन्ध इत्यादिप्रयोगेण गन्धमाल्यशु-
 कूपुष्पाणि दद्यात् । ललाटे पुण्ड्राकारं स्कन्धे मालां च वर्जयेत् । धूपं
 दीपं च ज्योतिराच्छादनानि च दद्यात् । दैवे पित्र्ये चाऽऽसनक्षणावाह-
 नाध्याक्षतगन्धधूपदीपाच्छादनानां पदार्थानुसमये सति संततिवृद्धिश्च ।
 कौण्डानुसमये विधिसिद्धिरेव । ततः संकल्पसिद्धयन्तं कुर्यात् । अथ
 भोमयेन चतुरस्रं मण्डलं कृत्वोपरि यन्त्रं च कृत्वा दैवे सौवर्णादीनि
 पात्राणि पित्र्ये रौप्यादीनि पात्राणि स्वर्णरौप्यावैधृष्टान्यन्यानि
 पात्राणि वा मृन्मयवर्जितानि मण्डले निधाय तत्रापि निषिच्य हस्तेन
 निमृज्य प्रक्षाल्य पुनर्जलेनैव क्षालयेत् । अथाग्नौ पाणौ वा होमः ।
 निरग्नेः पाणावेव । तत्र घृताक्तमन्नं घृतं चाऽऽदायाग्नौ करिष्य इति पृष्ट्वा
 कुरुष्वेत्यभ्यनुज्ञात औपासनाग्निमुपवीती परिसमुह्य पर्युक्ष्य प्राचीनावीती
 तूष्णीमिधमग्नावाधाय मेक्षणं सुवेणोपस्तीर्याविदानद्वयं क्षिप्त्वा पञ्चा-
 वत्ती त्रयं क्षिप्त्वा पुनः सुवेणाभिघार्यावदाय मेक्षणेन सोमाय पितृमते
 स्वधा नमोऽग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नम इत्याभ्यां मन्त्राभ्यामाहुति-
 द्वयं हुत्वा मेक्षणमग्नावनुग्रह्य हुतशेषं पितृपात्रेषु क्षिपेत् । आहि-
 नाग्निः सर्वाधानी दक्षिणाग्नौ जुहुयात्पित्र्यविप्रपाणौ वा । अग्न्य-
 भावे पाणौ होमः । पाणिहोम इधममेक्षणविप्राभ्यनुज्ञा न सन्ति । पित्र्य-
 विप्रपाणि परिसमुह्य पर्युक्ष्य वामेनोपस्तीर्य दक्षिणेनावदाय प्रत्यभि-
 धार्य हुत्वा पर्युक्षणपरिसमूहने स्तः । मातामहादिषु चैवम् । तत्र सगग्निना
 पाणिहुतं तदेव प्राश्याऽऽचम्योपविशेत् । अथवा भाजने क्षिप्त्वाऽऽ-
 चम्योपविशेत् । अग्न्यभावे हुतं पूर्वं नाश्नीयात् । भोजनकाल एवा-
 श्नीयात् । प्रेतश्राद्धेषु तदग्नौ क्षिपेत् । इत्याद्याहुतिः । ततो दैवपूर्वमुप-
 स्तीर्य स्वयं पत्नी वाऽन्ये वा नियुक्ताः प्रशस्तहविष्यान्नपूर्वपरिवेषणं
 कुर्युः । नापवित्रेण हस्तेन नाऽऽयसेन परिवेषणं कुर्युः । तृणपर्णान्त-
 र्धाने न दीपः ।

अथ हविष्याणि-

ब्रीहिशालिवग्भोधूमप्रियङ्गुमुद्गुमाषश्यामाकनीवाराद्याः कालशाकं
 महाशाकं द्रोणशाकं मेध्यमांसं महाशल्कादीक्षुकदलीपनसाम्लातका-

१ ख. म. °ल्यलक्पु° । २ ख. कालानु° । ३ ग. °वयुष्ठानि । घ. °वपुष्ठानि । ४ ख. म.
 घ. °साङ्गः । ५ क. निर्धूत प्र° । ६ क. होमः ।

अखजूरजम्बूगोस्तनीद्राक्षाप्रियालामलकनारिकेरत्रपुशोर्वारुकचिर्भटपा-
लेयमधुरोत्तमफलानि बदर्यादीन्येला शुण्ठी चाऽऽर्द्रकं हिङ्गुमरिचपिप्प-
लीमधूकगुडशर्कराखण्डकर्पूरसैन्धवमानसलवणानि मधुगव्यपयोदधि-
घृतानीत्यादीनि प्रशस्तानि । एतत्संभवमोदनसूपपायसापूपमक्षयपा-
नादिकं बहु परिवेष्यम् । हिङ्गुशुण्ठीपिप्पलीमरीचकानि द्रव्यसंस्कारा-
र्थानि श्राद्धे स्युर्न प्रत्यक्षाणि ।

अथाहविष्याणि—कोद्रवचणकमसूरकुलित्थपुलकराजमाषरक्तविदलमाषाः
सत्वचश्चाऽऽह्वयः कृष्णयावनालाः कृष्णधान्यानि मुद्गमाषतिलव्यतिरि-
क्तानि वर्ज्यानि । उपोदकी तुलसी कृष्णातसी शिथुर्महासर्षपपत्रशाक-
कृष्णसर्षपपूतिगन्धशाकानि कूष्माण्डफोलकाद्याश्च । विशेषतो वृन्ताक-
बृहतीद्वयालाबुगान्धारिकामर्कटिककपित्थमूलबिल्वफलकाश्चनालकक-
पित्थकनककरञ्जकरवन्दकलिङ्गवंशाङ्कुराणि पित्रर्थोक्त्या याचितं शुल्का-
हृतं सर्वं कृष्णजीरकशतपुष्पीविडलवणाद्यारण्यमृगैर्महिषीपयोदधिघृत-
मित्यादीन्यप्रशस्तानि । प्रशस्तालाभे त्वनिषिद्धं ग्राह्यम् । अथ पात्रे
परिवेष्य दैवे पात्रे सकुशयवान्क्षिप्त्वा पात्रं पर्युक्ष्य पृथिवी ते पात्रमि-
त्यभिमन्त्र्यातो देवा इत्यृचमुक्त्वा विष्णो हव्यं रक्षस्वेत्यन्ने द्विजाङ्गुष्ठं
निवेश्य पुरुरवार्द्रवा विश्वे देवा देवता इदमन्नं हविर्ब्रह्मणस्त्वाहवनी-
यार्थं इयं भूर्गयाऽन्नं च ब्रह्म भोक्ता च ब्राह्मणो गदाधरः । विश्वेभ्यो
देवेभ्य इदमन्नं परिविष्टं परिवेक्ष्यमाणं चाऽऽ तृप्तेर्न ममेति यवोदकेन
त्यक्त्वा ये देवास इत्यृचोपतिष्ठेत । अथ पित्र्यपात्रे तिलान्सकुशान्क्षिप्त्वा
पात्रं पर्युक्ष्य पृथिवी ते पात्रमित्यभिमन्त्रयेदं विष्णुरित्यृचा विष्णो कव्यं
रक्षस्वेत्यङ्गुष्ठं निवेश्य पितरो देवता इदमन्नं कव्यमित्युक्त्वा पित्रे
वसुरूपाय पितामहाय रुद्ररूपाय प्रपितामहायाऽऽदित्यरूपाय पितृभ्यो
वसुरूपेभ्य इति वोक्त्वेदमन्नं परिविष्टं परिवेक्ष्यमाणं चाऽऽ तृप्तेर्न ममेति
वा तिलोदकेन त्यक्त्वा ये चेह पितर इत्यृचोपतिष्ठेत । न चात्रोहः
कार्यः । मातामहेषु चैवम् । अतिथिरस्ति चेत्तं देववदर्चयित्वा स्वेष्टदेव-
तारूपाय शिवरूपाय वाऽन्नं त्यक्त्वा ये देवास इत्युपस्थाय देवताभ्यः
पितृभ्यश्च सप्त व्याधा दशार्णेष्वित्यादीन्नापित्वाऽऽपोशनं दत्त्वा प्रणव-

यत्रीं मधुमतीमुक्त्वा ॐ तत्सद्यथासुखं जुषध्वमिति ब्रूयात् । अथ
 ब्राह्मणाः प्राणाहुतेः पूर्वं मौनिनो भूतलात्पात्रमनुद्धरन्तो मुखशब्दपा-
 ण्यादिचापलं वर्जयन्तो भुञ्जीरन् । यद्वा मृदादिपालिकासु भिडिकासु
 वा प्राणाहुत्याः पूर्वमूर्ध्वं वा पात्रं निधाय भुञ्जीरन् । उच्छिष्टसेकपा-
 दरजःस्पर्शाक्रमणादिभयात्सर्वथा न यन्त्रिकादित्रिपाद्यादिषु निदध्युर्न
 बलिं कुर्युस्ततो भोक्त्रे कर्त्रे च पित्रे च यद्रोचते हविस्तद्देयम् । आ तृप्ते
 रक्षोघ्नपित्र्यपावित्रमन्त्रान्प्रणवादिपूर्वानुपवीती श्रावयित्वा प्रणवगा-
 यत्र्यौ जपेत् । ततः सार्ववर्णिकमन्त्राद्यमादाय प्रणवमुक्त्वा प्राचीनावीती
 मधु वातेत्युचमक्षन्नमीमदन्तेत्युचं [च] श्रावयित्वा तृप्ताः स्थेति पृष्ट्वा
 तृप्ताः स्मेति तैः प्रत्युक्ते दैवपित्र्यब्राह्मणसंनिधौ पुरत उच्छिष्टसमीपे
 दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु तिलोदकं पितृतीर्थेन प्रसिच्य ये अग्निदग्धा ये अनग्नि-
 दग्धा जीवा इत्यनेन सतिलमन्नं क्षिप्त्वा तिलोदकं प्रसिच्याऽऽचमेत् । ततो
 गण्डूषं दत्त्वा सार्ववर्णमन्त्राद्यं पिण्डार्थमुद्धृत्यान्नशेषः किं क्रियतामिति
 पृष्ट्वेष्टेः सह भुज्यतामित्यभ्यनुज्ञाते तैर्गृहीते वाऽग्निहोमेऽग्निसमीपे पाणि-
 होमे विप्रसमीपे पिण्डपितृयज्ञवत्पिण्डान्निदध्यात्तच्चैवम्—गोमयेनोप-
 लिप्ते भूप्रदेशे स्फयेन खादिरेण काष्ठेन वा दर्भेण वा, अपहता असुरा
 इत्यादिना लेखाद्यं दक्षिणाग्रमुल्लिख्याभ्युक्ष्य तत्र बर्हिरास्तीर्य पश्चिम-
 लेखायां पिण्डदेशेषु शुन्धन्तां पितर इत्यादिभिस्त्रिभिर्मन्त्रैस्तिलोदकं
 पितृतीर्थेन निनीय पूर्वलेखायां शुन्धन्तां मातामहा इत्यादिभिर्निनीये-
 तत्ते देवदत्तशर्मन्ये च त्वामत्रान्वित्युक्त्वैतात्पिण्डरूपमन्नं पित्रे न ममे-
 त्यादितिलमिश्रान्पराचीनपाणिः पिण्डान्निधायात्र पितर इत्यादिना
 षट् पिण्डान्सकृदेवानुमन्त्र्य सव्यावृत्योदङ्कावृत्य यथाशक्त्यनुच्छुस-
 न्नासित्वाऽभिपर्यावृत्यामीमदन्त पितर इत्यादिनाऽनुमन्त्र्योच्छुसेत् ।
 ततः पिण्डशेषमवघ्राय हस्तं प्रक्षाल्य पिण्डेषु पूर्ववदुदकं निनीय देव-
 दत्तशर्मन्नभ्यङ्क्ष्वेति पिण्डेषु तैलं दत्त्वा देवदत्तशर्मन्नङ्क्ष्वेत्यञ्जनं दत्त्वै-
 तद्गः पितरो वास इत्यादिना वासो दशामूर्णास्तुकां वा दद्यात् । पञ्चा-
 शद्वर्षताया ऊर्ध्वं स्वहृत्स्थरोम वा दद्यात् । अथ पिण्डान्पितृरूपानुप-
 तिष्ठेत नमो घः पितर इत्यादिना मनोन्वाहुवामह इति च तिसृभिः । अथ
 पिण्डान्युगपत्प्रवाहयेत्परेतन पितर इत्यृचा अग्ने तमद्येत्यृचा दक्षिणाग्निं
 प्रति गच्छेत् । यदन्तरिक्षमित्यृचा गार्हपत्यं प्रति गच्छेत् । औपासने

स्वग्नौ तमद्येति भत्वा यदन्तरिक्षमिति जपेत् । तत्र गार्हपत्यपदस्य लोपः । पाणिहोमेऽग्नौ तमद्येत्यादिकं नास्त्येव । ततः पिण्डेभ्योऽक्षतगन्धपुष्पधूपदीपवस्त्रताम्बूलानि दत्त्वा वीरं मे दत्त पितर इति मध्यमं पिण्डमादायाऽऽधत्त पितर इति पत्नीं प्राशयेत्पुत्रायुरारोग्यैश्वर्यार्थम् ।

पिण्डांस्तु गोऽजविप्रेभ्यो दद्यादग्नौ जलेऽपि वा ।

अर्घ्यनिनयनादन्यत्र पितृशब्दस्योहो न कार्यः । एवं वा स्वशाखोक्तविधिना वा पिण्डान्निधायाऽऽचम्याऽऽचमनं दद्यात् । ततो विप्रहस्तेऽपो दत्त्वा यवांस्तिलांश्च क्रमात्क्षिप्त्वा तान्निरस्य पुनः साक्षतपुष्पं क्षिप्त्वा गोत्रनाम्नाऽभिवाद्य गोत्रं वर्धतामिति याचयित्वा स्वस्ति वर्धतां गोत्रमिति प्रयुक्ते प्रक्षिताशिषो गृहीत्वा पात्राणि चालयित्वाऽऽचमेत् । अनुपनीतः स्त्री[वा]न चालयेत् । ततो विश्वेभ्यो देवेभ्यः पितृभ्यश्च स्वस्तीति ब्रूतेत्युक्त्वा तैरौ स्वस्तीत्युक्ते विश्वेषां देवानां पितॄणां चाक्षय्यमस्त्वित्युक्त्वाऽऽस्त्वक्षय्यमित्युक्ते भूहिरण्यरजतादिशक्त्या दक्षिणां दद्यात् । ततो दक्षिणाः पान्तु बहुदेयं चास्तु न इत्युक्ते तथैव प्रत्यूचुः । स्वधां वाचयिष्ये वाच्यतामित्यनुज्ञातः पितृभ्यः स्वधोच्यतामित्युक्त्वाऽस्तु स्वधेति प्रत्यूक्ते भूमौ जलं सिञ्चेत् । स्वधा संपद्यतामित्युक्ते संपद्यतां स्वधेति प्रत्यूचुः । विश्वे देवाः प्रीयन्तामित्युक्ते प्रीयन्तां विश्वे देवा इति प्रत्यूचुः । पितरः प्रीयन्तामित्युक्ते प्रीयन्तां पितर इति प्रत्यूचुः । ततो न्युब्जपात्रमुत्तानं कृत्वा पवित्राणि विन्यस्य विप्रहस्तेऽक्षतपुष्पाणि च क्षिप्त्वा वाजेवाजेवत इत्युक्त्वोत्तिष्ठत पितर इति दर्भेण विप्रान्पितृपूर्वांन्विसर्जयेत् । ततः पादप्रक्षालनप्रदेश आमावाजस्येति प्रदक्षिणीकृत्य दक्षिणामुखो दातारो नोऽभिवर्धन्तामन्नं च नो बहु भवेदिति वरेषु याचितेषु तैश्चैताभ्यां श्लोकाभ्यां युष्मदाख्यातशब्देन वा तथैवास्त्विति वा प्रयुक्त आशिषो गृहीत्वा प्रणिपत्याद्य मे सफलं जन्मेति प्रसाद्य सर्वं संपूर्णमस्त्विति वाचयित्वा क्षम्यतामित्युक्त्वा निवेशनान्तमनुब्रज्याऽऽस्यतामित्युक्ते प्रदक्षिणीकृत्याऽऽगत्य पाकान्तरेण वा श्राद्धशेषेण वा वैश्वदेवादिकं कृत्वेष्टैः सह श्राद्धशेषपूर्वं भुञ्जीत । निमन्त्रणादि च तद्रात्रौ च बह्वचारी स्याद्धोक्ता तु पुनर्भाजनाध्वगमनाध्यापनाध्ययनमैथुनदानप्रतिग्रहहोमादीन्वर्जयेदिति पार्व-

णश्राद्धं सर्वसंग्रहकारकमताल्लिखितम् । अनुपनीतस्त्रीशूद्राः श्राद्धसु-
त्विजा कारयेयुः स्वयं वाऽमन्त्रकं नाममोत्राभ्यां कुर्युः । देवेभ्यो नमः
पितृभ्यः स्वधा नम इति मन्त्राभ्यां वा ।

पितरो यत्र पूज्यन्ते तत्र मातामहा अपि ।

*अविशेषेण कर्तव्यं विशेषान्नरकं व्रजेत् ॥

एवं काम्यश्राद्धम् । तत्र धूरिलोचनौ विश्वे देवाः । अग्नौ पाणौ
वा होमः । नैमित्तिकं श्राद्धं तद्वत् । तत्र कामकालौ विश्वे देवाः ।
इष्टिश्राद्धं रुचिश्राद्धं तद्वत् । तत्र क्रतुदक्षौ विश्वे देवाः ।

अथ वृद्धिश्राद्धम्—

तत्र सत्यवसू विश्वे देवाः । वैश्वदेवार्थं मात्राद्यर्थं पित्राद्यर्थं सपत्नी-
कमातामहाद्यर्थं च द्वौ द्वौ विप्रौ युग्मा वा शक्तितो योज्याः । अमूला
दर्माः । यज्ञोपवीती प्राङ्मुख उदङ्मुखेभ्यो दद्यात् । प्राङ्मुखेभ्यो
बोदङ्मुखः । सर्वथा दक्षिणामुखो न दद्यात् । तिलार्थं यवाः । नान्दी-
देवानां नान्दीश्राद्धे क्षणः क्रियताम् । ॐ तथा प्राप्तानां भवन्तौ प्राप्तवा-
चेत्यादि । क्षणे पित्र्येऽपि द्विकुशकूचं पवित्रकम् । पित्र्ये नान्दीमुख-
पूर्वकं युग्मत्वम् । यवोऽसि सोमदेवत्य इति यवावापः स्वर्धास्थाने
पुष्ट्या । स्वधानमःस्थाने स्वाहानमःशब्दः । स्वाहाऽर्घ्य इत्यर्घ्यनिवे-
दनम् । नान्दीमुखाः पितरः प्रीयन्तामिति द्विर्द्विर्गन्धादि देयम् । प्रक्ष-
क्षिणमुषचारा उदगपवर्गम् । अग्नौ पाणौ वा होमः । अग्नये कव्य-
चाहनाय स्वाहा । सोमाय पितृमते स्वाहेति व्युत्क्रमेण होमः । होमव-
न्मेक्षणप्रक्षेपः । रक्षोघ्नैन्द्रशान्तिमन्त्राञ्छ्रावयेत् । मधुवातेत्यृचः स्थान
उपास्मै गायता नर इति पञ्चर्चः श्रावयेदन्यमधुमन्त्रान्वा । अक्षन्नमी-
मदन्तेत्यन्ते श्रावयेत् । आचान्तेषु भुक्त्याश्रयान्गोमयेनोपलिप्य प्राग-
श्रान्दर्मानास्तीर्ष दैवं पृषदाज्यदधिबदरिमिश्रभुक्तशेषेणैकैकस्य द्वौ द्वौ
पिण्डौ दद्यात् । आज्ये दधिप्रक्षेपो दैवं पृषदाज्यम् । शेषं पार्वणवत् ।
अत्र पिण्डमात्रस्य लोपो वा पिण्डादिकस्य लोपो वा ।

अथैकोद्दिष्टं मिताक्षरायाम्—प्रतिसंवत्सरं सूताहन्येकोद्दिष्टमुपदिष्टं योगे-
श्वरेण । तथा च स्मृत्यन्तरे—

* इदमर्थं घ. पुस्तके वर्तते ।

वर्षे वर्षे तु कर्तव्या मातापित्रोस्तु सत्क्रिया ।
अदैवं भोजयेच्छ्राद्धं पिण्डमेकं तु निर्वपेत् ॥

तत्र सर्वश्राद्धानि त्रिविधानि—नवश्राद्धानि नवमिश्राणि पुराणा-
नीति । तत्र मृताहाद्येकादशाहान्तं विहितानि नवश्राद्धानि । एकाद-
शाहादिन्धूनाब्दान्तं विहितानि नवमिश्राणि । ततः परं पुराणानी-
त्युक्तम् । तत्र सर्वैकोद्दिष्टेषु दैवं नास्ति । एकं उद्देश्यो ब्राह्मणश्चैकः ।
अयुग्मा वा ब्राह्मणाः । एकं पात्रं पवित्रं च । भुक्तशेषेणैकः पिण्डो
देयः । पुराणैकोद्दिष्टे पार्वणैकदेशवत्सर्वं देवहीनं समन्त्रकमेव । पाणौ
मन्त्राभ्यां होमः । नवमिश्रेषु दिवा निमन्त्रणम् । निमन्त्रणादि न
स्वाध्यायः । पितृशब्दस्वधानमःशब्दवतां मन्त्राणां लोपः । तिला-
वापादि सर्वं तूष्णीं कार्यम् । तूष्णीमर्थं निवेद्यानावाह्य मन्त्रान्ते
नाम्ना प्रेतोद्देशेनार्घ्यं दत्त्वा गन्धादि देयम् । पाणौ प्रेताय स्वाहेत्येका-
हुतिः । नवश्राद्धेषु धूपं दीपं स्वधाशब्दं पितृशब्दं पिण्डेऽनुशब्दं जपम-
मिश्रवणं च वर्जयेत् । अक्षय्यस्थान उपतिष्ठतामिति वदेत् । प्रतिवचने
तद्वत् । अभिरम्यतामिति विसर्जयेत् । अभिरताः स्म इति प्रत्युक्तिः ।
नवमिश्रे च सर्वं समन्त्रकमित्येके । नवश्राद्धे सर्वममन्त्रकमेव कार्यम् ।
नामप्रेतशब्दं च न लोपयेत् । सद्य एव निमन्त्रणम् । धूपं दीपं श्राद्धशेष-
भोजनं च वर्जयेत् । नवश्राद्धं कृत्वा स्नायात् । अन्यत्सर्वं पार्वणवत् ।
नवश्राद्धान्येकादशेऽह्नि वा कार्याणि । तत्रोऽऽद्यं महैकोद्दिष्टम् । तत्र
बहुदक्षिणा प्रेतवस्त्राभरणयानशय्यासनभोजनपादुकोपानच्छत्रादिकं
देयम् । रुद्रगणे प्रेतोद्दिष्टपक्षे नवश्राद्धवत् । रुद्रादेशपक्षे तु यज्ञोपवीती
विप्रान्समभ्यर्च्य भोजयेत् । रुद्ररूपप्रेतोद्देशवच्छ्राद्धं सोदकुम्भं सतिलं
सर्वत्र दक्षिणा देया प्रेतश्राद्धे विशेषेण ।

अथ सपिण्डीकरणम्—तत्र मण्डलत्रयम् । दैवे द्वौ विप्रौ प्रेतस्थाने त्वेकः,
तत्पित्रादिषु त्रयः । अशक्तौ दैवे प्रेते पित्र्ये चैकैको विप्रः । कामकालौ
विश्वे देवाः । देवार्चनं पूर्ववदेव । प्रेतार्थमेकपात्रं तत्पित्राद्यर्थं त्रीणि । प्रेते
नवमिश्रेकोद्दिष्टवत्पित्र्ये पार्वणवत्पात्रं पूरयित्वा गन्धादि क्षिपेत् ।
पात्राणि तत्रैव निवेद्य प्रेतपात्रं पितृपात्रेषु संयोजयिष्य इति पृष्ठा

१ ख. ग. 'णादीनि । २ क. 'त्र प्रस्तुतम्' । घ. 'त्र प्रथमाहा' । ३ क. 'कमुद्दिश्य प्रा' ।
४ क. घ. 'सर्वममन्त्र' । ५ क. 'त्राद्यमेकोद्दिष्टम्' । ६ घ. 'त' । सूत्रोद्देशः ।

संयोजयेत्यनुज्ञातः प्रेतपात्रकुशान्पितृपात्रेषु क्षिप्त्वा प्रेतपात्रे किञ्चिदेव जलं सकुशमवशेष्य ये समानाः समनस इति द्वाभ्यां मन्त्राभ्यां पितृपात्रेषु सिञ्चेत् । प्रेतपात्रावशेषेण प्रेतार्घ्यम् । पित्र्ये तत्पात्रादर्थं दत्त्वाऽऽच्छादनान्तं कृत्वा पृथक्पृथगन्नं मूर्धन्यप्रेताय पाणावेकाहुतिं जुहुयान्न वा । पित्रर्थमग्नौ पाणौ वा मन्त्राभ्यां होमः । हुतशेषं पितृपात्रेषु दद्यात् । तदन्नं भोजनात्प्राङ्नाश्रीयत् । भोजनार्थान्नेन सहाश्रीयत्प्रेतोद्देशेनैकं पिण्डं दत्त्वा पित्र्ये त्रीन्पिण्डान्दत्त्वा प्रेतपिण्डं पितृपिण्डेषु संयोजयिष्यामीति पृष्ट्वा संयोजयेत्यनुज्ञातः प्रेतपिण्डं त्रेधा विभज्य पूर्वमन्त्राभ्यां पित्रादिपिण्डेषु निदध्यात् । अनुमन्त्रणादि सर्वं पार्वणवत् । सर्वं तत्रैव समापयेत् । श्राद्धभोजने मिथः स्पृष्टौ—

तदन्नमत्यजन्भुक्त्वा गायत्र्यष्टशतं जपेत् ।

उच्छिष्टेन सिक्ते तत्प्रक्षाल्य भुक्त्वा स्नात्वा द्विशतं जपेत् । उच्छिष्टभोजने द्विसहस्रं जपेत् । मातृणां चैवम् ।

तत्र विशेषः—

अपुत्रायां मृतायां भर्ता स्वमात्रादिभिः सापिण्ड्यं कुर्यात् । मातृपिण्डदानादिकमासुरादिविवाहोत्पन्नपुत्रिकापुत्रश्चेत्तत्पितृगोत्रेणैव कुर्यात् । ब्राह्मादिविवाहोत्पन्नः पितृगोत्रेण मातृगोत्रेण वा कुर्यात् । अन्वारोहणं त्वेकचित्यारोहणं एकदिनमरणे स्त्रियाः पृथक्सपिण्डीकरणं न कार्यम् । भर्तुः कृते स्त्रियाश्च कृतं भवति । दिनान्तरमरणे तु पुत्रः स्वपितृपितामहप्रपितामहपिण्डमध्ये कुशानन्तर्धाय पित्रैकेन मातुः सापिण्ड्यं कुर्यात् । सर्वत्र भर्ता पत्न्याः सापिण्ड्यमेकेनैव । श्वशुरेण निषिद्धम् । केचिन्निभिरेव सह सापिण्ड्यमाहुः । आसुरादिविवाहोत्पन्नः पुत्रिकापुत्रश्च मातामहादिभिरेव । तथा सति मातामहश्राद्धं नित्यमेव मृताहादौ । ब्राह्मादिविवाहोत्पन्नः पित्रैकेन । पितरि स्थिते पितामहादिभिर्मातामहादिभिर्वा सापिण्ड्यं कुर्यात् । ब्राह्मणादिहतानां प्रायश्चित्ताकरणे ब्रह्मचारिणामनपत्यानां च सपिण्डीकरणं नास्ति तेषां सदैकोद्दिष्टमेव । व्युत्क्रममृतानां व्यवहितैः सापिण्ड्यं कार्यं न वा । केचित्सर्वेषां सपिण्डीकरणमाहुः । संवत्सरादर्वाक्सपिण्डीकरणे

सति प्रतिदिनं प्रतिमासं वा सोदकुम्भश्राद्धं मृताहश्राद्धवत्कृत्वा सपिण्डीकरणमारभ्य वैकादशाहादिषु तान्येव षोडश श्राद्धानि मृताहश्राद्धवत्कृत्वा वा संवत्सरविमोकार्थं पार्वणश्राद्धं भूरिब्राह्मणमोजनं च कुर्यात् । मृताहश्राद्धं प्रत्यब्दमेकोद्दिष्टं पार्वणं वा यथास्वाचारं पुत्रैः कार्यम् । मरणक्षणे यन्मासे यत्पक्षे या तिथिस्तद्दिनं तस्य मृताहः । यतीनां सदा स्त्रीभिः पार्वणमेव कार्यम् । दर्शे मृतस्य प्रेतपक्षे मृतस्य च प्रत्यब्दं पार्वणमेव । यतीनां त्रिदण्डिनां प्रेतत्वं नास्त्येव । एकादशेऽह्नि पार्वणमेव कार्यम् । दण्डग्रहणात्पूर्वं मरणे स्वशाखोक्तविधिना दग्ध्वोदकपिण्डप्रेतश्राद्धसापिण्ड्यादीनि कार्याण्येव । शूद्राणां तु प्रेतश्राद्धं सर्वममन्त्रकं द्वादशेऽह्नि कार्यम् । मासे गते वा कार्यम् । अनाहिताग्नेर्मरणदाहादि प्रेतकार्यं मृताहश्राद्धं चाऽऽहिताग्नेः प्रेतकार्यं मृताहश्राद्धं च दहनादेः कार्यं त्रिपक्षान्तम् । तस्मादूर्ध्वं मृताह एव । सर्वेषां मृताह एव श्राद्धं कार्यम् । अष्टकासु गयायां च पृथङ्मातृणां पितृणां च सोदकानां च सपत्नीकमेव । तत्र दैवतन्त्रमेव पितृपूर्वत्वम् । अनेकमातरोऽप्येकत्र योज्या अन्यत्पूर्ववत् । वृद्धौ च न सपत्नीकं स्त्रीपूर्वत्वं दैवतन्त्रत्वं चोक्तमेव । मृताहश्राद्धं पितृमृताहे पितृणामेव कार्यं न च सपत्नीकम् । मातृमृताहे मातृणामेव कार्यं पितृणां तत्र श्राद्धे प्राप्तिरेव नास्ति । (* वृद्धौ मातृमुख्यं मातृणां सदैवमन्वष्टकायां मातृमध्यं सदैवं गयादिषु मात्रन्तं सदैवम् ।) मातापित्रोर्मृताहैक्ये पितृमातृश्राद्धं पृथगेव न सपत्नीकम् । तत्र पूर्वं पितुः श्राद्धं समाप्य ततो मातुः श्राद्धं कुर्यात् । पित्रोर्मृताहैक्ये सह दहने च मातृश्राद्धं पृथगेव । तत्र तु पितुः श्राद्धं मातुः श्राद्धं चैककालमेकपाकेन क्रमेण समापयेत् । मृताहैक्य एकचित्यारोहणे सति मातृश्राद्धं पृथगेव । तत्र दैवं तन्त्रमेव । ततः पितरस्ततो मातरः । अनेकमातरः पृथगेव क्रमेण । कालपाकबर्हिःप्रयोगैक्यम् । भिन्नचित्यारोहणे सर्वं पृथगेव । मृताहश्राद्धस्यैकोद्दिष्टत्वेऽप्येष क्रमः । अष्टकागयावृद्धिमृताहादन्यत्र सपत्नीकमेव । मातामहानामेतेष्वपि सपत्नीकमेव मृताहवर्जम् । तत्र पृथगेव सर्वेषाम् । पितृव्यरिक्थिभ्रातृमातुलगुर्वाचार्याणां च तद्वत् । अपरपक्षे महालये सर्वेषां पितृणां श्राद्धं कार्यम् । तत्र मातृश्राद्धं पृथ-

* धनुश्चिह्नान्तर्गतपाठो ग. पुस्तके वर्तते ।

१ ख. ग. घ. °तृणां च पृथक्श्राद्धं न सपत्नीकं मातामहाना सपत्नीकमेव सो° । २ ख. च्छ. स । ३ क. °वमक° ।

कप्रशस्तम् । मातामहानां सपत्नीकमेव । गुर्वाचार्यपितृव्यमातुलश्वशुरोपा-
ध्यायभ्रातृसखिप्रियपोषकद्रव्यदपुत्रशिष्यर्त्विगादीनां तत्स्त्रीणां च श्राद्धं
कार्यम् । अपुत्राणां विशेषेण कार्यम् । तत्रैकः पाकः । वैश्वदेवं तन्त्रं
पिण्डबर्हिश्चैकम् । पक्षश्राद्धे च तथैव । तत्पक्षत्रयोदश्यामेकवर्गस्य श्राद्धं
न कार्यं पिण्डदानं च निषिद्धं मघायोगे विशेषतः । पुत्रकामस्य च
पिण्डबर्हिः कुशाः काशा दूर्वाः प्रशस्ताः । व्रीहियवमोधूमोशीरेक्षुकन्दु-
रुमुञ्जबल्वजाश्च भवन्ति । एकादश्यां त्रयोदश्यां मघायां कृत्तिकासु
पिण्डदाने दूर्वा निषिद्धा । तत्पक्षचतुर्दश्यां शस्त्रहतस्यैव श्राद्धम् ।
तच्चैकोद्विष्टमेव । त्रयाणामपि शस्त्रहतत्वे पार्वणमेव । सर्वेषां पापमृतानां
चैवम् । तन्त्रं दैवं पार्वणमेव । नित्यश्राद्धमदैवं षट्पुरुषं च भवति ।
तत्राश्वदेशकालनियमाः कर्तृभोक्तृनियमाश्च न सन्ति । विप्रानुपवेश्याऽऽ-
सनं दत्त्वाऽर्घ्यहोमपिण्डवर्जं संकल्पसिद्धयन्तं कृत्वाऽन्नं त्यक्त्वा भुक्तौ
प्रसादयेत् । विवाहमौञ्जीबन्धोर्ध्वं वर्षं वर्षार्धं क्रमात्सपिण्डीकरणवर्जं
श्राद्धेषु सपिण्डाः पिण्डान्न दद्याः । शेषं सर्वं कुर्युः । पृथक्सपिण्डानपि
न दद्याः ।

महालये गयाश्राद्धे मातापित्रोः क्षयेऽहनि ।

यस्य कस्यापि प्रेतस्य सपिण्डीकरणे सति ॥

कृतोद्वाहोऽपि कुर्वीत पिण्डनिर्वपणं सदा ।

पितृयज्ञे च यज्ञे च गयायां दद्यादेव ते ॥

सपिण्डीकरणवर्जं सर्वश्राद्धेषु विस्तृतपार्वणविधिनाऽसंभवे संक-
ल्पविधिर्नैव कार्यम् । संकल्पविधानं नामाऽऽवाहनार्घ्यहोमपिण्डवर्जं पार्व-
णोक्तं यथासंभवं भवति । अन्नाभावे द्विजामावे प्रवासे पुत्रजन्मनि
पत्न्यभावेऽग्न्यभावे पाककर्त्रभावे सति पत्न्यां रजस्वलायामापदि तीर्थे
ग्रहणसंनिधौ मोजननिषेधकाले मृताहे चान्यश्राद्धे च संग्रहे रात्रिसं-
क्रान्तौ चावीरा स्त्री शूद्रश्च सर्वदाऽऽमश्राद्धं कुर्यात् । तत्राऽऽच्छादनान्तं
कृत्वाऽऽमं चतुर्गुणं समं वा सोपस्करं त्यक्त्वा दक्षिणां दत्त्वा समापयेत् ।
आमेन होमपिण्डौ न वा । स्वस्तिवाचनं न वाऽस्ति । अन्नाभावादि-
निमित्तेषु हेमश्राद्धं वा कार्यम् । विशेषतः पुत्रजन्मापत्नीकप्रवासानशि-
तीर्थापत्संग्रहेषु हेमश्राद्ध आवाहनार्घ्यगृहपाकहोमपिण्डान्कुर्युर्न वा ।

आच्छादनान्ते हिरण्यमष्टगुणं चतुर्गुणं द्विगुणं समं वा सदक्षिणं त्यक्त्वा पूर्ववत्समापयेत् । अन्नाभावाद्यनेकनिमित्तेषु सत्सु संकल्पितं श्राद्धं कार्यम् । तत्र द्रव्ये विप्रे वाऽसंनिहिते वाऽऽमहेमभूवस्त्रधनधान्यादिवस्तु यथाशक्त्या पित्रुद्देशेन संकल्पं त्यजेत् । मासिकानि मृताहःसु संभवेऽन्नेनैव कार्याणि सपिण्डीकरणं तु सर्वथाऽन्नेनैव कार्यम् ।

अथ श्राद्धकालविधिः—

तत्र तावद्यस्मिन्दिने यद्विहितं कर्म तदघटिकासु तत्कर्मणः प्रारम्भं समाप्तिं च कुर्यात् । मृताहश्राद्धस्य विशेषेण । असंभवे प्रारम्भं समाप्तिं वा कुर्यात् । अह्नि पञ्चदशधा विभक्तेऽष्टमो मुहूर्तः कुतुपः । कुतुपादिपञ्चसु मुहूर्तेषु श्राद्धं कार्यं न सायाह्ने न रात्रौ न प्रातः । अह्नः पञ्चधा विभागान्निमुहूर्तकाः प्रातः पूर्वाह्णो मध्याह्णोऽपराह्णः सायाह्ण इति । प्रातःकाले वृद्धिनिमित्तकं श्राद्धं प्रशस्तम् । पूर्वाह्ण आमश्राद्धं हेमश्राद्धं च । मध्याह्न एकोद्दिष्टम् । अपराह्णे पार्वणम् । पिण्डपितृयज्ञदिने सायाह्नेऽपि पार्वणमनुज्ञायते । एवं पूर्वदिनेषु ।

अथ खण्डतिथिषूच्यते—अमावास्या द्वष्टचन्द्रा सिनीवाली । नष्टचन्द्रा कुहूंसंज्ञा । अमावास्या भूतविन्द्रा न चेदपराह्णव्यापिनी ग्राह्या । भूतविन्द्रा चेत्तां त्यक्त्वाऽपरेद्युरपराह्णव्यापिनी तिथिर्ग्राह्या । मध्याह्नात्परस्तादमावास्याप्रतीतौ भूतविन्द्रा भवति । अत्यन्ततिथिक्षयविषयेऽपरेद्युरपराह्णेऽमावास्याया अभावे भूतविन्द्रा सिनीवाली सायाह्णव्यापिनी ग्राह्या । ततोऽर्वाचीनक्षये भूतविन्द्रा सिनीवात्यपराह्णव्यापिनी सर्वैर्ग्राह्या । यद्वा साग्निकैः सिनीवाली निरग्निकैः स्त्रीशूद्रैश्च कुहूः । अत्यन्ततिथिवृद्धौ भूतविन्द्रां सिनीवालीं त्यक्त्वाऽपराह्णव्यापिनी कुहूर्ग्राह्या । ततोऽर्वाचीनवृद्धौ भूतविन्द्रां सिनीवालीं त्यक्त्वा मध्याह्णव्यापिनी कुहूर्ग्राह्या । द्वयोरपि मध्याह्णव्यापित्वे तिथिसाम्य इच्छयाऽन्यतरा तिथिर्ग्राह्या । यद्वा साग्निकैः सिनीवाली निरग्निकैः स्त्रीशूद्रैश्च कुहूः । यद्वा सर्वैः कुहूर्ग्राह्या । दर्शपूर्णमासयोः श्राद्धतिथिषु वृद्धिह्रासस्वीकारो नान्यत्र । मृताहे चापराह्णव्यापिन्येव तिथिर्ग्राह्या । अपराह्णः पितॄणां स्वयंभुवा दत्तः । नास्तमयः ।

१ ख. ग. °ते संनिहिते वा° । २ क. °अथा । ३ ख. ग. °पूर्णादि° । ४ ख. ग. °धिकृत्य° ।

५ ख. °ह्या अमध्य° । ६ ख. ग. °विन्द्रां सिनीवालीं त्यक्त्वा पराह्णव्यापिनी कुहूर्मा° । ७ क. °मयत्रि° ।

त्रिमुहूर्तमात्रव्यापिन्येव तिथिर्विद्वाँ परैव ग्राह्या तिथिसाम्ये तु पूर्वा
परा वा तिथिक्षये त्वस्तमयत्रिमुहूर्तव्यापिन्येव ग्राह्या । परदिने श्राद्ध-
करणासंभवे सूतकादिविघ्नसंभवे पूर्वैवास्तमयमात्रव्यापिनी ग्राह्या ।
केचित्सर्वथा पूर्वविद्धा ग्राह्येत्याहुः । तत्तु बहुस्मृतिन्यायविदो नेच्छन्ति ।
पूर्वदिने श्राद्धकरणासंभवे सूतकादिविघ्नसंभवे च परैवोदयव्यापिनी
प्रयोगपर्याप्तकाला तिथिर्ग्राह्या । तत्रापि मृताहश्राद्धस्य द्रव्यासं-
भवे चान्येन विघ्नेन वाऽनुपपत्तावुपपत्त्यनन्तरं कार्यम् । सूतकादि-
विघ्ने च तच्छुद्ध्यनन्तरं कार्यम् । यद्वा कृष्णैकादश्याममावास्यायां वा
कार्यम् । यद्वाऽनन्तरमासे तद्दिने वा कार्यम् । एकोद्दिष्टे संप्राप्ते विघ्ने
सत्यनन्तरमासे तद्दिने वा कार्यम् । यथाकालं षोडश श्राद्धानि कार्याणि
अनुपपत्तिनिमित्ते विघ्ने सत्युपपत्त्यनन्तरं कार्याणि । विघ्नेनान्तरितं
मासिकश्राद्धमुत्तरमासि तद्दिने कार्यम् । प्रोषितमरणे मृताहाज्ञाने मृत-
मासपरिज्ञाने तन्मासदर्शो ग्राह्यः । मृतमासाज्ञाने मृताहपरिज्ञाने सति
मार्गशीर्षमासे भाद्रपदमासे माघे वा तद्दिनं ग्राह्यम् । मरणदिनमासौ
न विज्ञातौ चेत्प्रस्थानदिनमासौ ग्राह्यौ । प्रस्थानदिनमासौ न विज्ञातौ
चेन्मरणदिनमासवार्ताश्रवणदिनमासौ पूर्ववद्ग्राह्यौ । मरणवार्ताश्रवण-
दिनमासौ न विज्ञातौ चेत्पुनर्दहनमासौ पूर्ववद्ग्राह्यौ । यद्वा सर्वत्रापि
कृष्णपक्षमरणे दर्शो ग्राह्यः । शुक्लपक्षमरणे पूर्णमासः । सर्वात्मना
मृताहाज्ञाने माघमासस्य दर्शो ग्राह्यः । अप्रोषितस्यापि सर्वात्मना
मरणदिनमासाज्ञान एवमेव कार्यम् । युगादिमन्वादिप्रभृतिविशेषवि-
हितश्राद्धेषु शुक्लपक्ष उदयव्यापिनी तिथिर्ग्राह्या । कृष्णपक्षेऽस्तमयव्या-
पिनी । शुक्लपक्षस्य पूर्वाह्णे करणं प्रशस्तं कृष्णपक्षस्यापराह्णे नक्षत्रवि-
हितश्राद्धेष्वपिशुक्लपक्ष उदयव्यापि नक्षत्रदिनं ग्राह्यं कृष्णपक्षेऽस्त-
मयव्यापि नक्षत्रदिनं ग्राह्यम् ।

अथ संक्रान्तिषूच्यते—(*संक्रान्तिषु सर्वत्रोभयतोऽष्टाष्टघटिकासु दृष्टमह-
ष्टफलमुच्यते ।) तत्र कर्कटसंक्रमो दक्षिणायनम् । दक्षिणायने पूर्वं त्रिंश-
दघटिकाः स्नानदानश्राद्धादिषु पुण्याः । तथा विष्णुपदेषु च पूर्वं षोडश

* धनुश्चिह्नान्तर्गतपाठः ख. ग. पुस्तकयोर्नास्ति ।

१ क. द्वौ तिथिवृ । २ कं. ह्या अप° । ३ क. १२ ग्राह्यम् । ४ घ. यतः षोडशघटिकाः
पुण्याः । अधा° ।

घटिकाः पुण्याः । वृषवृश्चिककुम्भसिंहसंक्रमा विष्णुपदाः । तुलामेषयो-
र्विषुवम् । तत्र पूर्वं दश घटिकाः पश्चाच्चतुर्घटिकाः पुण्याः । षडशीतिः
मुखेषु पश्चात्षोडश घटिकाः पुण्याः । मिथुनकन्याधनुर्मीनसंक्रमाः
षडशीतिमुखाः । मकरसंक्रम उत्तरायणम् । उत्तरायणे पश्चाच्चत्वारिं-
शद्घटिकाः पुण्याः । (*पूर्वं चत्वारिंशद्घटिकाः पुण्याः) प्राहुः ।
अर्धरात्रादर्वाक्संक्रमणेषु सत्सु पूर्वदिनं पुण्यम् । तत्र भोगः कार्यः ।
अर्धरात्रसंक्रमणेषु सत्सु दिनद्वयं महापुण्यम् । तत्र भोगः कार्यः । यद्वा
ग्रहणसंक्रान्तिविवाहोत्क्रान्तिवृद्धिषु रात्रावपि स्नानदानादिकं कार्यम् ।
व्यतीपातादियोगः कुतुपादियोगी ग्राह्यो विष्ट्यादिकरणं च तथैव ।
इति स्मृत्यर्थसारं श्राद्धकालनिर्णयः ।

अथ पर्वनिर्णय उच्यते—संपूर्णे पर्वण्यन्वाधानम् । प्रतिपदि यागः ।
खण्डपर्वणि विशेष उच्यते । पूर्णमासी न्यूनचन्द्राऽनुमतिः पूर्णचन्द्रा-
राकेति द्विधा । अमावास्या च दृष्टचन्द्रा सिनीवाली नष्टचन्द्रा कुहू-
रिति द्विधा ।

+राकानुमत्याविति पूर्णमास्यौ रात्रिद्युदृष्टेन्दुवशाद्भवेताम् ।

कुहूः सिनीवाल्यापि नष्टदृष्टचन्द्रे स्मृते चासितपञ्चदश्यौ ॥

प्रधानकर्मतिथेरुत्तरतिथौ वृद्धिह्वासयोरुर्ध्वं पूर्वतिथौ प्राक्षिप्य कालो
विज्ञेयः । सूर्यस्याऽऽवर्तनात्पूर्वमावर्तने च प्रतिपत्संधौ सति तस्मिन्नहनि
यागः । आवर्तनादूर्ध्वं संधौ परेऽहनि यागः । पर्वणोऽन्त्यश्चतुर्थांशः
प्रतिपद्याद्यास्त्रयोऽंशा यागकालः । प्रातःकालयोग्यपराह्णे संधौ सति
परेऽहनि प्रतिपच्चतुर्थांशो यागकालो न पूर्वाह्णे संधौ । अत्राहो द्विधा
विभागः पूर्वोक्तपर्वद्वये समानः । पौर्णमास्यां विशेषो वक्ष्यते । आव-
र्तनात्पूर्वं पर्वसंधौ सद्यस्कालो न वा । आवर्तनात्पूर्वं संगवादूर्ध्वं पर्व-
संधौ तु सद्यस्काल एव । सर्वा पौर्णमासी यजनीयदिनं पर्वणि वा
सद्यस्कालं केचिदाहुः । प्रकृतौ सद्यस्कालत्वं कदाचिदपि नास्ति ।
विकृतावेव तदिति केचित् । किंच पौर्णमास्यामयं विशेषः । अहःस्व-
त्यन्तदीर्घेषु तिथिह्वासे सत्युदयसमीपे चतुर्थांशाभावेऽपि पूर्वाह्णे, पर्व-
संधिश्च संभवति । तत्रैव पूर्वाह्नसंधिदिने बाधेनान्यत्र परेऽहनि यागः ।

* धनुश्चिन्तर्गतपाठो घ. पुस्तके नास्ति । + धनुश्चिह्नान्तर्गतमिदं पद्यं ख. ग. पुस्तकयो-
रधिकम् ।

१ क. घ. 'षत्संक्रमौ । २ ख. ग. घ. 'च दशघ' । ३ ख. ग. घ. 'ने यागबाधो ना' ।

अमावास्यायां त्वपराह्लादिपर्वसंधौ सति परेऽहनि दृष्टे चन्द्रेऽपि यागः कार्यः । पूर्वाह्णे संधौ सति प्रत्यक्चन्द्रदर्शनाहे यागे भूर्भुवः स्वः स्वाहेत्याहुतिं हुत्वा विप्राय दण्डदानं प्रायश्चित्तम् । प्राच्यां चन्द्रदृष्टौ तदहर्यागे तैत्तिरीयोक्ताभ्युदितेष्टिः । मनस्वत्याहुतिर्व्याहृत्याहुतिर्वा । प्रतीच्यां चन्द्रदृष्टावन्वाधाने सति परेऽहनीष्टिं समाप्य पथिकृदिष्टिं कुर्यात् । तत्राग्निः पथिकृदष्टाकपालः, इन्द्रो वृत्रहैकादशकपालः । अग्निर्वैश्वानरोऽष्टाकपालः सशरं धनुर्दक्षिणा । एषा वाजसनेयोक्ता प्रकृतिदेवता पुनः कार्या मनस्वत्याहुतिर्वा व्याहृत्याहुतिर्वा । दिनद्वयं प्रातर्यागकाले सत्यपि पूर्वाह्नसंधिदिन एव प्रातर्यागः । सर्वथा संधिरेव यागोत्कर्षापकर्षप्रयोजको न तिथिवृद्धिह्लासौ प्रयोजकौ । सप्तदशी तिथिरन्वाधाने निषिध्यते न यागे । प्रारब्धप्रकृतीष्टेर्विकृतीष्टयः स्युः सद्यस्कालाः । आवर्तनापुरा संधौ प्रकृतिं समाप्य विकृतिः कार्या । ऊर्ध्वसंधौ विकृतिं समाप्य प्रकृतेः प्रारम्भः । आग्रयणं पर्वालाभे शुक्लपक्षे देवनक्षत्रे कार्यम् । कृत्तिकादिविशाखान्ते प्राच्यां चन्द्रादर्शने पिण्डपितृयज्ञकालः ।

इति पर्वनिर्णयः ।

अथैकादशीनिर्णयः—

एकादश्यामुपवासः कार्यः । स च पुत्रवतां गृहिणां शुक्लैकादश्या-
सेव न कृष्णैकादश्याम् । कृष्णैकादश्यामनशनमयाचितं नक्तमेकमर्क्त-
दानं वा शक्त्या कार्यम् । सर्वथा न निर्द्वादशिको भवेत् । उपवासाश-
क्तश्चैवं कुर्यात् । पुत्ररहितानां गृहिणां यतिवनस्थब्रह्मचारिभ्रातृकवि-
धवानामुभयैकादश्योर्नित्यमेव ।

य इच्छेद्विष्णुसायुज्यं श्रियमायुः प्रजां सुखम् ।

एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ॥

इति वैष्णवव्रतत्वेनोपवासवतां कृष्णा न निषिद्धा ।

* उपवासो यदा नित्यः श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत् ।

उपवासं तदा कुर्यादाघ्राय पितृसेवितम् ।

एकादश्यां श्राद्धे कृते श्राद्धशेषमाघ्रायोपवसेत् । आदित्यवारसंक्रा-

* अयं श्लोकः क. पुस्तके वर्तते ।

१ घ. 'हेत्याज्याहु' । २ ख. ग. घ. 'त्याज्याहुतिर्व्याहृत्याज्याहु' । ३ क. घ. 'माध्याह्ना-
त्रिविध्येष्टिः कार्या ।

न्यादिष्वेकादशमुपवासस्य निषेधो नास्ति । महापत्सु महोत्सवेषु च सूतके चाऽऽर्तवे चाशक्तौ च न त्याज्यं द्वादशीव्रतम् । तत्र नित्ये स्नात्वा देवार्चनरहितमुपवासं कुर्यात् । काम्ये तु स्नात्वा पत्नीं पतिं पुत्रं भ्रातरं भगिनीमृत्विजमन्यं वाऽर्चनादिषु कारयेत् । सूतकार्तवान्ते दानं कुर्यात् । मध्ये चेत्यतिः पत्नी वा दानं कुर्यात् । सपत्न्योऽपि परस्परं कुर्युः । अन्यव्रतेषु चैवम् । एकादश्याः पूर्वोत्तरदिनयोरेकभक्तम् । कांस्यं मांसं मसूरं चातिघृतमतितुष्टिं पुनर्भोजनं मैथुनं च पूर्वोऽह्नि वर्जयेत् । अथ समाहित एकादश्यां प्रातः स्नात्वा संकल्पं कुर्यात् ।

एकादश्यां निराहारः स्थित्वाऽह्नि परे ह्यहम् ।

भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत ॥

इति संकल्प्य दिवा स्वापं मैथुनं ताम्बूलादिभक्षणमसकृज्जलपानं सर्व-
भोगानुदक्यासूतिकापतितपाषण्डिहीनजातिसंभाषणं [च] वर्जयेत् ।
पुण्यस्त्रीणां तु—

पुष्पालंकारवस्त्राणि गन्धधूपानुलेपनम् ।

उपवासे न दुष्यन्ति दन्तधावनमञ्जनम् ॥

वाङ्मनियमलोपे वैष्णवमन्त्राञ्जपेद्विष्णुं स्मरेद्वा । मनोवाक्कायनि-
यमलोपे शारीरमन्तः इत्याद्यां जपेत् । विष्णुं शुद्धः संपूज्य पुरतो जागरं
निद्रां वा कुर्यात् । श्वोभूते पुनः संपूज्य—

अज्ञानतिमिरान्धस्य व्रतेनानेन केशव ।

प्रसीद सुमुखो नाथ ज्ञानदृष्टिप्रदो भव ॥

इति नत्वा पारणं कुर्यात् । कांस्यं मांसं मसूरं च क्षौद्रं लोभमसत्यं
तैलं तिलपिष्टं व्यायाममञ्जनं च पुनर्भोजनमध्वगमनमायासं दिवा निद्रां
मैथुनं च वर्जयेत् । [अन्यथा] उपवासफलं शक्तिं च हन्युः । यदैकादशी
शुद्धा संपूर्णा द्वादश्यां नास्ति द्वादशी तु समा न्यूनाऽधिका वा तदैकाद-
श्यामुपवासः । यदा संपूर्णैकादशी द्वादश्यां कियन्मात्राऽस्ति द्वादशी च
त्रयोदश्यामस्ति तदा द्वितीयैव सर्वैरुपोष्या । यदा संपूर्णैकादशी द्वादश्यां
च कियन्मात्राऽस्ति तत्र रात्रिशेषे च त्रयोदशी तदा गृहस्थैः पूर्वोपो-
ष्योत्तरा यतिभिः । (* यदा दशमीविज्जैकादशी द्वादश्यां कियन्मात्रा

* धनुश्चिह्नातर्गतपाठः ख. ग. पुस्तकयोर्नास्ति ।

१ ख. ग. °हापशुम् । २ क. °वादौ कर्त्रलाभे तदन्ते दा° । ३ घ. पण्य° । ४ ख. ग. °दा
दिनक्षयेऽपि पुण्या द्वितीयैवोपोष्या यतिभिर्न गृहस्थैः । य° ।

विद्यते द्वादशी च त्रयोदश्यामस्ति वा न वा तदा सर्वैर्द्वितीयैवोपोष्या ।)
 यदा दशमीविन्द्वैकादशी द्वादश्यां कियन्मात्राऽस्ति तत्र रात्रिशेषे
 त्रयोदशी तदा दिनेक्षयेऽपि पुण्या द्वितीयैवोपोष्या यतिभिर्न गृहस्थैः
 प्रजार्थिभिः । गृहस्थैस्तु पूर्वोपोष्या यदा च दशमीविन्द्वैकादशी द्वादश्यां
 नास्ति द्वादशी च त्रयोदश्यामस्ति तदा द्वादशैवोपोष्या । यदा च
 दशमीविन्द्वैकादशी द्वादशी च समा न्यूना वा तदा यतिव्यतिरिक्तानां
 दशमीविन्द्वैकाश्यामुपवासः । यतीनां तु शुद्धद्वादश्यामुपवासः । यदा
 च दशमीविन्द्वैकादशी रात्रिशेषे च त्रयोदश्यां चास्ति समा न्यूना वा
 तदा सर्वेषां दशमीविन्द्वैकादश्यामुपवासः । इदमेकादशीव्रतं माहेश्वर-
 मपि भवति लिङ्गादिपुराणदृष्ट्या । अष्टमीचतुर्दश्योर्नक्तं च कार्यमेकमक्तं
 वा तत्पुरुषेण संकल्पः पारणं च नाम्ना वा । तथैकादशीव्रतं माहेश्वरव-
 तवत्सौरमपि भवति सौरपुराणाच्च । नित्यत्वं तु सर्वत्र समानमेव
 तत्रायं विशेषः—षष्ठ्यामुपवासश्च कार्य आदित्यवार एकमक्तं च कार्यं
 सावित्रनाम्ना संकल्पः ।

इति स्मृत्यर्थसार एकादशीनिर्णयः ।

अथ तिथ्यन्तरनिर्णयः—

एकादश्यष्टमी षष्ठी पौर्णमासी चतुर्दशी ।

अमावास्या तृतीया च उपवासव्रतादिषु ॥

परविद्धाः पुण्याः शेषाः पूर्वविद्धाः कार्याः । कृष्णपक्षेऽष्टमी चतु-
 र्दशी च पूर्वविद्धा प्रशस्ता तृतीया नवमी चेत्येके । सर्वत्र व्रतदानादीनां
 कृष्णपक्षाच्छुक्लपक्षो विशिष्यते । अपराह्णाच्च पूर्वाह्णो विशिष्यते ।
 तदसंभवं उदयाद्विमुहूर्तं ग्राह्यम् । उपवासे घटिकाऽपि ग्राह्या ।

अविद्धानामलाभे तु पयोदधिघृतानि च ।

सकृदेवाल्पमश्रीयादुपवासस्ततो भवेत् ॥

एकादशी तु पञ्चमुहूर्ताविद्धाऽप्युपोष्या । तदर्धविद्धान्यन्यानि
 दिनानि ।

प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या तिथिर्नक्तव्रते सदा ।

१ क 'नद्वये' । २ ख. ग. 'पोष्योत्तरा यतिभिर्वा नवा सर्वैर्द्वितीयैवोपोष्या । य' । ३ ख.
 ग. 'श्यां च कियन्मात्रा विद्यते द्वा' । ४ ख. ग. 'दश्यां स' । ५ ख. ग. 'च द्वादशी त्र' । ६ क.
 'श्यां नास्ति । ७ ख. 'दयसंभवे उभयं द्विमु' । ग. घ. 'दयद्विमु' । ८ घ. 'टिकैकाऽपि' ।

उपवासस्थानीयं नक्तं तूपवासतिथौ कार्यम् । तिथिनक्षत्रसंयोगविहितव्रते च प्रदोषव्यापिनी तिथिर्ग्राह्या । नक्षत्रविहितव्रतेऽर्धरात्राद्वाङ् नक्षत्रव्यापिनी तिथिर्ग्राह्या । (* नक्षत्रसंयोगेन या तिथिः पुण्या तस्यां विहितव्रते सैव तिथिर्ग्राह्या) श्रवणद्वादशीव्रते तूदयव्यापिनी द्वादशी ग्राह्या । अत्रैकादशी द्वादश्यां रात्रिशेषे त्रयोदशी चेत् ।

द्वादश द्वादशीर्हन्ति त्रयोदश्यां तु पारणम् ।

सर्वत्र तिथिनक्षत्रान्ते पारणं नियमाः पूर्वमेवोक्ताः । संक्रान्त्यां रविवारे च ग्रहणे व्यतीपाते कृष्णैकादश्याम्—

पारणं चोपवासं च न कुर्यात्पुत्रवान्गृही ।

इति संक्रान्त्यादिप्रयुक्तस्यायं निषेधो नान्यप्रयुक्तस्य ।

इति सामान्यतिथिनिर्णयः ।

अयं मलमासे कार्याकार्यनिर्णय उच्यते—सूर्यसंक्रान्तिरहितो मासो मलमासः । तत्र मलमासेऽनन्यगतिकर्माकरणे पातित्यापादकं नित्यं नैमित्तिकं च कर्म कर्तव्यम् । तत्र नित्यस्नानसंध्योपासनाग्निकार्यपञ्चमहायज्ञातिथिपूजाग्निहोत्रोपासनहोमदर्शपूर्णमासपार्वणेष्विपार्वणस्थालीपाकपिण्डपितृयज्ञामावास्यापार्वणश्राद्धमासिकश्राद्धदेवार्चननित्यदानादिकं नित्यं मलमासेऽपि कार्यमनन्यगतिकं नित्यम् । अन्यगतिकं सोमयागपशुबन्धाधानाश्रयणचातुर्मास्यादिकं मलमासे न कार्यम् । महालायाष्टकाकर्मोपाकर्मोत्सर्जनश्रवणाकर्मश्रयुजकर्मप्रत्यवरोहणयज्ञादिकं यत्कर्म कर्तुमासप्रयुक्त्या विहितं तच्च मलमासे न कार्यम् । उत्तरे मासि कार्यमेव । नैमित्तिकं च गर्भनिमित्तं गर्भमासप्रयुक्त्या विहितं पुंसवनानवलोमनसीमन्तजातकर्मादिकं तन्निमित्ताभ्युदयिकदानादिकं चन्द्रसूर्यग्रहे स्नानतर्पणश्राद्धदानादिकं च मघात्रयोदशीश्राद्धं च तीर्थस्नानजलतर्पणश्राद्धपिण्डदानयववीहितिलहोममरणकालशुद्ध्यादिकं दहनोदकपिण्डदानाद्याद्यश्राद्धनवश्राद्धषोडशश्राद्धानि प्रेतत्वविमोक्तार्थान्यन्यान्पि सपिण्डीकरणादीनि नैमित्तिकान्यनन्यगतिकत्वेन मलमासे प्राप्ते कार्याणि । ततः संवत्सरविमोक्षान्तमनुमासिकानि कुर्वन्मलमासे नैव कुर्यात् । (+संवत्सरान्ते सपिण्डीकरणं संवत्सरविमोक्षं च यथाकालं

* धनुश्चिह्नान्तर्गतपाठः कः पुस्तके नास्ति । + धनुश्चिह्नान्तर्गतपाठः कः पुस्तके नास्ति ।

मासिकानि कुर्वन्नपि मलमासे नैव कुर्यात्) उत्तरत्र कुर्यादेव । मल-
मासमृतानामाव्दिकं च श्राद्धं मलमासे कार्यम् । अन्येषामुत्तरमास्येव
कार्यम् । वार्धुषिके मृत्ये मृते चाधिमासं न वर्जयेत् । अत्र वषट्कार-
होमा नित्यनैमित्तिकप्रवृत्तकाम्यार्थाः प्रायश्चित्तेष्टिस्थालीपाकहोमाद्याश्च
मलमासेऽपि कार्याः । नैमित्तिक्यपि जातेष्टिर्मलमासे न कार्या । आधा-
नानन्तरमन्वारम्भणीयेष्टिं चाऽऽद्यस्थालीपाकं च मलमासे न कुर्यात् ।
काम्यं यागहोमादिकं मलमासे न कार्यम् । मलमासात्प्राक्प्रवृत्तं काम्यं
कर्म मलमास आगते कार्यम् । पुराणधान्याभावेन निर्वाहाभावे मल-
मासेऽपि श्यामाकैराग्रयणमातुरः कृत्वा नवं भुक्त्वा यथाकालं ब्रीह्या-
ग्रयणं कुर्यात् । वसन्तात्पर्वणः प्राग्दैवात्सोमयागो न कृतश्चेच्छिष्टं
पर्वेकमेव तच्च मलदूषितं चेत्तत्र नित्योऽपि सोमयागो न कार्यः । तत्र
लोप एव पत्नीरजोदर्शनवत् ।

इति मलमासनिर्णयः ।

अथ मक्ष्यामक्ष्यविधिः—संस्कारदुष्टं क्रियादुष्टं स्वभावदुष्टं च नाद्यात् ।
संस्कारदुष्टं वैश्वदेवादिरहितं क्रियादुष्टमेकपङ्क्तावन्यथात्वं स्वभावदुष्टं
लशुनादिकांलिन्दवोर्वारुककुम्भीतकवृत्तालाबुवन्यकण्टकिकुसुम्भरक्त-
शिगुकोविदारश्लेष्मातकनालिकाक्षुद्रश्वेतकण्टकिवृन्ताकानि दुर्गन्धि-
कन्दमूलफलादि सर्वं यतिव्रतिनोः सर्वथा सर्वदा वर्ज्यम् । शिरःकपाला-
न्त्राणि नखचर्मतिलानि क्रमादष्टम्यादिषु वर्ज्यानि । सगोत्राभर्तुरन्नं
कारुकान्नं वस्त्रेण पाणिनाऽवधूतमवघ्रातमवक्षुतमित्यादि प्रायश्चित्तवि-
धावमक्ष्यं वक्ष्यते ।

इति मक्ष्यामक्ष्यविधिः ।

अथ भोजनविधिः—कृतनित्यविधिः पादौ प्रक्षाल्य बहिर्द्विराचम्य प्राङ्-
मुख उदङ्मुखो वा यज्ञोपवीती सोत्तरवासा विभवे रत्नहिरण्यपाणिर्ग-
न्धाक्षतमाल्यवाञ्छुचिः प्रशस्तश्रीपण्यादिश्लक्ष्णे चतुष्पादपीठे सुखा-
सीनो भूमौ पादौ प्रतिष्ठाप्यान्तर्जानुकरो वाग्यतस्तच्चित्तश्चतुरस्रे गोम-
यमण्डले सपर्यान्ते विप्रौ दीपसंनिधौ भुञ्जीत । त्रिकोणमण्डले नृपः ।
वर्तुले वैश्यः । अभ्युक्षिते शूद्रो भुञ्जीत । ततो मण्डले पालिकाय-

न्त्रादौ शुद्धं पात्रं निधाय प्रक्षाल्य पञ्चमहायज्ञावशिष्टं पूर्वं तु संस्कृतं
विहितं मितं घृताद्युपस्कृतं मातृभार्यादिदत्तमतिथ्यभ्यागतमृत्युपुत्रादि-
परिवृत एकान्ते भुञ्जीत । तदन्नमकुत्सयन्ब्रह्माग्रन्थिरहितपवित्रदक्षि-
णपाणिर्गार्ग्यत्रयाऽभ्युक्ष्यान्नम् ॐ भूरित्यादिमन्त्रेणामिमन्त्र्य सत्यं त्वर्तेन
परिषिञ्चामि ॐ चित्राय नमश्चित्रगुप्ताय नमो यमाय नमः सर्वभूतेभ्यो
नम इति भूमौ बलिं दत्त्वा हस्तपादवदनार्द्रः करमध्येनान्नमलङ्घयन्नमृ-
तोपस्तरणमसीत्यापोशनं गृहीत्वा सर्वाङ्गुलिभिः सर्वग्रासं ग्रसन्प्राणाय-
पानाय व्यानायोदानाय समानायेति स्वाहान्तैः पञ्चाऽऽहुतीः सघृताः
सक्षीरा वा हुत्वा बाक्पाणिपादचापल्यं वर्जयन्कृत्स्नं ग्रासं साङ्गुष्ठं ग्रसन्नरो
भुक्त्वा, अमृतापिधानमसीति गण्डूषार्धं पीत्वाऽर्धं भूमौ बहिःपाणिं
निनीय पवित्रं विसृज्य भूमौ पात्रे वा क्षिप्त्वा सम्यगुच्छिष्टं प्रक्षाल्य
द्विराचामेत् । ततो हस्तौ संसृज्य परिस्त्राव्याङ्गुष्ठेन चक्षुषोर्निषिञ्च्याक्षिणीं
स्पृष्ट्वाऽग्निमुपस्पृश्येष्टदेवतां स्मरेत् । भोजनगृहे चाऽऽसनस्थो नाऽऽचामे-
न्नाञ्जलिना पिबेन्न पितृतीर्थेन । गोमयं मृन्मयं वाऽऽश्वत्थं पालाशमार्क-
युतकं भिन्नं दग्धमयोबद्धं च पीठं वर्जयेत् । ताम्ररौप्यसौवर्णाश्मवर्जं
भिन्नभाजनं भग्नं वर्जयेत् । न शुष्कपाणिपादो भुञ्जीत न तिष्ठन्न गच्छन्न
शयानो न प्रह्वो न खट्वायां न संध्यायां न शय्यास्थो न तत्र भाजनं
निधाय न जानुनि नोत्सङ्गे न वामपाणितले वा निधाय भुञ्जीत । न
शिशुभिः सह भुञ्जीत । न पश्यतामप्रदार्य । नाभिजनबालवृद्धातुरेभ्योऽ-
प्रदाय न भार्यया सहाश्रीयाद्विवाहवर्जं नाऽऽर्द्रवस्त्रो वस्त्रादिपर्यङ्किकां
कृत्वा न प्रौढपादो नाऽऽसनारूढपादो न विदिङ्मुखो न दुष्टपङ्क्तौ । जल-
तृणाग्निभस्मपथिस्तम्भैः पङ्क्तिर्भिद्यते । ग्रहणे नाश्रीयात् । तदाऽन्यसूत-
कसूतकित्वं नास्ति । तदा स्नानतर्पणश्चाद्धयागदानादि कृत्वा मोक्षस्नानं
कृत्वाऽश्रीयात् । सूर्यग्रहे पूर्वं चतुर्यामं नाश्रीयात् । चन्द्रग्रहे त्रियामम् ।
चन्द्रमसो ग्रस्तोदये न दिवा पूर्वमश्रीयात् । अमुक्तयोरस्तंगतयोर्दृष्ट्वा
स्नात्वा परेऽहन्यद्यात् ।

ग्रस्तोदये विधोः पूर्वं नाहर्भोजनमारभेत् ।

न संध्ययोर्नार्धरात्रे नाग्निपाकशून्यगृहेषु नायज्ञोपवीती न वामह-
स्तेन न पाणिपृष्ठेन न केवलं पाणितलेन न वस्त्रे भुञ्जीत । नान्यसहा-

सनो न यन्त्रिकादौ यतिर्ब्रह्मचारी व्रती विधवा च भुञ्जीतेत्यादि
सर्वं ज्ञेयम् । अथ काले सायंसंध्यामुपास्य होमं वैश्वदेवमतिथ्यर्चनं
कृत्वा भृत्यैः परिवृतो भुञ्जीत । रात्रौ परिषेचने विशेषः—ऋतं त्वा
सत्येन परिषिञ्चामीति सायम् । ततः स्वस्त्रिया सह सुगन्धलेपनताम्बू-
लादि सेवमानः स्वपेत् । न संध्यायां शून्यालये श्मशान एक-
वृक्षे चतुष्पथे शिवमातृकायक्षणागस्कन्दभैरवाद्युग्रदेवगृहेषु कूलेषु च
स्वपेत् । धान्यगोदेवविप्राग्निगुरूणां चोपरि चाशुचौ वाऽशुचिरार्द्रवस्त्र-
पादो नग्नो न स्वपेत् । प्राक्शिरा दक्षिणतःशिरा वेष्टदेवतां नत्वा स्मर-
न्वैणवं दण्डं शयनसमीपे निधाय स्वपेत् । प्रक्षालितपादः कृतरक्षः स्वपेत् ।
प्रदोषापरयामौ विद्यया नयेत् ।

इति स्मृत्यर्थसार आह्निकं समाप्तम् ।

अथ द्रव्यशुद्धिरुच्यते—तत्र विण्मूत्रशुक्ररक्तवसामज्जासुरामद्यान्यत्यन्तो-
पहतिकारणानि । श्वविड्वराहबिडालादीनि पुरीषादीनि च कर्णवि-
ण्मूत्रश्लेष्माश्रुदूषिकास्वेदादीन्यल्पोपहतिकारणानि । तथोच्छिष्टशूद्रेण
सूतकिद्विजैरस्पृश्यकाकादिभिश्चास्पृश्यविड्वराहादिभिः पशुभिश्च स्पर्श-
नमल्पोपहतिरुच्यते । तथाऽल्पप्रदेशाल्पकालमूत्रोच्छिष्टमृगादिस्पर्शनम-
ल्पोपहतिरुच्यते । पञ्चमाद्यन्त्यजातिचाण्डालाद्यैः सूतिकाया रजस्व-
लायाः पतितैः शुना शवेन च शवस्पृशां च स्पर्शोऽत्यन्तोपहतिर्भवति ।
अल्पकालेऽल्पप्रदेशे मद्यसंस्पर्श उच्छिष्टरुधिराद्यैर्बहुकालं वस्तुदोषेऽत्य-
न्तोपहतिर्भवति । सौवर्णं राजतं ताम्रं लौहं विण्मूत्रचाण्डालोदक्यादिदुष्टं
पात्रं त्रिःसप्तमस्मभिरम्लोदकेन च शुध्येत् । सौवर्णं राजतं ताम्रं लौहं
विण्मूत्रचाण्डालोदक्यादिस्पृष्टमात्रं निर्लेपं जलप्रक्षालनाच्छुध्येत् ।
सलेपं चेद्भस्मभिरम्लोदकेन शुध्येत् । कांस्यादेरावर्तनम् । बहूपघाते सर्वे-
षामावर्तनमेव । तैजसानां गोमूत्रपरिवासेन लेपानपगम आवर्त-
नम् । ताम्रस्य विण्मूत्रादिभिश्चण्डालादिभिश्च दूषितस्याम्लोदकाभ्यां
शुद्धिः । कांस्यपित्तलयोर्विण्मूत्रादिगण्डूषपादप्रक्षालनचाण्डालादिस्पर्शं
तदेव त्रिःसप्तकृत्वो भस्मना परिमार्ज्यं प्रक्षालनाच्छुद्धिः । अल्पकालो-
पहतौ तापनपरिलेखाभ्यां शुद्धिः । बहुकालापहतावावर्तनम् । यद्वा
भूमौ निखाय षण्मासं परिमार्जनमेव । तत्र वृद्धे वृद्धमल्पेऽल्पमेवेति

१ ख. ग. 'सामेदभु' । २ ख. ग. 'लादिपुरीषा' । ३ ख. ग. 'त्र चार्धमल्पेऽल्पेऽपि स्या' ।
घ. वृद्धदुर्धमल्पे स्या' ।

स्यात् । एवं सर्वतैजसानामावर्तनं पुनःकरणम् । परिलेखनं तक्षणम् ।
 कांस्यपित्तलयोगोश्वकाकोच्छिष्टशूद्रस्पर्शं दशमस्मभिः प्रक्षालनम् ।
 अल्पकालोपहतौ भस्मना सलवणतैलावघर्षणैः शुद्धिर्बहुकाले त्वाव-
 र्तनम् । त्रपुसीसायसानां भस्मजलाभ्यां शुद्धिः । सर्वतैजसेष्वल्पोपहतौ
 गोमूत्रगोमयमृद्भस्माभ्लोदकैः शुद्धिर्यथाहं कार्या । शुक्तिशङ्खपाषाण-
 मणिरत्नानामभ्जानां विण्मूत्रादिचण्डालाद्युच्छिष्टस्पर्शमात्रे जलक्षाल-
 नाच्छुद्धिः । सलेपानां भस्मजलाभ्यां मृज्जलाभ्यां वा शुद्धिः । अत्य-
 न्तोपहतानां सप्ताहं भूमौ निखाय प्रक्षालनाच्छुद्धिः । सौवर्णराजत-
 ताग्रशङ्खशुक्ल्यश्मस्फटिकादिरत्नेषु भेदे न दोषः । शृङ्गादन्तास्थिमया-
 नामल्पोपहतौ बिल्वफलचूर्णैर्गौरसर्षपैर्मृद्भस्मगोमूत्रगोमयानामन्यतरेण
 प्रक्षालनाच्छुद्धिः । अत्युपहतौ तक्षणममेध्यरसवेधे त्यागः । दारुवेणुवेत्र-
 पात्राणामल्पोपहतौ तक्षणमतिदुष्टानां त्यागः । कपित्थबिल्वालाबुना-
 रिकेलफलानां तत्कृतपात्राणां चाल्पोपहतौ प्रक्षाल्य गोपुच्छनिघर्षणा-
 च्छुद्धिः । अत्यन्तोपहतौ त्यागः । शृङ्गास्थिदन्तपात्राणामभ्जानां च दुर्ल-
 मानामत्यन्तोपहतानां तक्षणप्रक्षालनाच्छुद्धिः । मृन्मयानां पात्राणामी-
 षददुष्टानां पुनर्दहनाच्छुद्धिः । विण्मूत्राद्युपहतानां शवसूतिकोदक्यास्पृ-
 ष्टानां त्याग एव । महाभाजनभाण्डेषु बाह्यदोष आन्तरं न दुष्यति । तत्र
 बाह्यं प्रक्षाल्यम् । सुक्खुवादिपात्राणां जलप्रक्षालनाच्छुद्धिः । सस्नेहानां
 यज्ञियानामुष्णजलप्रक्षालनाच्छुद्धिः । सर्वेषां पात्राणां संहतानामेकस्यो-
 पहतौ तस्यैव शुद्धिः कार्या न तत्स्पृष्टानां च । कन्दमूलशाकानामपक्वानां
 वेणुपात्रवस्त्रकाष्ठानां चाशुचिस्पृष्टानां जलप्रक्षालनाच्छुद्धिः । वस्त्राणा-
 मेकपुरुषोद्धार्यभाराधिकानां स्थूलानां बहूनामन्येषां च चण्डालादि-
 स्पृष्टानामहतक्रीतानां प्रोक्षणाच्छुद्धिः । श्वेतवस्त्रसूत्रेषु पण्यस्थूलनूत-
 नेषु विंशतौ बहुत्वम् । चित्रवस्त्रेष्वेकादशसु बहुत्वम् । कुसुमादिरक्तेषु
 त्रिषु बहुत्वम् । पण्येषु नूतनेषु च ततोऽल्पानामपि बहुत्वम् । सूच्या
 सूचितेऽल्पतमे बहुत्वम् । तदल्पानां प्रक्षालनाच्छुद्धिः । अधौतानां
 मलिनानां चाल्पानां बहूनां च वैदिके कार्ये नवानां च स्थिररङ्गाणां
 च प्रक्षालनम् । आविककम्बलस्याल्पदोषे सूर्यरश्मिभिः प्रोक्षणाद्वा
 शुद्धिः । विण्मूत्रादिदोषे वल्मीकमृत्तिकाभिः प्रक्षालनाच्छुद्धिः ।

१ ख. 'मशन्दानां वि' । ग. 'मल्पानां वि' । २ ख. ग. 'त्रे ज्वालनाच्छु' । ३ ख. ग. घ.
 'तसूक्ष्मवस्त्रेष्वपण्येषु नू' ।

कौशेयवस्त्रस्याल्पदोषे प्रोक्षणाच्छुद्धिः । विण्मूत्राद्युपहतस्य मृज्ज-
लाभ्यां प्रक्षालनाच्छुद्धिः । क्षौमवस्त्रस्याल्पदोषे प्रक्षालनाच्छुद्धिः ।
विण्मूत्राद्युपहतौ बिल्वचूर्णावधर्षणजलप्रक्षालनाच्छुद्धिः । नीलीसं-
युक्तं वस्त्रं स्वरूपेण चतुर्वर्णैस्त्याज्यम् ।

कम्बले पट्टसूत्रे च नीलीदोषो न विद्यते ।

नेपालकम्बलेऽल्पोपहतौ प्रोक्षणम् । मूत्रादिदोषेऽरिष्टफलसंभवफेनै-
र्विघृष्य जलप्रक्षालनाच्छुद्धिः । तूलशय्योपधानानां कुसुम्मादिरञ्जित-
वस्त्राणां चाल्पोपहतावातपे किञ्चिच्छोषणम् । विण्मूत्रादिसंस्पृष्टे संस्पृ-
ष्टांशं संशोध्य शोषणाच्छुद्धिः । ऊर्णाकार्पासतूलकुसुम्भकुङ्कुमकुसुम-
कर्पूरादिनिर्यासानां चैवम् । श्वेतवस्त्रं चण्डालादिस्पृष्टं प्रक्षालनाच्छुध्येत् ।
तस्य पुरीषादिदोषे गोमूत्रगोमयाभ्यां प्रक्षालनाच्छुद्धिः । शयनासन-
यानसंबन्धानां बहुरोमवस्त्राणां च प्रोक्षणाच्छुद्धिः । चैलवच्चर्मणां
शुद्धिः । नवानां तु जम्बूवृक्षादितिक्तशुष्ककषायेण त्रिफलोदकेन वा
गन्धक्षये शुद्धिः ।

(* बृहच्चर्मपटे नव्ये संधितेऽत्र लघुन्यपि ।

उक्तद्रव्यैः क्रमाच्छुद्धिः सद्यः प्रोक्ता मनीषिभिः ॥

मुद्गस्मभिः कषायैश्च त्रिफलाभिस्त्रिभिस्त्रिभिः ।

दिनैर्द्वादशभिः प्रोक्ता चर्मणः शुद्धिरुत्तमा ॥

भस्मनः पलमेकं तु मृदस्तद्विगुणं स्मृतम् ।

कषायास्त्रिगुणाः प्रोक्तास्त्रिगुणा त्रिफला स्मृता ॥)

चर्मभाण्डेषु बहिर्दोष आन्तरं तु न दुष्यति । तत्र बाह्यं
सम्यक्प्रक्षाल्यम् । धान्यमेकपुरुषोद्धार्यभाराधिकं चण्डालादिस्पृष्टं प्रोक्ष-
णाच्छुध्येत् । एकपुरुषभारं प्रक्षालनाच्छुध्येत् । धान्यमशुद्धं मृत्ति-
कायुक्तं तण्डुलीकरणाच्छुद्ध्येत् । धान्यराशौ मूत्रादिलिप्ते लिप्तां-
शमपसार्य शिष्टमभ्युक्षणाच्छुद्ध्येत् । धान्ये गृहे स्थिते गृहदाहे
सति तत्र नरपशुमरणे तद्धान्यं त्याज्यमेव । भूमिगर्भस्थं कुसूलगर्भस्थं
च धान्यमभ्युक्षणाच्छुद्ध्येत् । मुद्गमाषादि (+ नरभारान्नयूनमाद्रं
प्रक्षालनाच्छुद्ध्येत् । शुष्कं चेदत्यन्तोपहतमिति प्रोक्ष्यमेव । मूत्राद्यै-

* धनुश्चिह्नान्तर्गतपाठः ख. ग. पुस्तकस्थः । + धनुश्चिह्नान्तर्गतपाठः ख. ग. पुस्तकस्थः ।

रभ्युपहतं त्याज्यमेव । पुस्तकं चण्डालादिस्पृष्टं प्रोक्षेत् ।) शिम्बिधान्यानामरूपौपहतौ प्रोक्षणाच्छुद्धिः । धान्यमशुद्धं धूलिस्पृष्टं निस्तुषीकरणाच्छुध्येत् । अत्युपहतौ त्याज्यमेव । दृढधान्येषु पुरुषमाराधिकेषु बहुत्वम् । शिथिलेषु द्रोणप्रमाणेषु बहुत्वम् । तण्डुलविदलादीनां तदर्थं बहुत्वम् । तत्र स्पर्शदोषे प्रोक्षणम् । सर्वत्र विण्मूत्रादिदोषे तावन्मात्रं त्यक्त्वा सर्वं प्रोक्ष्यम् । शिथिलतण्डुलादि सर्वत्र प्रोक्ष्यम् । पुरुषाशनाङ्ग्यूनं त्याज्यमेव । मृच्चर्मतृणकाष्ठादिकं नरमाराधिकमल्पोपहतौ वातातपाच्छुध्येत् । भूतलं केशकीटतुषाद्यैर्मलिनं मार्जनादभ्युक्षणाच्च शुध्येत् । भूतलं श्वखरोष्ट्रविड्बराहादिसेवितं गोक्रमणमार्जनादभ्युक्षणाच्छुध्येत् । भूतलं विण्मूत्राद्यैरत्यन्तोपहतं चेदुल्लेखनेन गोनिचासमार्जनप्रोक्षणैः शुध्येत् । भूतलं नारीप्रसवदूषितं चाण्डालादिवासदूषितं चिरकालं विण्मूत्रादिदूषितं चिरकालं खरोष्ट्रविड्बराहदूषितं तत्स्थानमृत्तिकामवधृत्यान्यां मृत्तिकामापूर्य गोक्रमणमार्जनप्रोक्षणाच्छुध्येत् । एतदेव भूतलमत्यन्तोपहतं चैत्खात्वा तृणाग्निना दग्ध्वाऽन्यमृत्तिकामापूर्य गोक्रमणमार्जनप्रोक्षणैः शुध्येत् । गृहस्याशुचित्वे कुड्यानां लेपनं भूमेः परिलेखनं मार्जनं च कार्यम् । भूतलस्य चिरकालं विण्मूत्रादिवासितस्य श्मशानत्वं गतस्यापि वृष्टिप्रक्षालनात्पश्चात्पूर्वोक्तविधिना शुद्धिः । आरामे क्षेत्रे श्मशानत्वं गते विण्मूत्राद्यैरत्यन्तदूषिते वृष्टेरूर्ध्वं हलकर्षणाच्छुद्धिः । गृहे विप्रक्षत्रियविशां मरणे तत्रस्थं मृन्मयं माण्डं पक्कमन्नं च संत्यजेत् । मृतदेशं गोमयेनोपलिप्याजाघ्रातेन गवाक्रान्तेन वा वाचनैर्वा कुशसुवर्णमिश्रोदकैः प्रोक्षणाच्छुद्धिः । गृहे कश्चिद्राजादिनिगडबन्धनान्मृतश्चेद्भूमिं कुण्ड्यं च संप्रोक्ष्य तृणाग्निना सापनाद्गोक्रमात्सूर्यरश्मिप्रचारात्प्रागुक्तविधिना शुद्धिः । गृहे जनने मरणे वा जात आशौचादूर्ध्वं मेध्यभूमिमृत्तिकाप्रक्षेपणात्पुण्याहवाचनाच्छुद्धिः । विप्रगृहे शूद्रादिमरणे गृहस्य दशाहमाशौचम् । असच्छूद्रमरणे मासमाशौचम् । चण्डालपतितादिमरणे चतुर्मासमाशौचम् । रजकादिमरणे द्विमासमाशौचम् । सर्वत्राशौचान्तेऽमेध्यभूमिशुद्धिवच्छुद्धिः कार्या । विप्रगृहे दग्धे तत्र मार्जारादौ मृते सति तद्गृहस्य कर्षणात्प्रोक्षणाच्छुद्धिः । श्वकाकादौ मृते चैवं कर्षणे विशेषः । प्रतिमा लोहजाऽल्पोपहतिदूषिता मस्मोदघर्षणात्पञ्चगव्येन शुध्येत् । प्रतिमा पाषाणजा चाल्पोपहतिदू-

षिता चेद्वल्मीकमृत्तिकाया जलैः प्रक्षालिता पञ्चगव्येन शुध्येत् । प्रतिमा विण्मूत्रग्रामकर्दमादिना दूषिता चेत्पञ्चगव्यैः पञ्चाहमधिवास्याऽऽप्लाव्य गोमूत्रगोमयवल्मीकमृत्तिकाभिः सम्यक्प्रक्षाल्य पुनःप्रतिष्ठया शुध्येत् । रत्नजानां पञ्चगव्यैः प्रक्षाल्य पुनः प्रक्षालनं कार्यम् । जलं भूमिष्ठं गन्ध-
वर्णरसान्वितं विण्मूत्रादिदूषितं त्रिगवां पानसमर्थं शुद्धम् । ततोऽल्पं श्वकाकाशुपहतमेकगोपानसमर्थं तथैव शुद्धम् । जलं शुद्धं भाण्डाहतं तस्मिन्नेवाहनि शुद्धम् । तेनान्यदिनेऽनुष्ठानं न कार्यम् । बृहद्भाण्डगतं चतुर्द्वोणाधिकं विण्मूत्रादिदूषितं जलं परित्यज्य भाण्डं प्रक्षाल्य कुश-
संघर्षणात्पुनः प्रक्षाल्य पञ्चगव्येन प्रोक्ष्य पुनर्जलपूरणाच्छुध्येत् । वापी-
कूपतडागादिष्वल्पजलेषु श्वमार्जारदिशवे क्लिप्ते जीर्णे सति तज्जलं सर्वमुद्धृत्य मृत्तिकांमुद्धृत्य पञ्चगव्यप्रोक्षणाच्छुद्धिः । पाषाणेरिटिका-
भिर्वा बद्धे तक्षणस्थाने दहनमन्यत्समानम् । दारुबद्धे प्रक्षालनमेव । बहुजले षष्टिकुम्भोद्धारः । मूषकादिशुद्धप्राणिघाते त्रिंशत्कुम्भोद्धारो गोमूत्रादिप्रक्षेपः । जले जलप्राणिशवे न दोषः । वापीकूपजले नरशवे स्थिते घटशतं जलमुद्धृत्य पञ्चगव्यप्रक्षेपाच्छुद्धिः । पशुशवपातेऽप्येषा शुद्धिः । तत्र जलेन मरणे जलस्य त्रिरात्रमाशौचम् । आशौचान्ते पूर्वोक्ता शुद्धिः कार्या । वापीकूपजल उपानच्छलेष्मशुक्रविण्मूत्र-
रक्तवसामज्जास्थिदूषिते षष्टिकुम्भोद्धारोज्जलबाहुल्ये शतकुम्भोद्धार-
त्पञ्चगव्यप्रोक्षणाच्छुद्धिः । कूपादिजलेऽशुद्धरजसा दूषिते दिवा सूर्यर-
श्मिवायुस्पर्शनाच्छुद्धिः । रात्रौ वायुचन्दनक्षत्ररश्मिस्पर्शनाच्छुद्धिः
संध्यायां वायुस्पर्शनाच्छुद्धिः । नदीस्रोतस्तडागजलेऽन्त्यजैर्दूषिते तत्स्वी-
कृतजलस्थानादन्यत्र शुद्धमेव ।

शाणं पाणितलं मानं कुडवं प्रस्थमाढकम् ।

द्रोणं च खारिका चेति पूर्ववच्च चतुर्गुणम् ॥

द्रोणप्रमाणनिर्मितधान्यान्ने गवा घ्राते खरेण वा शुना वा विड्भिरा-
हग्रामकुक्कुटकाकैर्वा स्पृष्टे स्पृष्टमात्रमुद्धृत्य शेषमन्नं पर्यग्रीकृत्य सहस्र-
गायत्र्याऽभिमन्त्रितैर्जलैः पवमानः सुवर्जन इत्यनेनानुवाकेन सकृदभिम-
न्त्रितैर्वा शुद्धवतीभिर्ऋग्भिर्वा शुचिलिङ्गैर्मन्त्रैर्वाऽभ्युक्ष्यैतच्छुद्धमस्त्विति
विप्रवचनं लब्ध्वा शुध्येत् । अजामुखेन वा घ्रातं शुध्येत् । तदन्ने श्वकाका-

१ घ. 'ण्मूत्रामरसादिदू' । २ ख. ग. 'दमरसादि' । ३ ख. ग. 'मृद्गा' । ४ ख. ग. 'त्तिकां परित्यजोद्ध' । घ. 'त्तिकां परित्यजोद्ध' ।

दिलालया घर्षिते तावन्मात्रं समुद्धृत्य शेषं कनकवारिणा रौप्यवारिणां वाऽभ्युक्ष्योल्लुकेन स्पर्शयित्वा, आज्यकनकैः स्पृष्टं शुध्येत् । अन्नं पूर्वोक्तं नखलोमविण्मूत्रादिदुष्टं चेददुष्टमात्रमुद्धृत्य पूर्ववन्मन्त्रितोदकेनाभ्युक्ष्य भस्म क्षिप्त्वा घृतेनाभिधार्य शुद्धमस्त्विति विप्रवचनाच्छुध्येत् । घृतस्य नवनीतस्य वाऽऽढकप्रमाणस्य श्वकाक्रपिपीलिकादिदुष्टस्य दुष्टांशमुद्धृत्य वस्त्रेण परिशोध्य तज्जातीयेन तद्भाण्डं पूरयित्वा सर्वमग्नौ प्रताप्य गायत्र्याऽभिमन्त्रितजलाभ्युक्षणाच्छुध्येत् । तत्र नवनीतघृततैलक्षीर-
दध्नां द्रोणप्रमाणानां काकाद्युपहतौ घृतवच्छुद्धिः । तक्रदधिक्षीराणि शुद्रभाण्डस्थानि द्विजभाण्डे प्रक्षेपे शुद्धानि । नवनीतं घृतं क्षौद्रं चण्डालादिभाण्डस्थितं चेत्प्रताप्य विप्रभाण्डे क्षिप्तं बहु शुध्येत् । नवनीतं घृतं क्षौद्रं चण्डालेन प्रमादेन स्पृष्टं जले क्षिप्तोद्धृतं शुध्येत् ।
द्रोणप्रमाणाद्भूयनप्रमाणधान्यनिर्मितान्नानामाढकप्रमाणन्यूनघृतादीनां द्रोणप्रमाणाद्भूयनतक्रादीनां च पूर्वोक्तोपहतौ परित्यागोऽनापदि । आपदि तु पूर्वोक्तविधिभिः शुद्धिः । अतिक्षामे चतुष्पुरुषाशनसमर्थव्यञ्जने प्लावने शुद्धिः । अल्पात्मनस्त्यागः गुडलवणादीनां पर्याग्निकरणम् । भोजने केशकीटादिदर्शने तावन्मात्रमुद्धृत्य जलं भस्म मृदं वा क्षिप्त्वा शुध्येत् । मुखे स्पृष्टौ निष्ठीव्य जलं प्राश्य निष्ठीव्य घृतं प्राश्वाश्रीयात् । पाके केशादिस्थितौ त्यागः । तच्च भुक्त्वोपवसेत् । यद्यद्वस्तु धर्मोपयो-
ग्यत्यन्तप्रियं देशकालतोऽत्यन्तदुर्लभं तदुपहतं चेदल्पमपि पूर्वोक्तवि-
धिना शुध्येत् । अश्वमुखमजामुखं रतिकाले स्त्रीमुखं मृगव्ये शुनो मुखं प्रसवे वत्समुखं फलपाते पक्षिमुखं वा पण्यद्रव्यं च सदा शुद्धमेव । बाला उपनयनादर्वाक्शुद्धाः । स्त्री विवाहादर्वाक् । मूषकशलभम-
शकपतङ्गमक्षिकाधान्यस्थकीटगोहस्त्यश्वच्छागशुक्राश्च जलस्थाः सर्व-
जीवाश्च स्वभावशुद्धा अशुद्धस्पर्शेऽपि न दुष्यन्ति । चन्द्रसूर्यरश्मयः स्वतः शुद्धाः । सूतिकोदक्यामेध्यपतितान्त्यजश्मशानसंश्रयं विनाऽग्नेः स्वभावतः शुद्धिः । रजो वाताहतं शुद्धं हस्त्यश्वरथजातं च शुद्धम् । गवां पादरजश्च धान्यसमुत्थं रजश्च प्रशस्तम् । श्वविड्वराहखरोष्ट्राजा-
विकाकोलूकग्राम्यपक्षिवस्त्रमार्जनीसमुत्थं रजः स्पृष्टं चेदश्रीकरमनायु-
ष्करमपुण्यं च । अज्ञातदोषं यद्द्रव्यं तत्स्वत एव शुद्धम् । संदिग्धदोषं

यद्वयं च तद्विप्रवचनाच्छुद्धम् । शूर्पस्पर्शनमनायुष्यमपुण्यं च (*वस्त्र-
केशघटोदकं च निन्द्यपक्षधूलिवातस्पर्शनमनायुष्यमपुण्यं चेत्यादि सर्वम-
श्रीकरं च ।)

दधिक्षीराज्यमांसानि गन्धं पुष्पं च मत्स्यकान् ।
शय्याऽऽसनाशनं शाकं प्रत्याख्येयं न कुत्रचित् ॥
कुशाः शाकं पयो मत्स्या गन्धाः पुष्पं दधि क्षितिः ।
मांसं शय्यासनं धानाः प्रत्याख्येयं न वारि च ॥
मुखजा विशुषो मेध्या भूस्पृष्टाचामबिन्दवः ।
श्मश्रु चाऽऽस्यगतं शुद्धं दन्तस्थमथवा त्यजेत् ॥
निगिरेद्रा समाचामेदनुष्ठाने न चेन्न च ।
ताम्बूले तु स्थिते त्यक्ते निगीर्णे वाऽनुतिष्ठतः ॥
नाऽऽचामेन्न त्यजेदन्त्यसूतिकादिप्रदर्शने ।
गावस्तु पृष्ठतो मेध्या अमेध्या नरजा मलाः ॥
पन्थानश्च विशुध्यन्ति सोमसूर्याशुमारुतैः ।
मार्गकर्मतोर्यानि स्पृष्टान्यन्त्यश्ववायसैः ॥
मारुतेनैव शुध्यन्ति पक्वेष्टकचितानि च ।
शुद्धा च सतता धारा शुद्धमेव वहज्जलम् ॥
वाक्शस्तमम्बु निर्मुक्तमज्ञातं च सदा शुचि ।
इति स्मृत्यर्थसारे द्रव्यशुद्धिः समाप्ता ॥

अथ शरीरशुद्धिः—अमेध्याक्तस्य मृत्तोयैर्गन्धलेपापगमाच्छुद्धिः ।
चण्डालं पतितं च दूरतः परिवर्जयेत् । सूतिकोदक्या च शक्यविषये
वर्ज्यैव । असंकटस्थाने चण्डालसूतिकोदक्यापतितानां चतुस्त्रिद्वेक-
युगान्तरे संनिधाने सचैलं स्नानम् । संकटस्थाने गोवालव्यञ्जनाद-
वाक् । तारतम्येन संनिधाने सचैलं स्नानं कार्यम् । श्वपाकादि-
च्छायारोहणे च तथैव । चण्डालसूतिकोदक्यापतितानां मत्स्या
स्पर्शने सचैलं स्नात्वाऽब्लिङ्गमन्त्रान्गायत्रीं वाऽष्टशतं पादोनमर्धपादं
च क्रमाज्जपेत् । अत्र वस्त्रान्तरितस्पर्शः साक्षात्स्पर्श एव । चण्डा-
लादिस्पृष्टस्पृष्टस्य द्वितीयस्य चण्डालादिस्पृष्टस्पृष्टस्पृष्टस्य च तृती-

* धनुश्चिह्नान्तर्गतपाठः ख. ग. पुस्तकयोर्नास्ति ।

१ ख. ग. घ. 'र्षवल्लवायुस्य' । २ ग. वाक्शस्त्रम् । घ. कृष्णस्तम् ।

यस्य सचैलं स्नानं तत्तदर्धजपः सर्वत्र । मत्या स्पर्शने तु चतुर्थस्य स्नानमात्रम् । चण्डालसूतिकोदक्यापतितानाममत्या स्पर्शने सचैलं स्नात्वा चतुष्पञ्चाशजपं तत्पादोनमर्धपादं च क्रमात्कुर्यात् । अमत्या चण्डालादिस्पृष्टस्पृष्टस्य सचैलं स्नानं तदर्धो जपः सर्वत्र चतुर्थस्याऽऽचमनम् । रजस्वलादिविषये द्वितीयादिदिनेषु स्नानपूर्वं पादोनं जपं प्राहुः । तत्स्पृष्टस्पृष्टादिषु च स्नात्वा तत्तदर्धं जपः कार्यः । अचेतनेन दण्डादिना चण्डालादिस्पर्शने स्नानमात्रं तृतीयस्याऽऽचमनं द्रव्याणां प्रोक्षणम् । मत्या रजकादिस्पर्शने सचैलं स्नात्वा दशजपं कुर्यात् । मत्या तत्स्पृष्टस्पर्शने सचैलं स्नानम् । अमत्या रजकादिस्पर्शने सचैलं स्नानमेव । तत्स्पृष्टस्पर्शने स्नानमात्रं तृतीये ज्योतिर्दर्शनम् । मत्या पञ्चमजातिस्पर्शने सचैलं स्नानं पञ्चजपस्तत्स्पृष्टस्य स्नानम् । हीनशूद्रस्य स्पर्शने सचैलस्नानं सच्छूद्रस्पर्शने स्नानम् । निषादस्पर्शने सचैलं स्नानं निषादस्पृष्टस्पर्शने स्नात्वाऽऽचमनं कार्यम् । शवशावाशौचिप्रेतधूमदेवद्रव्योपजीविग्रामयाजकसोमविक्रयिपूषचित्तिचितिकाष्ठश्मशानान्तर्वर्तिमद्यमाण्डसस्नेहमानुषास्थीनि स्पृष्ट्वा सचैलं स्नात्वा गायत्र्यष्टशतं जपित्वा घृतं प्राश्य पुनः स्नात्वा त्रिराचामेत् । अमत्या स्नानमेव सर्वत्र । स्त्रीणां जपहोमस्थानेऽन्नधान्योदकुम्भादिदानं कार्यम् । वेदबाह्यशैवशाक्तेयपाशुपतलोकायतिकनास्तिकदेवलकविकर्मस्थद्विजानारूढपातितं विसृष्टाग्निमभिशस्तं शठं षण्ढं शवदाहकं स्पृष्ट्वा सचैलं स्नायात् । अमत्या स्नानमात्रं कार्यम् । अजीर्णे सुप्तेऽभ्युदितेऽस्तमिते विविक्ते दुःस्वप्ने दुर्जनस्पर्शने क्षुरकर्मणि भुक्त्वा मुहूर्तादुपरिच्छर्दिते च स्नानम् । ऋतौ मैथुने स्नानम् । अनृतौ सम्यक् शौचाचमनम् । दिवामैथुनेऽष्टम्यां च चतुर्दश्यां मैथुने सचैलं स्नानं स्मृतिप्रायश्चित्तं च कार्यम् । मूत्रपुरीषादौ शौचाचमनं चाकृत्वा यामद्रयाद्बहुकालं स्थितौ सचैलं स्नात्वा व्याहृतिभिर्होमो जपश्च कार्यः । उदयास्तमययो रेतः स्कन्दयित्वा सचैलं स्नात्वा पुनर्मन इति जपित्वा सप्तव्याहृतिभिराज्याहुतीर्जुहुयाजपेद्वा । अमत्या सचैलं स्नानमेव । अक्षिस्पन्दने कर्णाक्रोशे सचैलस्नानजपहोमाः कार्याः । श्वजम्बूकवृकादिक्रव्यादखरोष्ट्रविड्वराहमेषवानरस्पृशने नामेरुध्वं करौ मुक्त्वा सचैलं स्नानम् । नामेरधः स्पर्शने स्नान-

* ख. ग. स्पर्शने तु प्रक्षाल्यावक्षाल्याऽऽचम्य पुनराचम्य शुद्धयेत् ।

१ ख. ग. घ. 'र्ध पादपा' । २ ख. ग. घ. 'ने त्वा' ।

मात्रम् । रात्रौ चेन्नाभेरूर्ध्वं स्नानमात्रम् । नाभेरधः स्पर्शने तु प्रक्षाल्यावज्वालय पुनराचम्य शुध्येत् । काकोलूकभासयूककपोतग्राम-कुक्कुटादिक्रव्यादपक्षिस्पर्शने नाभेरूर्ध्वं करौ मुक्त्वा सचैलं स्नानम् । नाभेरधः स्पर्शने स्नानमात्रम् । रात्रौ चेन्नाभेरूर्ध्वं स्नानमात्रम् । नाभेरधः प्रक्षालनम् । रथ्याकर्दमतोयनिष्ठीवनाद्यैर्नाभेरूर्ध्वं स्पृष्टः सद्यः स्नायात् । नाभेरधः स्पर्शने प्रक्षालनम् । अमेध्यस्वजातीयपरकीयविष्णुमूत्ररेतोर्क्तातवास्थिमज्जावसाद्यैर्भलैः सुरामद्यैश्च नाभेरधः प्रबाहुषु च स्पृष्ट्वा मृज्जलैर्गन्धलेपं प्रक्षाल्य स्नानम् । नाभेरूर्ध्वं स्पर्शं स्नात्वोपवासः । इन्द्रियेषूच्छिष्टेषु च स्पर्शने स्नात्वोपोष्य पञ्चगव्यं पिबेत् । स्वकीयमलस्पर्शने तु नाभेरूर्ध्वमपि प्रक्षालनमेव । सस्नेहद्विजास्थिस्पर्शने विप्रस्य सचैलस्नानम् । निस्नेहे स्नानमात्रम् । चिरंतने त्वाचम्य गां स्पृष्ट्वा सूर्यं वा दृष्ट्वा शुध्येत् । अद्विजास्थिन सस्नेहे त्रिरात्रं निस्नेहे त्वेकरात्रममानुषे तु भक्ष्यं वर्ज्यम् । पञ्चनखशवदन्तास्थिन सस्नेहे स्नानं वस्त्रान्तरधारणं च । वृष्टौ सकर्दमग्रामसंकरप्रवेशे जङ्घयोस्तिस्रो मृत्तिकाः पादयोः षट् क्षिप्त्वा प्रक्षालनम् । वायुशुष्के कर्दमादौ न दोषः । श्वपाकादिच्छायारोहणे सचैलं स्नात्वा घृतं वा हिरण्योदकं वा कुशोदकं वा पिबेत् । श्वपाकादिस्पर्शने सचैलं स्नात्वाऽष्टसहस्रजपः । मत्या चेदुपवासश्च तत्स्पृष्टादिषु तु तारतम्येन योज्यम् । दिवा रजःस्रावे जनने मरणे वा तद्दिनादिकमशुचित्वं स्यात् । रात्रौ रजःस्रावादौ सत्यर्धरात्रादर्वाक्पूर्वदिनमित्येकः पक्षः । रात्रिं त्रेधा विभज्य पूर्वभागद्वये चेत्पूर्वदिनमित्यन्यः पक्षः । उदयात्पूर्वं चेत्पूर्वदिनमित्यपरः पक्षः । एषां पक्षाणां देशाचारतो व्यवस्था । अज्ञाते रजःस्रावे चतुर्दिनेषु ज्ञाते तु रजःस्रावादिकमशुचित्वं स्यात् । जननादौ ज्ञानादिकमशुचित्वम् । सर्वथाऽज्ञाते शुचित्वमेव । अतो ज्ञानात्पूर्वं रजस्वलास्पृष्टमदुष्टमेव । सूतकं तु ज्ञानात् । एवं सर्वपापनिमित्तं स्वसत्तादिना पापापादकं सूतकं तु ज्ञानादिकमेव । रजस्वला त्रिरात्रमशुचिः स्यात् । चतुर्थेऽहनि स्नात्वा शुध्येत् । भर्तुः स्पृश्या स्यात् । दैवे पित्र्ये च कार्ये रजोनिवृत्तौ पञ्चमादिदिने शुद्धा । सूतिका स्वाशौचान्ते मलं प्रक्षाल्य दन्तान्धावयित्वा सचैलं स्नायात् । रजस्वला चतुर्थेऽहनि षष्ठिमृत्तिकाभिः शौचं कृत्वा क्षत्रादिस्त्री च पादपादन्यूनमृत्तिकाभिः

विंधवा द्विगुणमृत्तिकाभिः शौचं कृत्वा मलं प्रक्षाल्य दन्तधावनपूर्वकं संगवे सचैलं स्नायात् । रजस्वलायाः स्नातायाः पुनरपि रजोदृष्टावष्टादशदिनादर्वागशुचित्वं नास्ति । अष्टादशदिने रजोदृष्टावेकरात्रमशुचित्वम् । नवदशदिने द्विरात्रम् । विंशादिदिने त्रिरात्रम् । प्रायो विंशदिदिनादूर्ध्वं रजःस्त्राविणीनामेवं भवति । विंशतिदिनादर्वाक्प्रायशो रजोदर्शनवतीनामष्टादशदिनेऽपि त्रिरात्रमशुचित्वम् । किंच त्रयोदशदिनादूर्ध्वं प्रायशो रजःस्त्राविणीनामेकादशदिनादर्वागशुचित्वं नास्ति । एकादशदिने रजोदृष्टावेकरात्रमशुचित्वम् । द्वादशे द्विरात्रम् । त्रयोदशादिदिनेषु त्रिरात्रमेव । सचैलस्नानं वस्त्रं प्रक्षाल्य स्नात्वा पुनः सचैलं स्नानम् । एकवस्त्रः स्पृष्टश्चेत्तथा स्नातेऽपि सचैलं स्नानमेव ।

सङ्ग्रामे हृदमार्गे च यात्रादेवगृहेषु च ।
उत्सदक्रतुतीर्थेषु विप्लवे ग्रामदेशयोः ॥
महाजलसमीपेषु महाजनवरेषु च ।
अग्न्युत्पाते महापत्सु स्पृष्टास्पृष्टिर्न दुष्यति ॥
प्राप्यकारीन्द्रियं स्पृष्टमस्पृष्टि त्वितरेन्द्रियम् ।
तयोश्च विषयं प्राहुः स्पृष्टास्पृष्ट्यभिधानतः ॥

इति स्पृष्टास्पृष्टविधिः ।

अथाशौचविधिः—चतुर्मासाभ्यन्तरे गर्भमात्रनाशः स्त्राव उच्यते । तत्र स्त्राव आद्यमासंचतुष्टये मातुस्त्रिरात्रमाशौचम् । उपरि मातुर्गर्भमाससंख्यासमदिनमाशौचम् । सगोत्रसपिण्डानां स्नानेन सद्यः शुद्धिः । यतःप्रभृति संतानं मिद्यते स कूटस्थस्तमारभ्य गणिताः सप्त पुरुषाः सपिण्डाः । ऊर्ध्वं समानोदकाः । पञ्चमषष्ठयोर्मासयोर्गर्भमात्रनाशः पात इत्युच्यते । पाते मातुर्गर्भमाससमदिनमाशौचम् । पित्रादीनां सपिण्डानां त्रिरात्रम् । इदं तु गर्भनाशप्रयुक्ताशौचं सर्ववर्णेषु समम् । सप्तममासप्रभृति पूर्णगर्भनिर्गमः प्रसवस्तत्र प्रसवे जनननिमित्तमाशौचं पूर्णं दशाहादिकं सर्वेषां यथावर्णं भवति । सोदकानां त्रिरात्रम् । जनननिमित्तास्पृश्यत्वं मातुरेव यावदाशौचं न पितुः । तस्य स्नानानन्तरमस्पृश्यत्वं नास्ति । सपिण्डानामस्पृश्यत्वं सर्वदा नास्त्येव । सूतिका स्ववर्णाशौचे गते संव्यवहार्येव । अदृष्टार्थेषु तु कर्मसु पुत्रप्रसूतिर्विंश-

तिरात्रमयोग्या स्त्रीप्रसूमासम् । पुत्रजननदिवसे हिरण्यभूगधाश्वाज्यवा-
 सःशय्यागृहादि सर्वं प्रतिग्राह्यम् । कृतान्नं वर्ज्यम् । कृतान्नग्रहणे
 चान्द्रायणम् । पुत्रजननदिवसे दानं कुर्यात् । हिरण्याद्यभावे तदानीं
 संकल्प्य पश्चात्समर्पयेत् । प्रथमे दिवसे हिरण्यादिदानं षष्ठे सप्तमे वा
 बलिदानं दशमदिनेऽन्नदानमित्यादि यथाचारं कार्यम् । सूतिकागृहरक्षा
 च कार्था रात्रौ विशेषेण । जन्माशौचमध्ये तच्छिशुमरणे तूच्यते ।
 नाभिच्छेदनादूर्ध्वं शिशुमरणे निष्प्राणशिशुनिर्गमे च जनननिमित्ता-
 शौचं कृत्स्नं यथावर्णं सर्वेषां सपिण्डानामस्त्येव । मरणनिमित्ते सद्यः
 शुद्धिः । नाभिच्छेदनात्पूर्वं शिशुमरणे तु जनननिमित्ताशौचं सपि-
 ण्डानां त्रिरात्रम् । मरणनिमित्ते सद्यः शुद्धिः । मातुर्जनननिमित्ता-
 शौचं सर्वं यथावर्णमस्ति । मरणनिमित्ते सद्यः शुद्धिः । नामकरणा-
 त्पूर्वं शिशुमरणे निखननमेव नानुगमनं नाग्न्युदकदानादिकम् । ज्ञातीनां
 सचैलस्नानात्सद्यः शुद्धिः । ततो दन्तजननात्पूर्वं मरणे निखननं तूष्णीं
 दहनोदकादिदानं वा कार्यम् । अनुगमनं कृताकृतम् । खननपक्षे सद्यः
 शुद्धिः । दहने त्वेकाहम् । खननं च शवमलं प्रक्षाल्य घृतेनाभ्यज्य
 संस्नाप्य नववस्त्रसूत्रगन्धमाल्यानुलेपनाद्यैः शक्त्या ह्यलंकृत्य ग्रामाद्बहिः
 शुचौ देशे कार्यम् । दहनं च तथा शवं संस्नाप्यालंकृत्य बान्धवज्येष्ठपूर्वाः
 श्मशानं नीत्वा लौकिकाग्निना तूष्णीं कुर्युः । तूष्णीमुदकदानादिदानं
 च । दहनेऽमेध्यचण्डालसूतकिपतितचिताग्नीन्वर्जयेत् । दन्तजननादूर्ध्वं
 प्रथमवर्षे कृतचूडस्यापि चावत्रिवर्षमेकाहः । प्रथमवर्षे जातदन्त-
 स्याकृतचूडस्याप्येकाह एव । दन्तजननादूर्ध्वं त्रिवर्षपर्यन्तमकृतचू-
 डस्य मरणे खननं दहनं वा कार्यम् । खनन एकाहमाशौचम् । दहने
 त्रिरात्रम् । अत्रोनद्विवर्षान्तमनुगमनं कृताकृतम् । पश्चान्नित्यम् ।
 दन्तजननादूर्ध्वं त्रिवर्षपर्यन्तं कृतचौलस्य मरणे तूष्णीं दहनम् ।
 तूष्णीमुदकादिदानम् । त्रिरात्राशौचं नित्यमेव । त्रिवर्षात्परं कृतचौल-
 स्यापि मरणे यावदुपनयनं तावदनुगमनम् । तूष्णीं दहनोदकदान-
 त्रिरात्राशौचानि नियतानि कार्याणि । अनुपनीतमरणे मातापित्रोर्द-
 शाहाशौचपक्षोऽनाहतः । अनुपनीतमृताशौचे वर्णाः स्वाशौचकाल-
 त्रिमागादूर्ध्वं स्पृश्याः । अनुपनीतमरणे श्रुतेऽतीताशौचं नास्ति स्नानमेव ।
 इदं वयःप्रयुक्ताशौचं सर्ववर्णसमम् । आशौचान्ते स्नात्वा स्वास्तिवाचन-
 पूर्वं ब्राह्मणभोजनं कार्यम् । कन्यामरणे तु त्रिपुरुषविषयज्ञातीनामा-
 चौलकरणादाचौलकालाद्वा स्नानेन शुद्धिः । स्त्रीषु सापिण्ड्यं त्रिपुरु-

यमेवाप्रस्तासु । ततो वाग्दानाद्वर्गागेकाहमाशौचम् । ततो विवाहाद्वर्गा-
वपतिपक्षे पितृपक्षे च त्रिपुरुषपर्यन्तं त्रिरात्रम् । वाग्दानामावे विवाह-
निश्चयोऽवधिरित्येके । अत्रोनद्विवर्षे खननं पश्चाद्दहनं पुरुषचद्वा ।
अस्पृश्यत्वादि सर्वं पूर्ववदेव । उपनयनादूर्ध्वं पुरुषमरणे विवाहादूर्ध्वं
स्त्रीमरणे शूद्रमरणे च विधिवद्दग्ध्वोदकपिण्डदानसहितं यथावर्णं
पूर्णाशौचं कार्यम् । तच्च दहनं ब्रह्मचर्यादेरनशिकस्य विधुरादेश्चापि
कपालाग्निना स्वशास्त्रोक्तविधिना कार्यम् । गृहस्थैस्व गृह्याग्निना
कार्यम् । आहिताग्नेस्त्रेताग्निना दहनं कार्यम् । तच्चाशौचं ब्राह्मणानां दशा-
हम् । क्षत्रियाणां द्वादशाहम् । वैश्यानां पञ्चदशाहम् । शूद्राणां मासम् ।
वृत्तस्थानां द्विजशुश्रूषापञ्चमहायज्ञवतां शूद्राणां तु पञ्चदशाहम् ।
चतुर्थे दशरात्रं स्यादिति पक्षो दूषितः ।

एकाहाच्छुध्यते विप्रो योऽग्निवेदसमन्वितः ।

इत्याद्या अनादृताः । तच्चाशौचमाहिताग्नेर्विधिवद्दहनं कृत्वा दहन-
दिवसमारभ्यैव कार्यम् । विदेशस्थे मृते यावद्विधिना न संस्कारस्ताव-
त्पुत्रादीनां संध्यादिकर्मलोपो नास्त्येव । अनाहिताग्नेर्मरणदिवसमारभ्या-
शौचं कार्यम् । अनाहिताग्नेर्विधिवद्दहनाभावे तदानीमाशौचग्रहणं कृता-
कृतम् । आहिताग्नेर्विधिवद्दहनाभाव आशौचं नास्त्येव । अग्न्युदकदानं
च पुत्राणां प्रथमदिने कार्यं दशमे वा । त्र्यहाद्वा । दशमदिनाद्वर्गाग्वा ।
आद्यश्राद्धात्प्राग्वा कस्मिंश्चिद्दिने ग्रामाद्बहिः कार्यं नखनिकृन्तनं च ।
शुरुमरणे चैवम् । मृतशरीराभावेऽस्थिसंस्कारं कुर्यात् । अस्थामभावे
पलाशवृन्तैः कुशैर्वा शरीरप्रतिकृतिं कृत्वा पुनःसंस्कारं कुर्यात् । आहि-
ताग्नेः पुनःसंस्कारे प्रत्यक्षशववद्वाहादिकं संपूर्णाशौचं यथावर्णं कार्यम् ।
अनाहिताग्नेः पुनःसंस्कारस्तत्सूतकमध्ये चेत्कृतस्तत्सूतकशेषेणैव शुद्धिः ।
अतीते सूतके पुनःसंस्कारे तु पूर्वमगृहीताशौचस्य पुत्रस्य पत्न्याश्च
दशाहादिकं पूर्णाशौचम् । गृहीताशौचस्य पुत्रस्य पत्न्याश्च त्रिरात्रम् ।
पत्नीपुनःसंस्कारे पत्युश्चैवं सपत्न्योर्मिथश्चैवम् । अगृहीताशौचानां सपि-
ण्डानां त्रिरात्रम् । गृहीताशौचानां पुनराशौचं नास्त्येव । विदेशस्थज-
ने मरणे वा प्रथमदिवसादूर्ध्वं ज्ञाते स्वाशौचशेषेणैव शुद्धिः पुत्रादी-
नाम् । हीनवर्णस्य ब्राह्मणाद्युत्कृष्टजातिसपिण्डत्व उत्कृष्टजात्याशौच-

१ ख. ग. 'मेव प्रस्तासु । २ घ. 'स्यस्थानादितामेगु' । ३ ग. 'चं चास्त्ये' । ४ ख. ग. घ.
वपने च पु' ।

मेव । दासी दासश्च प्रेक्ष्यश्च स्वामिकार्ये स्वाम्याशौचसमकाले गते स्पृश्याः । स्वकर्माधिकारस्तु स्वाशौचान्त एव । प्रतिलोमजानां नाशौचं तेषां तदन्ते मलक्षालनमेव । शवं दग्ध्वा पृष्ठतोऽनवेक्षमाणा आगच्छन्तोऽस्फुटितं श्लक्ष्णं पाषाणं गृहीत्वा महाजलं गत्वा तत्र महाजले शरीरमलं प्रक्षाल्य वस्त्रं संशोध्य स्नात्वा पुनः सचैलं स्नात्वा च वाग्यताः समाहिताः सगोत्राः सपिण्डाः समानोदकाश्च वृद्धपूर्वाः प्राचीनावीतिनो दक्षिणामुखाः प्रेतस्य नामगोत्रे उच्चार्य प्रेतस्तृप्यत्विति जलपूर्णाञ्जलिं सतिलं सव्योत्तरपाणिकाः पाषाणे सकृत्प्रमुञ्चेयुः । एवमुदकं दत्त्वा जलात्समुत्तीर्णात्रवजाततृणके भूप्रदेशे सम्यक्स्थितान्कुलवृद्धाः पूर्वोतिहासैः शोको निष्फलः श्लेष्माश्रु बान्धवैर्मुक्तं प्रेतास्ये पतति तस्मान्न रोदनं कार्यं विहिताः क्रियाः कार्या इत्याश्वासयेयुः । एवमाश्वासिता वस्त्राणि निष्पीड्य शोषयित्वा बालपूर्वं गृहं गत्वा द्वारि स्थित्वा समाहिता निम्बपत्राणि शनैर्भक्षयित्वाऽऽचम्याग्न्युदकगोमयगौरसर्षपदूर्वाङ्कुरगोवृषभान्स्पृष्ट्वा मणिप्रवालादीन्स्वशाखोक्तांश्च यथालाभं स्पृष्ट्वाऽश्मनि पदं शनैर्निधाय गृहं प्रविशेयुः । तस्मिन्नहन्येकस्मिन्मृन्मये पात्रे जलं प्रेत स्नाहीत्याकाशे शिक्यादौ स्थाप्यम् । अन्यस्मिन्मृन्मये क्षीरं प्रेत पिबेति तथैव स्थाप्यम् । निम्बपत्रमक्षणं पात्रस्थापनं वा कार्यम् । ततस्तस्मिन्दिवसे तस्मिन्गृहेऽन्नं न पचेयुः । क्रीतान्नेन वाऽयाचिताहूतेन वाऽन्यगृहपक्वेन वा हविष्येण वर्तेरन्नं स्वगृहपक्वेन क्षारलवणमाषमांसापूपपायसवर्जम् । अधःशयनं बालवृद्धातुरवर्जं पृथक्पृथग्ब्रह्मचर्ययुक्ता भवेयुः । गुरौ मृत उपवसेयुः पुत्राः पत्नी च । जातमृतके सर्वे नियमा न स्युः । महागुरुमरणेऽक्षारलवणाशिनो द्वादशरात्रं दानाध्ययने वर्जयेरन् । पिता पुत्रमुत्पाद्य संस्कृत्य वेदं वेदार्थं च ग्राहयित्वा वृत्तिं कल्पयित्वा महागुरुर्भवति । ततो यावदाशौचं तावत्प्रत्यहमेकैकमञ्जलिं दद्यात् । तथा सति दशदिनेषु दशाञ्जलयः स्युः । यद्वाऽशौचदिनेषु प्रत्यहं दिनसंख्यायांऽञ्जलीन्वृद्ध्या दत्त्वाऽतीतदिनसंख्याया च दद्यात् । तथा सति शताञ्जलयः स्युः । एवं मातामहानामाचार्याणां चोदकदानं कुर्यात् । सखीनां प्रत्तानां दुहितृमगिन्यादीनां मागिनेयश्चश्रूश्चशुरत्विजां चेच्छयोदकदानं कुर्यात् । अस्थिसंचयनमाहिताग्नेरनाहिताग्नेः संस्कारमारभ्य प्रथमेऽहि द्वितीये तृतीये चतुर्थे सप्तमे नवमे वाऽविरुद्धे स्वशाखोक्तविधिना

कार्यम् । तत्र पिण्डत्रयं च देयम् । एकः पिण्डः श्मशानवासिभ्यः पूर्व-
प्रेतेभ्यो मध्यम एक इदानींतनप्रेताय दक्षिणत एकस्तत्सखिभ्य इति
दक्षिणसंस्थं दद्यात् । अस्थीनि गङ्गायां क्षिपेदन्यतीर्थे वा । शुद्धदेशे वा ।
संचयने कृते वर्णाः स्वाशौचकालत्रिमागेन त्रिचतुःपञ्चदिनैः स्पृश्याः ।
दशद्वादशपञ्चदशत्रिंशदिनैर्मोज्यान्नाः । ब्रह्मचारी पितृमातृमहागुर्वाचा-
र्योपाध्यायव्यतिरिक्तानां देहनाशौचोदकदानादिकं न कुर्यादासमावर्तना-
त् । पित्रादीनां तु कुर्यादेव । प्रक्रान्तप्रायश्चित्तव्रतश्चाऽऽव्रतसमाप्तेर्देहना-
दिकं न कुर्यात् । स्वकर्मरहितश्च न कुर्यात् । कृतेऽपि नोपतिष्ठते । मातापितृ-
गुर्वाचार्योपाध्यायानां प्रेतकार्ये व्रतचारिणो व्रतलोपो नास्ति । स सूतकाश्रं
नाश्रीयत् । न सूतकिभिः सह वसेत् । अन्यप्रेतालंकरणे तूपनयनं कार्यम् ।
समाप्तव्रतस्य शिष्यस्य दशाहाशौचं गुरुदहने । स्वकर्मपतिता महा-
पातकपतिताः पुरुषाः स्त्रियश्च हीनजातिगामिन्यो ब्राह्मणगर्भपातिन्यो
मर्तृघ्न्यश्च स्तेयस्वभावा विरुद्धधर्माणश्च क्लीबाश्च दहनोदकदानादिकं
न कुर्युः । मोहात्कृतेऽपि नोपतिष्ठते । प्रेतस्य पुत्रो दिनत्रये ग्रामाद्बहिः
पाषाणस्य पुरतः कुशेष्वमन्त्रकं नामगोत्रेण पिण्डपितृयज्ञप्रयोगेण
त्रीन्पिण्डान्दद्यात् । पिण्डे पाषाणे चाक्षतगन्धमात्यधूपदीपान्दद्यात् ।
धूपदीपौ न वा दद्यात् । यद्वा दशदिनेषु दश पिण्डान्दद्यात् । आशौच-
ह्नासेऽपि त्रयः पिण्डा दशैव वा । अनेकपुत्रत्वे त्वितरानुमतो ज्येष्ठ
एव दद्यात् । द्रव्येण विभक्तेन वाऽविभक्तेन वा । पुत्राभावे पितृस-
पिण्डा मातृसपिण्डाः शिष्यास्तदर्थजीविनो वा संबन्धिनो बान्धवा
दद्युः । असगोत्रः सगोत्रो वा पुरुषः स्त्री वा । प्रथमेऽहनि यो दद्यात्स-
दशाहान्तम् । प्रथमेऽहनि यद्वयं दशाहान्तं तदेव । दशमेऽहन्यधिकं
पिण्डत्रयं देयम् । एकपिण्डस्तत्सखिभ्यः । इदानींतनप्रेताय मध्यमः ।
दक्षिणत एकः पिण्डो यमाय । ततः कर्त्रा प्रार्थिता बान्धवाः संबन्धि-
नश्च त्रींस्त्रीन्धर्मोदकाञ्जलीन्दद्युः । न पाषाणनियमः । ततः सुवासि-
न्योऽभ्यङ्गस्नाताः शुभशुक्लवाससः कलशपूर्वाः स्वगृहं गत्वाऽन्नभोज-
नादि स्वगृहपाकेन यथाचारं कुर्युः । त्रिरात्राशौचे दशाञ्जलयः
शताञ्जलयो वा । दशाञ्जलिपक्षे प्रथमेऽह्नि त्रयोऽञ्जलयः ।
द्वितीये चत्वारः । तृतीये त्रयः । शताञ्जलिपक्षे प्रथमेऽह्नि त्रिंशत् ।

१ ख. ग. घ. 'शर्विशतिदिनै' । २ ख. ग. दशाहाशौ' । ३ ख. ग. मात्रादी' । ४ ख. ग.
घ. 'णे पुनरप' । ५ क. 'मौवृत्ति' । ६ ख. ग. 'शौचाहा' । ७ ख. 'पार्वणे नि' ।

द्वितीये च चत्वारिंशत् । तृतीये त्रिंशत् । पिण्डाश्च त्रयोदश
 वा । दशपक्षे प्रथमेऽह्नि त्रयः । द्वितीये चत्वारः । तृतीये त्रयः ।
 संचयनं च । अनुपनीतस्य पिण्डं भूमौ दद्यान्न बर्हिषि । स्त्रीशू-
 द्रयोर्विवाहादवांगेव । अशौचदिनमध्ये पुनःसंस्कारे तु दृष्टबाध-
 मयाद्दिनं संभवे शोध्यम् । कालान्तरे कर्तव्ये प्रेतकार्ये तु दिनं
 शोध्यमेव । संवत्सरादूर्ध्वं प्रेतकार्ये तूत्तरायणकालः श्रेयान् । तत्रापि
 कृष्णपक्षः श्रेयान् । तत्रापि नन्दां त्रयोदशीं चतुर्दशीं दिनक्षयं च
 वर्जयेत् । शुक्रशैनेश्चरवारौ वर्ज्यौ । नक्षत्रेषु भरणी कृत्तिकाऽऽर्द्राऽऽ-
 श्लेषा मघा मूलं धनिष्ठादिपञ्चकं च त्रिपुष्कराणि चातिदुष्टानि सर्वथा
 वर्ज्यानि । व्यतीपाते परिषे वैधृतौ च योगे विष्टिकरणे चतुर्थाष्टमद्वाद-
 शस्थे चन्द्रे चातिदोषः । रोहिणीमृगशीर्षपुनर्वसुपूर्वोत्तराचित्राविशा-
 खानुराधापूर्वाषाढोत्तराषाढा निषिद्धत्रिपुष्कराणि चेषदुष्टानि संभवे
 वर्ज्यानि । शेषाण्यदुष्टानि ग्राह्याणि । सर्वथा दिनशुद्ध्यसंभवेऽनतिदुष्ट-
 बाह्यनक्षत्रं ग्राह्यम् । पुनःसंस्कारेऽनन्तरनक्षत्रं ग्राह्यम् । नन्दायां शुक्र-
 वारे चतुर्दश्यां त्रिजन्मनक्षत्रेष्वेकोद्दिष्टमतिनिषिद्धम् । साक्षादेकाशाहे
 च प्राप्त एकोद्दिष्टं कार्यमेव । तत्र तिथिनक्षत्रवारादिकं नैव शोध्यम् ।
 युगादिमन्वादिसंक्रान्त्यमावास्यासु प्रेतकार्ये किञ्चिदपि नैव शोध्यम् ।
 (*अपराकात्—

धनिष्ठापञ्चकमृते पञ्चरत्नानि तन्मुखे ।
 म्यस्याऽऽहुतित्रयं कर्ता दद्याद्ब्रह्मवपामिति ॥
 ततो निर्हरणं कार्यमेष साष्टोर्विधिः स्मृतः ।
 इतरं निखनेदेव ।

त्रिपादक्षमृते तद्वन्द्विरण्यशकलं मुखे ।)
 प्रतिपादयेत् ।

प्रत्यक्षशवसंस्कारे पुनःपुनःसंस्कारे च कर्तव्य ऊर्ध्वोच्छिष्टाधरोच्छि-
 ष्टोमयोच्छिष्टास्पृश्यस्पृष्टमरणखट्वामरणबद्धमरणादिषु सत्सु त्रीन्कू-
 च्छान्पद् कूच्छान्द्वादश कूच्छान्पञ्चदश कूच्छान्वा प्रायश्चित्तं निमि-
 त्तानुसारेण ब्राह्मणवचनाद्गृहीत्वाऽशक्तौ तदैव कूच्छप्रत्याम्नायं धेनुगो-

* धनुश्चिह्नान्तर्गतपाठः क. पुस्तके वर्तते ।

हिरण्यधनधान्यवस्त्रादि दत्त्वा तदानीं शुद्धिं संपाद्य दहनादिकं कार्यम् । शक्तो भक्तः पुत्रादिः पित्रादेः पापिनः सर्वात्मना शुद्धिमिच्छति चेत्प्रायश्चित्तप्रकरणोक्तसर्वप्रायश्चित्तानामन्यतमं योग्यं कृत्वा दहनादिकं कुर्यात् । दहनादिकर्ताऽप्यधिकारित्वाभाव एवमेव शुद्धिमात्मनः संपाद्य दहनादिकं कुर्यात् । एवं प्रेतस्याऽऽत्मनश्च शुद्धिमनापाद्य लोमादिना दहनादिके कृते तत्सर्वं नोपतिष्ठते । अन्तरिक्षे विनश्यति । उमयोश्च नरको ध्रुवम् । पाषण्डिनां वेदबाह्यालिङ्गानां सत्यधिकारेऽनाश्रमिणां स्वकर्महानिपतितानां महापातकिनां पुरुषाणां स्त्रीणां हीनजातिगामिनीनां ब्राह्मणगर्मभर्तृघ्नीनां कुलटानां च प्रायोनाशकशस्त्राग्निविषोद्धन्धनप्रपतनाद्यैर्बुद्धिपूर्वकमात्मघातकानां दहनादिकं न कुर्यात् । चण्डालजलसर्पबाह्मणवैद्युतदंष्ट्रिशृङ्गिपशुभिर्बुद्ध्या दर्पात्क्रोधादिना मृतानां च दहनाशौचोदकादिकं न कुर्यात् । मोहात्कृतेऽपि नोपतिष्ठते । अन्तरिक्षे विनश्यत्येव । तेषां शरीरं गङ्गायां क्षिपेत् । अन्यस्यां वा महानद्यां क्षिपेत् । त्रेताग्नीनप्सु क्षिपेत् । गृह्याग्निं च चतुष्पथे । यज्ञपात्राणि दहेत् । तेषां शवानां स्पर्शनस्नानालंकारवहनरज्जुच्छेदनदहनाश्रुपातकथादीनज्ञानतः कृत्वा महासातपनं कुर्यात् । ज्ञानात्तत्तत्कृच्छ्रम् । एतेष्वेकैककरणे त्वज्ञानादुपवासः । मत्याऽभ्यासे कृच्छ्रातिकृच्छ्रचान्द्रायणानि योग्यतया कुर्यात् । एतेषां पाषण्ड्यादीनां सर्वेषां निष्कृतिर्नास्ति प्रायश्चित्ताकरणे । तदानीं प्रायश्चित्तकरणासंभवे वत्सरान्ते लोकगर्हापरिहारार्थं शुद्ध्यर्थं च श्राद्धादौ योग्यत्वार्थं च नारायणबलिं कृत्वा श्राद्धं कार्यम् । अथ तेषामतिविरक्ता भक्ताः प्रायश्चित्तसमर्थाः पुत्रादयः सन्ति चेदात्मघातप्रायश्चित्तं चान्द्रद्वयं तत्तत्कृच्छ्रचतुष्टयं च कृत्वा द्वात्रिंशत्कृच्छ्राणि कृत्वा पाषण्ड्यादीनां सर्वेषां प्रायश्चित्तं योग्यं कृत्वा तदैव वा कालान्तरे वा संवत्सराद्वाग्वा दहनादिकं कृत्वा श्राद्धं कुर्युरनित्यत्वादायुषः । प्रायो महाप्रस्थानं प्रपतनं गिरिवृक्षादिभ्यः ।

अथ नारायणबलिरुच्यते—कस्यांचिच्छुक्लैकादश्यां विष्णुं वैवस्वतं यमं च यथावदभ्यर्च्य तत्समीपे मधुघृतप्लुतांस्तिलमिश्रान्दश पिण्डान्विष्णुरूपेण प्रेतमनुस्मरन्प्रेतनामगोत्रे उच्चार्य दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु दक्षिणामुखो दत्त्वा गन्धाद्यैरभ्यर्च्य पिण्डप्रवहणान्तं कृत्वा नद्यां क्षिपेत्

पत्न्यादिभ्यो दद्यात् । ततस्तस्यामेव रात्र्यामयुग्मान्ब्राह्मणानामन्त्र्यो-
पोषितः श्वोभूते मध्याह्ने विष्णुमभ्यर्च्यैकोद्दिष्टेन विधिना ब्राह्मणपा-
दपक्षालनादि तृप्तिप्रश्नान्तं कृत्वा पिण्डपितृयज्ञवदुल्लेखनाद्यवनेज-
नान्तं कृत्वा विष्णवे ब्रह्मणे शिवाय यमाय च सपरिवाराय चतुष्पि-
ण्डान्दत्त्वा नामगोत्रसहितं प्रेतं संस्मृत्य विष्णोर्नाम संकीर्त्य पञ्चमं
पिण्डं दद्यात् । ततो विप्रानाचान्तान्दक्षिणादिभिस्तोषयित्वा तन्मध्ये
चैकं गुणवत्तमं प्रेतबुद्ध्याऽनुस्मरन्गोभूहिरण्यादिभिरतिशयेन तोष-
यित्वा पवित्रपाणिभिर्विप्रैः प्रेताय तिलसहितमुदकं दापयित्वा स्वजनैः
सहितो भुञ्जीत ।

सर्पहेते त्वयं विशेषः—तस्य नागव्रतं कार्यम् । तत्र संवत्सरं भाद्रपद-
शुक्लपञ्चमीमारभ्यान्यां वा शुक्लपञ्चम्यामुपवासः कार्यः । यद्वा चतु-
र्थ्यामेकमक्तं पञ्चम्यां नक्तं कुर्वन्दारुमयं मुन्मयं वा नागं पञ्चफणं
कृत्वा गन्धैः करवीरैः शतपत्रैर्जातीपुष्पैर्धूपादिभिरनन्तं वासुकिं शङ्खं
पद्मं कम्बलं कर्कोटकमश्वतरं धृतराष्ट्रं शङ्खपालं कालियं तक्षकं कपिलं
च पञ्चम्यां संपूज्य पश्चाद्ब्राह्मणान्घृतपायसमोदकैर्भोजयेत् । संवत्स-
रान्ते चैवं संपूज्य महद्ब्राह्मणभोजनं सौवर्णनागदानं गोदानं च कुर्यात् ।
अथवोमयोः पक्षयोः पञ्चमीषु भूमौ नागं पिष्टेन विलिख्य सितपुष्प-
गन्धैः सितगन्धवासिततण्डुलैरभ्यर्च्य गव्यक्षीरमोदकं भूमौ निवेद्योप-
स्थायैवं वदेन्मुञ्च मुञ्चेममिति । तद्दिने मधुरमन्नमश्नीयात् । एवमब्दं
विधिना नागमभ्यर्च्य पूर्णेऽब्दे नारायणबलिं कृत्वा सौवर्णं नागं
गां च दद्यात् । ततः श्राद्धादिकं सर्वं कुर्यात् । चण्डालगोब्रा-
ह्मणपशुदंष्ट्रिसर्पाग्न्युदकादिभिः प्रमादान्मरणे तु चान्द्रायणं तप्त-
कृच्छ्रद्वयं च कृत्वा यद्वा पञ्चदश कृच्छ्रान्कृत्वा विधिना दहनाशौचो-
दकं सर्वं कार्यमेव । अनुष्ठानासमर्थजीर्णवानप्रस्थादीनामचिकित्स्य-
गुरुष्याधिपीडितानां चाग्न्युदकाशनगिरिप्रपतनादिभिर्बुद्धिपूर्वकमात्म-
घातकत्वमभ्यनुज्ञायते । तेषां विधिवद्वाहं कृत्वा त्रिरात्राशौचं
कार्यं द्वितीयेऽह्न्यस्थिसंचयनं तृतीय उदकपिण्डदानं चतुर्थेऽह्नि श्राद्धं
कुर्यात् । एवमन्येषां विध्यनुगृहीतात्मघातकानां कार्यम् । अभि-
षिक्तक्षत्रियादिहतानां गोविप्रैरन्त्यजैः पशुदंष्ट्र्यादिमिर्युद्धे बुद्धिपूर्वा-
त्मघातकानां पाषण्ड्यनाश्रमिपतितानां सद्यः शौचम् । जाताशौचे
मृताशौचे च त्रेताग्निसाध्याग्निहोत्रदर्शपूर्णमासाद्या नित्यनैमित्तिकाः
क्रियाः कार्याः । औपासनाग्निसाध्याश्च सायंप्रातर्होमपार्वणस्थालीपा-

काद्या नित्यनैमित्तिकाः श्रुतिचोदितत्वात्कार्या एव । असंभवे हापयेत् । सर्वथा न हापयेत् । स्मार्तत्वेऽपि पिण्डपितृयज्ञश्रवणाकर्माश्वयुजी-
कर्मादिकमसगीत्रेण कारयेन्न हापयेत् । (* ब्रह्मचर्यादिव्रतिनां च वृत्ते
श्राद्धकर्माणि कर्तृणां निमन्त्रितानां भोक्तृणां यत्किञ्चिन्नियमस्थानाम-
प्रतिषिद्धग्राहिनित्यदातृणामेतेषां यावदुपाधिस्तावदशौचं नास्त्येव ।
ऋत्विगादीनां तदानीं स्नानमस्ति) यजमानस्तु स्नात्वाऽऽचम्योद्देशत्यागौ
कुर्यात् । सर्वं काम्यं तु वर्ज्यमेव । स्मार्तत्वेऽपि संध्यायां गायत्र्याऽञ्ज-
लिदानं कार्यम् । मार्जनं कार्यं न वा । सूतके कर्मणां त्यागः । यद्वा
प्राणान्नियम्य मनसा मन्त्रमुच्चारयन्मार्जनादिकं कृत्वा वाचा गायत्री-
मुच्चार्याञ्जलिं दद्यात् । दानप्रतिग्रहपञ्चमहायज्ञनित्यश्राद्धस्वाध्याया-
दीनां स्मार्तानां त्याग एव । नित्यस्नानशौचाचमनभोजननियमानस्पृश्य-
स्पर्शनस्नानं च कुर्यादेव । सूतकान्नभोजनमस्वकुल्यानां न कार्यम् ।
स्वकुल्यानां न दोषः । दातृभोक्त्रोरन्यतरेणापि सूतके ज्ञाते न भोक्त-
व्यम् । उभाभ्यामपरिज्ञाते न दोषः । विवाहोत्सवयज्ञेष्वन्तरा जननम-
रणाशौचे पूर्वसंकल्पितद्रव्ये न दोषः । (+ तत्र कृतान्नेषु परैरन्नं
प्रदातव्यम् । दातृभोक्तृन्सूतकी न संस्पृशेत् । भुञ्जानेषु विप्रेष्वन्त-
राऽऽशौचेऽन्यगेहोदकाचान्ताः शुद्धाः । सर्वत्राशौचे लवणे मधुनि
मांसे च पुष्पमूलफलेषु शाककाष्ठतृणेष्वप्सु पयोदधिघृतेषु तैलौषधाजि-
नेषु नास्त्याशौचम् । स्वाम्यनुज्ञया स्वयमेव गृह्णीयात् । अन्नसत्रप्रवृ-
त्तानां तण्डुलादिष्वपक्वेषु च सर्वेषु पण्यद्रव्ये च नाशौचम् । शवसंसर्गनि-
मित्ताशौचमनुगमनाशौचं च शवसंसर्गिण एव न तद्भार्यापुत्रादीनां द्रव्या-
णां च । अतिक्रान्ताशौचं च तद्द्रव्याणां नास्त्येव । कारुशिल्पिवैद्य-
दासीदासराजप्रेष्यमूल्यकर्मकराणां सद्यः स्नातानां तत्तद्यापारे नाशौचम् ।
गत्यभावे क्वचित्स्पृश्यत्वं च स्यात् । स्वविहितकर्मस्वाशौचमस्त्येव ।
कारवैः शिल्पकाराद्याः शिल्पिनश्चित्रकर्मचैलनिर्णेजकाद्याः । वृत्तानामृ-
त्विजां दीक्षणीयेष्ट्यादिदीक्षितानां यज्ञियकर्म कुर्वतामन्नसत्रकर्तृणां
कृच्छ्रचान्द्रायणादिव्रतिनां प्रायश्चित्तत्वेन प्रवृत्तव्रतिनां च ब्रह्मचर्यादि-

* धनुश्चिह्नान्तर्गतपाठः ख. ग. पुस्तकस्थः । + धनुश्चिह्नान्तर्गतपाठः ख. ग. पुस्तकयो-
र्भास्ति ।

१ ख. ग. 'द्रव्यं शुद्धमेव । पूर्व' । २ घ. 'षु पुण्य' । ३ क. 'वः सूपका' ।

अतिनां च प्रवृत्ते आन्ध्रकर्मणि कर्तृणां निमन्त्रितानां मोक्षुणां यत्किञ्चि-
न्नियमस्थानामप्रतिषिद्धग्राहयितुं दातृणामेतेषां यावदुपाधिस्तावदाशौचं
नास्त्येव । ब्रह्मचारिणां यतीनां च सर्वदाऽशौचं नास्त्येव । ऋत्विगादीनां
तदानीं स्नानमस्ति ।) पूर्वप्रवृत्तचौलोपनयनविवाहादिसंस्कारकर्मसु
प्रवृत्तयज्ञेषु च प्रवृत्तप्रतिष्ठारामाद्युत्सवेषु च पूर्वप्रवृत्तवृषोत्सर्गादिपा-
कयज्ञेषु च युद्धे युद्धार्थविहितेषु शान्तिकर्मसु च स्फोटकाद्युप-
द्रवोपसर्गे राजमये देशविप्लवे च विवाहोत्सवदुर्गयज्ञयात्रादितीर्थयुद्ध-
कर्मसु च सद्यः शौचं तत्तदर्थं शान्तिकर्मणि च सद्यः शौचम् । व्याध्या-
दिना मुमूर्षावस्थायां तदुपशमनार्थं दाने च । तथा संकुचितवृत्तेः क्षुत्प-
रिश्रान्तमातापित्रादिवहुकुटुम्बस्य तद्रक्षणयोग्ये प्रतिग्रहे च । अश्वस्त-
निकस्य च सद्यः शौचम् । अतिकर्निष्ठापदि विप्लवे च विशेषेण सद्यः
शौचम् । एकाहसंचितधनस्यैकाहमाशौचम् । त्र्यहसंचितधनस्य त्र्यह-
माशौचम् । चतुरहार्थं संचितधनस्य कुम्भीधान्यस्य च चतुरहम् । कुसूल-
धान्यस्य दशाहम् । अशौचकालमध्येऽनुपपत्त्यपगमेऽवशिष्टाशौचमस्त्येव ।
एवं दशाहस्थाने त्रिरात्रपक्षिण्येकाहसद्यःशौचरूपाणि वाक्यान्याप-
द्विषयाणि योज्यानि । समानोदकविषयाश्च संकुचिताशौचविषयकल्पाः
पक्षिण्येकाहसद्यःशौचरूपा आपद्विषयाः । तेन प्रतिग्रहादिनाऽऽर्तिना-
शस्तद्विषया न सर्वत्र । ब्रह्मोज्झैतानिमित्तं बहुवेदस्य स्वाध्याये सद्यः
शौचम् ।

जपो देवार्चनविधिः कार्यो दीक्षान्वितैर्नरैः ।

नास्ति पापं यतस्तेषां सूतकं वा यतात्मनाम् ॥

आशौचानन्तरं सर्वे वर्णाः सचैलं स्नान्ति । ततो ब्राह्मणो दक्षिणह-
स्तेनापः स्पृष्ट्वा शुध्येत् । क्षत्रियो वाहनमायुधं वा । वैश्यः प्रतोदं
रश्मीन्वा । शूद्रो यष्टिं स्पृष्ट्वा शुध्येत् । एवं सपिण्डाः समानोदका
चक्षुयुगादिभिर्भूषितं शवं श्मशानं नयेयुर्न गृहग्रामाभिमुखं प्रेतं नयेयुः ।
न शूद्राः पतिताश्च शवतृणकाष्ठहवींषि नयेयुः । न नग्नं शवं दहेयुः ।
धर्मार्थं ब्राह्मणशवनिर्हरणस्नानालंकरणवहनदहनानादिके कृते द्विजानां
सचैलस्नानात्सद्यः शुद्धिर्महापुण्यं शुभं चाऽऽयुर्भवति । तत्राप्यनाथप्रेतसं-

१ ख. ग. घ. °कष्टाप° । २ ख. ग. °च क° । ३ ख. घ. °नाऽऽर्तिस्तद्विषया नश्येत् । म° ।
४ ग. °ब्रह्मोज्झैतानिमित्तं° । घ. °ब्रह्मयज्ञानासिनिमि° । ५ ख. °ऽष्टनास्तिकनिमि° ।

स्कारेऽनेकपुण्यमायुश्च वर्धते । धर्मार्थमुत्कृष्टजातिप्रेतनिर्हरणादिके कृते सचैलस्नानाच्छुद्धिः । धर्मार्थं सजातिप्रेतनिर्हरणादिके कृते सचैलस्नानाप्रणायामैः शुध्येत् । धर्मार्थं हीनजातिप्रेतनिर्हरणादिके कृते सचैलस्नात्वा निम्बपत्रमक्षणादिगृहप्रवेशनान्ते कृते कृच्छ्राच्छुद्धिः । स्नेहादिना सजातिप्रेतनिर्हरणमात्रे कृते त्वेकाहाशौचेन शुद्धिः । स्नेहादिना सजातिं निर्हृत्य तद्गृहे स्थितौ त्रिरात्राशौचम् । स्नेहादिना सजातिं निर्हृत्य तद्गृहे स्थितौ तदन्नाशने दशाहाशौचेन शुद्धिः । स्नेहादिना त्वन्यजातिनिर्हरणे तज्जातीयमाशौचं कार्यम् । अनुगमनं (*तु सजातिष्वपि ब्राह्मणाद्यैर्न कार्यम् । स्नेहादिना सजातिषूत्कृष्ट)द्विजातिषु चानुगमने कृते सचैलं स्नात्वाऽग्निं स्पृष्ट्वा घृतं प्राश्य शुध्येत् । घृतप्राशनं शुद्ध्यर्थमेव न भोजनस्थाने । सपिण्डेष्वनुगमनं विहितमेव । हीनजातिषु त्वेवम् । ब्राह्मणस्य क्षत्रियानुगमन एकाहमाशौचम् । वैश्यानुगमने पक्षिणी । शूद्रानुगमने त्रिरात्रमाशौचं कृत्वा समुद्रगायां नद्यां स्नात्वा प्राणायामशतं कृत्वा घृतं प्राश्य शुध्येत् । क्षत्रियस्य वैश्यानुगमने त्वेकाहमाशौचम् । शूद्रानुगमने पक्षिणी । वैश्यस्य शूद्रानुगमने त्वेकाहम् । रोदने चैवम् । असपिण्डस्य दहनादिकरणे पादकृच्छ्रो दशरात्रं त्रिरात्रं वाऽऽशौचं च । अशक्तस्य मरणभये सति शुद्धिः कार्या यथायोग्यप्राश्चितैः शौचस्नानपूर्वकम् । रजस्वलायां ज्वरितायां चतुर्थेऽहन्यन्या स्त्री रजस्वलां स्पृष्ट्वा सचैलाऽवगाह्याऽऽचम्य दशकृत्वो द्वादशकृत्वो वा स्पृशेद्गन्ते वाससां त्यागः । ततः सा रजस्वला शुद्धा । शक्त्या दानं कृत्वा पुण्याहेन विशेषतः शुद्धिः । आतुरे स्नानप्राप्तावनान्तुरो दशकृत्वो द्वादशकृत्वो वा स्नात्वा स्नात्वाऽऽचम्याऽऽचम्याऽऽतुरं स्पृशेत् । ततः स आतुरः शुध्येत् । सूतिकायां मृतायां कुम्भे जलमादाय तत्र पञ्चगव्यं क्षिप्त्वाऽऽपोहिष्ठीयवामदेव्यादिपुण्याभिर्ऋग्भिरभिमन्त्र्य ब्राह्मणवचनैः प्रायश्चित्तं लब्ध्वा तेनैव स्नापयित्वा विधिना दहेत् । रजस्वलां मृतां प्रक्षाल्य पञ्चगव्यैः स्नापयित्वा वस्त्रान्तरावृतां विधिना दहेत् । अत्रापि ब्राह्मणवचनं कार्यं पूर्वोक्तम् । यद्वा सूतिकां रजस्वलां च मलं प्रक्षाल्य स्नापयित्वा

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो घ. पुस्तके विद्यते ।

१ घ. 'तिषु चोत्कृष्टजातिषु च प्रे' । २ क. 'नं सजातीयजातिषु' । ३ ख. ग. नास्वसजातिषु
'वा । ४ ख. ग. 'षु म त्वे' । ५ ख. 'कृच्छ्रत्रिरात्राशौ' । ६ ख. ग. 'त्वा वज्रान्तारितं कृत्वा वि' ।

काष्ठवद्गन्ध्वा ब्राह्मणवचनं लब्ध्वाऽस्थीनि विधिना दहेत् । अतीता-
शौचं तु स्वाशौचकालादूर्ध्वं ब्राह्मणादीनां सर्वेषां वर्णानामुपनयनादूर्ध्वं
स्त्रीणां गूढाणां विवाहादूर्ध्वं भवति । तच्च मासत्रये त्रिरात्रम् ।
षण्मासे पक्षिणी । नवमासे त्वेकाहम् । ततः परं सचैलं स्नात्वोदकदाना-
च्छुद्धिः । इदं सर्ववर्णसमम् । अतीताशौचे स्वाशौचकालत्रिभागादूर्ध्वं
स्पृश्याः । जन्मन्यतिक्रान्ताशौचं सपिण्डानां नास्त्येव । पुत्रजन्मनि
पितुः स्नानमस्त्येव । देशान्तरादर्वाक्तनदेशे मृते स्वाशौचकालादूर्ध्वं श्रुते
तद्देशे विंशतियोजनादिकं त्रेधा विमज्ज्याऽऽद्ये स्वसमीपे भागे त्रिरात्रम् ।
ततो दूरभागे पक्षिणी ततोऽपि दूरभागे त्वेकाहः स्यात् । एवं देशकालौ
पर्यालोच्य यत्राल्पाशौचं तदेव ग्राह्यम् । नात्राहानि वर्धयेत् । देशान्त-
रस्थे मृते स्वाशौचकालादूर्ध्वं श्रुते सपिण्डानां सचैलं स्नानं न त्रिरा-
त्रादि । मातापितृमरणे दशाहादूर्ध्वं दूरदेशेऽपि वत्सरादूर्ध्वमपि पुत्रः
श्रुत्वा मरणश्रवणदिनमारभ्य दशाहाशौचादिकं कुर्यादुदकपिण्डादिकं
च । महागुरुमरणे दूरदेशेऽप्यार्द्रवस्त्रोपवासिना तथैवाशौचादिकं
कार्यम् । स्त्रीपुंसयोः परस्परं चैवम् । सवर्णोत्तमवर्णसपत्नीषु चैवम् ।
देशान्तरे कालान्तरे च हीनवर्णाया मातुः सपत्न्या मरणे तु पुत्रस्य
त्रिरात्रम् । हीनवर्णसपत्नीषु चैवम् । संवत्सरेऽतीतेऽपि सपत्न्योः पर-
स्परं चैवम् । इदं चाशौचं सर्ववर्णसमम् । देशान्तरमनेकधा स्मृतं स्मृति-
पुराणतीर्थकल्पेषु । आशौचकालमध्ये यत्र मृतवार्ता न श्रूयते योजना-
द्वहिस्तद्देशान्तरम् । तत्र योजनद्वयाधिकप्रयाणस्य निषिद्धत्वाद्विधिवै-
रोधेन विप्रस्य दशाहाशौचिनो विंशतियोजनैर्देशान्तरम् । क्षत्रियस्य
द्वादशाहाशौचिनश्चतुर्विंशतियोजनैः । वैश्यस्य पञ्चदशाहाशौचिनश्च
त्रिंशद्योजनैः । शूद्रस्य मासाशौचिनः षष्ठियोजनैर्देशान्तरम् । तथा
षष्ठियोजनमेकं त्रिंशद्योजनमपरं (* चतुर्विंशतियोजनमन्यद्विंशतियोज-
नमपर) मेतानि योग्यतया व्यवस्थितानीति केचित् । देशकालसुगम-
दुर्गमपर्यालोचनया सर्वेषामविशेषेण भवन्तीत्यन्ये । तथाऽन्यानि योज-

* धनुश्चिह्नितग्रन्थः क. पुस्तके वर्तते ।

१ क. घ. प्रमाणं । २ घ. 'धिवशेन वि' । ३ ख. विशेषेण वि' । ४ ख. 'जने देशा' । ५ ख.
जने । वै' । ६ ख. 'जने । शू' । ७ ख. जने देशा' । ८ ख. ग. 'कं चत्वारिंशद्योजनश्चतुश्चत्वारिंशद्यो-
जनमन्यत् । त्रि' । घ. मेक चत्वारिंशद्योजनमन्यत्रिंशद्यो' ।

नाद्वहिरेव । षट्चतुर्द्वियोजनानि त्रीणि देशान्तराणि स्मृतानि । तानि त्रिरात्रपक्षिण्येकाहाशौचविषयाणि । तथा भाषाभेददेशविशेषमहागिरिव्यवधानमहानदीव्यवधानानि त्रीणि देशान्तराणि । द्वादशाष्टचतुर्योजनानि त्रीणि देशान्तराणि तानि समान्युक्तानि । तानि त्रिरात्रादिविषयाण्यपि भवन्ति । तानि भाषाभेदादीनि त्रीणि पूर्वोक्तचतुर्विधदेशान्तरेषु सन्ति चेत्क्रमेण (*द्वादशाष्टचतुर्योजनन्यूनानि देशान्तराणि भवन्ति । तथा भाषाभेदमात्रगिरिव्यवधाननदीव्यवधानानि च त्रीणि देशान्तराणि स्मृतानि । यानि षट्चतुर्द्वियोजनसमानि तानि च त्रिरात्रादिविषयाणि भवन्ति । तानि च भाषाभेदादीनि पूर्वोक्तचतुर्विधानि देशान्तरेषु सन्ति चेत्क्रमेण) षट्चतुर्द्वियोजनाधिकन्यूनानि देशान्तराणि प्राहुः ।

तिर्यग्यवोदराण्यष्टावूर्ध्वा वा ब्रीहयस्त्रयः ।

प्रमाणमङ्गुलस्योक्तं वितस्तिर्द्वादशाङ्गुला ॥

वितस्तिर्द्विगुणाऽरत्निस्ततः किष्कुस्ततो धनुः ।

धनुःसहस्रे द्वे क्रोशश्चतुष्क्रोशं तु योजनम् ॥

मातापितृगृहे व्यूढायाः प्रसवे मातापित्रादिकानामेकाहमाशौचम् । तत्र तस्या मरणे त्रिरात्रम् । गृहान्तरमरणे पित्रोरेवम् । ग्रामान्तरमरणे पक्षिणी । असपिण्डे गृहे मृते त्रिरात्रम् । अन्याश्रितासु पतिपत्न्यादिषु त्रिरात्रम् । सपिण्डानामेकाहम् । असंनिधौ पितुरेकाहम् । सपिण्डानां स्नानमित्याद्यधिकाशौचं संनिधावसंनिधौ न्यूनम् । इदं च सर्ववर्णसमम् । मातापितृमरणे सर्ववर्णेषु व्यूढपुत्रिकायास्त्रिरात्रम् । जाताशौचे मृताशौचे सादेकानां त्रिरात्रम् । मातामहगुर्वाचार्यदौहित्रश्वशुरसंबन्धि-श्रोत्रियबहुयज्ञक्रतुकृद्विग्याज्येषु गुणिष्वेकग्रामे मृतेषु त्रिरात्रम् । ग्रामान्तरे पक्षिणी । अगुणिष्वेकग्रामे पक्षिणी । ग्रामान्तर एकाहम् । अनौरसेषु पुत्रेषु क्षेत्रजदत्तकादिष्वेकाहम् । याज्यद्विगदौहित्रसहाध्यायिसहोपनीतात्मबन्धुपितृबन्धुमातृबन्धुषु च श्वशुरशिष्योपाध्यायानूचानगुरुपुत्राचार्यपुत्रस्वामिमित्रभागिनेयेषु श्वश्रूमगिनीमातामहीषु च मातृ-

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थो ध. पुस्तके नास्ति ।

१ ख. ग. 'णि तानि स' । २ ख. ग. 'तुर्द्वियोज' । ३ ख. ग. घ 'म् । सपिण्डानामेकाहम् । अ' ।

वृषपितृवृषमातुलानीगुर्वाचार्यपत्नीषु मरण एकग्रामे पक्षिण्याशौचम् ।
ग्रामान्तरे त्वेकाहम् । अगुणवत्स्वेकग्रामेऽप्येकाहम् । ग्रामान्तरे स्नानम् ।
उपनयनादवाचीनसंस्कारपूर्वकं वेदाध्यापको गुरुर्मन्त्रज्ञानोपदेशकश्च ।
उपनयनपूर्वकं वेदाध्यापक आचार्यः स्मार्तकृदाचार्यश्च । वेदाध्यापक
उपाध्यायो वेदैकदेशाध्यापकश्च । अनूचानो वेदाङ्गवक्ता सच्छास्त्रवक्ता
च । श्रोत्रिय एकशाखाध्यायी ।

आत्मपितृवृषसुः पुत्रा आत्ममातृवृषसुः सुताः ।

आत्ममातुलपुत्राश्च विज्ञेया आत्मबान्धवाः ॥

पितुः पितृवृषसुः पुत्राः पितुर्मातृवृषसुः सुताः ।

पितुर्मातुलपुत्राश्च विज्ञेयाः पितृबान्धवाः ॥

मातुर्मातृवृषसुः पुत्रा मातुः पितृवृषसुः सुताः ।

मातुर्मातुलपुत्राश्च विज्ञेया मातृबान्धवाः ॥

सब्रह्मचारिणि त्रिरात्रम् । एकाचार्योपनीतः सब्रह्मचारी । स्वेदेश-
राजमरणे तु दिनमरणे दिनान्तमाशौचम् । रात्रौ मरणे रात्र्यन्तमा-
शौचम् । ग्राममध्ये शवे स्थिते ग्रामस्य तावदाशौचम् । क्षत्रियादीनां भूर-
क्षार्थमभिषिक्तानामाशौचं नास्ति । भूरक्षार्थमनन्यसाध्ये व्यापारेऽभिचा-
रादौ पुरोहितादेर्नाशौचम् । स्वविहितेषु भूपादेरनधिकार एव । स्त्रीविप्रार्थं
गवार्थं च सङ्ग्रामे च विद्युता च हतानां सपिण्डानां नाशौचम् । युद्धक्षतेन
कालान्तरमरणे ग्रामेश्वरे कुलपतौ मृते चैकाहम् । भगिन्यां संस्कृतायां
भ्रातरि संस्कृते मित्रे जामातरि दौहित्रे मागिनेये शालके तत्सुते चैते-
ष्वसर्ववर्णेषु मरणे सद्यः स्नानेन शुद्धिः । स्वल्पसंबन्धे स्नानं सचैल-
मित्यादि सर्ववर्णसमम् । स्ववर्णोत्तमवर्णाभ्यां नष्टभायां मरणे मर्तुरेका-
हमाशौचम् । जारस्य त्रिरात्रम् । प्रतिलोमजानां कृतप्रायश्चित्तानामाशौ-
चादिकं कार्यमेव । अकृतप्रायश्चित्तानामाशौचं नास्त्येव । स्वेरिण्याद्या-
श्रयस्य त्रिरात्रम् । संनिधौ पितुश्चिरात्रम् । जाताशौचमध्ये तत्समे
ततो न्यूने वा जाताशौचे सति ततो न्यूने वा मृताशौचे सत्यपि
पूर्वशेषेणैव शुद्धिः । जाताशौचमध्ये मृताशौचे तेन जाताशौचेन तत्समं
न समाप्यते । मृताशौचेनैव तत्र शुद्धिर्न जाताशौचेन । मृताशौचमध्ये
तु तत्समे ततो न्यूने वा जाताशौचे मृताशौचे वा सति पूर्वणैव शुद्धिः ।
जन्ममरणनिमित्तस्वल्पकालाशौचमध्ये दीर्घकालाशौचे सति दीर्घकाला-

शौचेनैव शुद्धिर्न स्वल्पकालाशौचेन । मातृमृताशौचमध्ये पितृमृताशौचे सति पित्राशौचेनैव शुद्धिर्न मात्राशौचेन । पितृमृताशौचमध्ये मातृमृताशौचे सति पित्राशौचं समाप्याधिकं वक्षिण्याशौचं कुर्यान्न पित्राशौचेनैव शुद्धिः । मृताशौचे रात्रिमात्रावशिष्टे मृताशौचान्तरे सति पूर्वाशौचं समाप्यानन्तरं द्वाभ्यां रात्रिभ्यां शुद्धिः । तस्या रात्रे-
श्चतुर्थे यामे मृताशौचान्तरे सति पश्चाच्चिरात्रेणैव शुद्धिर्न पूर्वशेषेणैव शुद्धिः । जाताशौचमध्ये मृताशौचे सति प्रेतमुद्दिश्य दहनोदकपिण्डदानादिकं कार्यमेव । मृताशौचमध्ये जाताशौचे सति जातकर्मादिकं कार्यमेव । मृताशौचे गते कार्यमित्येके । मृताशौचयोः संनिपाते प्रेतकृत्यं कार्यमेव । जाताशौचयोः संनिपाते जातकर्मादिकं कार्यमेव । तत्र कर्तुंस्तात्कालिकी शुद्धिरस्त्येव । स्त्रीपुरुषमरण एकस्मिन्दहनकाले प्राप्ते सवर्णानां समानधर्माणां पत्न्या सह दहनं कृत्वोदकपिण्डादिकं पतिपूर्वं पृथक्कार्यम् । सपिण्डनं तु पत्युः पश्चान्मरणे च पत्युः पूर्वं कृत्वा पत्न्याः सापिण्ड्यं कार्यम् । असवर्णानां समानधर्माणां पत्नीनां दहनादिकं सर्वं पृथगेव कार्यम् । सवर्णानां समानधर्माणां पत्नीनां च सह दाहः । उदकपिण्डादिकं ज्येष्ठपूर्वं पृथगेव । असवर्णानामसमानधर्माणां सपत्नीनां दहनादिकं पृथगेव । असमानधर्मतायां सर्वं पृथगेव । पितृपुत्रयोः समानधर्मयोः कपालाग्निना दाहयोर्दाहः सहैव । उदकदानादिकं पितृपूर्वं पृथगेव । मातृणां सवर्णानां समानधर्माणां कपालाग्निना दाह्यानां सह दाहः । उदकादिकं ज्येष्ठपूर्वं पृथगेव । असमानानां सर्वं पृथगेव । पुंवालानां मातृणां स्त्रीवालानां दहने खनने चैवम् । अन्वारोहणं सर्वजातिस्त्रीणां पतिव्रतानां प्रशस्तमात्मनो भर्तुश्च सर्वपापक्षयदं नरकोत्तारणमनेकस्वर्गफलदं स्वर्गान्ति आयुरारोग्यैश्वर्यपुत्रादिसर्वसंपत्पदं दुःखदारिद्र्यवैधव्यादिनाशकरमित्यादि पुराणस्मृतिषु श्रूयते । तत्रान्वारोहणं गर्भिण्या निषिद्धम् । ब्राह्मण्या गर्भिण्या ब्रह्महत्यासमम् । क्षत्रियादिजातिगर्भिण्याः क्षत्रियादिजातिवधसमम् । सवर्ण्या पत्या सहैकचित्यारोहणं कार्यम् । ब्राह्मण्यैकचित्यारोहणमेव न पृथक्चित्यारोहणं कार्यम् । क्षत्रियादिक्षत्रिया भर्तरि देशान्तरमृते पृथक्चित्यारोहणमेव । असवर्ण्या पृथक्चित्यारोहणं कार्यम् । तच्चान्वारोहणमेवं कार्यम् । अन्वारोहणं करिष्यामीति संकल्प्य पतिं नमस्कृत्य चितिमारुह्य सर्वं प्रयोगं कारयेत् । यद्वा संकल्प्य प्रयोगे कृते दह्यमाने भर्तरि तं नत्वाऽग्निं प्रविशेत् । चिति-

भ्रष्टा नारी मोहाद्विचलिता च प्राजापत्यं चरेत् । सह दहने तु श्राद्धादौ
पिण्डपाकैक्यं कालैक्यं कर्त्रैक्यं च भवति । सर्वत्र पिण्डदानं योग्यः
पुत्रो दद्यात् । पुत्राभावे मिथो दंपती सपत्न्यश्च । तदभावे भ्रातृपुत्रौ
भ्राता स्नुषा दुहिता दौहित्रोऽन्यः सगोत्रः सपिण्डः सब्रह्मचार्यपि
मित्रं शिष्यो गुरुर्बान्धवो धनसंबन्धी वा दद्यात् ।

न पुत्रस्य पिता दद्यान्नानुजस्य तथाऽग्रजः ।

अपि स्नेहवशाद्दद्यात्सपिण्डीकरणं विना ।

अदत्तानां कन्यकानां तु पितरौ दत्तः । अन्याभावे दत्तकन्या-
मपि पितरौ दत्तः । दौहित्रमातामहौ परस्परं दत्तः । माताम-
ह्याश्च दौहित्रः । जामातृश्वशुरौ मिथः । श्वश्रवादेः स्नुषा ।
भ्रातरौ मिथो दत्तः । गुरुशिष्यौ परस्परम् । उक्तकर्त्रभावे यः
काश्चित् । कुर्वतः सर्वसंपत्प्राप्तिरिति विज्ञायते । एकादशाहादौ
पुत्रो ज्येष्ठादिर्योग्यः कुर्यात् । नवश्राद्धानि षोडशश्राद्धानि च
विमक्तो वाऽविमक्तो वैक एव कुर्यात् । सपिण्डीकरणं तु विमक्ताः
पुत्राः सधनाश्चैकस्मिन्नेव दिने स्ववृद्धिक्रमात्पृथक्पृथक्कुर्युर्नान्यथा ।
अत ऊर्ध्वं पृथगेव कुर्युः । शूद्रस्यामन्त्रकं सर्वत्र द्विजवत्कार्यम् । सर्वत्र
गोत्राज्ञाने नान्नैव कार्यम् । ब्रीह्यादिपिण्डद्रव्याभावे फलेन मूलेन पयसा
शाकेन गुडेन वा तिलमिश्रेण कार्यम् । दशाहान्तं कृष्णायसपाणिः
स्यात् । अनाहिताग्निं यजमानं लौकिकाग्निना दहेत् । पत्न्याः पतिपरोक्षे
कपालाग्रेरप्यनुज्ञाऽस्ति । दहनकालेऽग्निनाशे दग्धकाष्ठेऽग्निं मथित्वा
दहेत् । लौकिकाग्नौ भूर्भुवःस्वाहेत्याज्याहुतीर्हुत्वा वा दहेत् । तद्देहं
भस्मं जले वा क्षिपेत् । दशाहप्रेतपिण्डं दत्त्वाऽस्नात्वा भुक्तावसपिण्डस्य
त्रिरात्रं सपिण्डस्योपवासः । मृत्या द्विगुणं प्रेतकृत्यं कुर्वतः । संचयना-
दवाक्स्त्रीणां संगमे चान्द्रमूर्ध्वं कार्यम् । अन्येषां प्रेताशौचिनां पूर्वं
त्रिरात्रं पश्चादुपवासः । प्रेतकार्यमकृत्वा तद्व्यं हरंस्तद्वर्णवधप्राय-
श्चित्तं कुर्यात् । देशान्तरमरणे पराकद्वयमष्टौ कृच्छ्रान्कृत्वा दहेत् ।
दूरदेशान्तरगते जीवद्वार्ता पुनः पर्यालोच्य जीवद्वार्तायामश्रूयमाणायां
पूर्ववयस्के विंशत्यब्दादूर्ध्वं मध्यमवयस्के पञ्चदशाब्दादूर्ध्वं चान्द्रायण-
त्रयं त्रिंशत्कृच्छ्राणि वा कृत्वा पालाशवृन्तैः कुशैर्वा प्रतिकृतिं कृत्वा

दाहाशौचादिकं पिण्डश्राद्धानि च कार्याणि । एवं कृते स पुनराग-
तश्चेद्धृतकुण्डे निमज्ज्य तस्य जातकर्मादिसंस्कारं कृत्वा पूर्वपत्न्या
विवाहः कार्यः ।

अथ श्राद्धक्रमः—तत्राऽऽदौ नवश्राद्धं प्रथमेऽह्नि तृतीये पञ्चमे सप्तमे
नवमे एकादशेऽह्नि विहितम् । तत्र प्रथममेकादशेऽह्नि उत्कृष्यते न वा ।
उत्कर्षपक्षे तृतीयाहादिषु पञ्चाहर्गणसंज्ञं नवश्राद्धं भवति । अनुत्कर्ष-
पक्षे चैकादशाहिकस्य विकल्पितत्वात् प्रथमादिषु पञ्चाहर्गणसंज्ञं
भवति । यद्वा प्रथमाहे तृतीये पञ्चमे सप्तमाहे चैवं त्र्यहर्गणसंज्ञकं
नवश्राद्धं कार्यम् । यद्वा तृतीयेऽह्नि पञ्चसप्तमयोरेकस्मिन्नवमेऽह्नि वेत्येवं
त्र्यहर्गणमेवं कार्यम् । अहर्गुग्मत्वं न कार्यम् । एतन्नवश्राद्धमेकादशेऽह्नि
वा कार्यम् । तथा षोडशश्राद्धानि नवमिश्रसंज्ञानि कार्याणि । तानि
प्रतिमासं मृताह आसंवत्सरं विहितानि द्वादश द्वादशाहे त्रिपक्षे न्यून-
षण्मासे न्यूनाब्दे चत्वारि । एवं षोडश । तत्राऽऽद्यमेकादशेऽह्नि उत्कृष्य
विधीयते । तत्र क्रमः—एकादशाहे द्वादशाहे द्वितीयमासे त्रिपक्षे
तृतीये चतुर्थे पञ्चमे षष्ठे मासे न्यूनषष्ठे सप्तमेऽष्टमे नवमे दशमे एकादशे
द्वादशे मासे न्यूनाब्दे चेति । ततोऽपरेद्युः संवत्सरान्ते सपिण्डीकरणम् ।
ततः परेद्युर्द्वितीयसंवत्सरादावाब्दिकम् । तृतीयसंवत्सरादौ प्रत्याब्दिक-
मिति क्रमः । यद्वा पिण्डपितृयज्ञपार्वणश्राद्धार्थमग्निमान्दशाहादूर्ध्वं द्वाद-
शाहे त्रिपक्षे वा वृद्धिश्राद्ध उपस्थिते वाऽऽयुष्यस्यानियतत्वाच्चावर्क्सं-
वत्सरात्सपिण्डीकरणं कुर्यात् । तच्च षोडशैकोद्दिष्टानि कृत्वैव कार्यम् ।
तत्रैकादशेऽह्नि चत्वारि श्राद्धानि संभवन्ति । नवश्राद्धाद्यं नवश्राद्धा-
न्त्यमाद्यमासिकं स्वतन्त्रैकोद्दिष्टं चेति । स्वतन्त्रैकोद्दिष्टे क्रियमाणेऽन्येषां
तन्त्रानुष्ठानात्सिद्धिरिच्छतामस्ति अत आद्यैकोद्दिष्टं नवसु मिश्रमित्यु-
च्यते । नवश्राद्धधर्मकं नवमिश्रधर्मकमुभयदोषकं भवति । ततोऽवशिष्टं
नवश्राद्धं ततोऽवशिष्टं मासिकं च । पृथगनुष्ठानपक्षे चाऽऽदौ स्वतन्त्रैकोद्दिष्टं
कार्यम् । तच्चोभयदोषमेव । ततो नवश्राद्धं ततो मासिकमेकादशेऽह्न्येका-
दशब्राह्मणभोजनं प्रेतोद्देशेनैकादशरुद्रोद्देशेन वा । एकादशरुद्रोद्देशाद्बुद्ध-
गणमित्याहुः । वृषोत्सर्गश्च प्रशस्यते । द्वादशाहस्थाने न्यूनमासिकं क्षात्रा-

१ ख. ग. न वा । यद्वा प्रथमाहे नवमे श्रा° । २ ख. ग. तृतीयपञ्चमसप्तोद्देशेकस्मिन्नव-
माहे च । एवमहर्ग° । ३ ख. ग. श्राद्धमन्त्य° ।

दिषु भवति । संचयने कृते मनुष्यलोकात्प्रेतलोकं गच्छत आमेन पाथेयश्राद्धमेकोद्दिष्टविधिना कार्यम् । सपिण्डीकरणे कृते प्रेतलोकात्पितृलोकं गच्छत आमेन पाथेयश्राद्धं पार्वणविधिना कार्यम् । ततः पुण्याहवाचनं कार्यम् । संवत्सरादर्वाक्सपिण्डीकरणेऽनुमासिकानि पृथक्कुर्यादेकोद्दिष्टवत्पार्वणवद्वा मृताहश्राद्धवत् । अनुमासिकान्ते संवत्सरविमोकान्तं श्राद्धं पुण्याहवाचनं च कार्यमिति क्रमः ।

अथ संन्यासविधिः—

संन्यासस्य विधिं कृत्स्नं प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ।
 गोविन्दराजस्य मतं बौधायनमतं यथा ॥
 एकोद्दिष्टविधानेन कुर्याच्छ्राद्धानि षोडश ।
 अग्निमान्पार्वणेनैव विधिना निर्वपेत्स्वयम् ॥
 कृच्छ्रांस्तु चतुरः कृत्वा पावनार्थमनाश्रमी ।
 आश्रमी चेत्तप्तकृच्छ्रं तेनासौ योग्यतां व्रजेत् ॥
 दैविकं चाऽऽर्षिकं दिव्यं पित्र्यं मातृकमानुषे ।
 भौतिकं चाऽऽत्मनश्चान्ते त्वष्टौ श्राद्धानि निर्वपेत् ॥
 केशश्मश्रुलोमनखं वापयित्वोपकल्पयेत् ।
 यष्टिं जलपवित्रं तु शिष्यं पात्रं कमण्डलुम् ॥
 अनग्निमान्द्विजः कुर्यान्नित्येन विधिना ततः ।
 स्वाग्नावेवाग्निमान्कुर्यादपवर्गान्तमादृतः ॥
 ग्रामान्ते ग्रामसीमान्ते अग्न्यगारे सुरालये ।
 आज्यं पयो दधीत्येतन्निवृत्ताश्वोपवेशयेत् ॥

अमावेऽअपो वा । ॐ भूः सावित्रीं प्रविशामि ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं ॐ भुवः सावित्रीं प्रविशामि ॐ भर्गो देवस्य धीमहि ॐ स्वः सावित्रीं प्रविशामि ॐ धियो यो नः प्रचोदयात् । इति पच्छोऽर्धर्चशः समस्तया वा । ॐ भूर्भुवः स्वः सावित्रीं प्रविशामि ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् । इत्यात्मानमात्मनाऽऽश्रमादाश्रममनुनीय ब्रह्मीभूतो भवतीति विज्ञायते । तत्तथाऽग्निमुपसमाधाय समित्पूर्वाम् ॐ स्वाहेति पूर्णाहुतिं जुहुयात् । तेन ब्रह्मन्वाधानमिति विज्ञायते । अनाहिताग्नेरिष्टिस्थाने वैश्वानरश्चरुः ।

१ ख. ग. घ. अनभिरमिमुत्पाद्य नि० । २ क. 'मस्ता वा । ३ ख. ग. घ. ब्रह्मभू' । ४ ख. ग. 'धायान्वाधाय स' ।

अनग्रेश्वाग्निवर्जं तु ब्रह्मचारिण इष्यते ।

तथाऽग्नीन्समारोप्य गुरवे सर्वस्वं दत्त्वा ॐ भूर्भुवः स्वः संन्यस्तं मया, इति त्रिरुपांशु त्रिरुच्चैस्त्रिंशत्या हि देवा इति विज्ञायते । तथा च कात्यायनः—

पञ्चायुधधरं सौम्यं सर्वाभरणभूषितम् ।

ध्यात्वा हृदि त्वनुज्ञातो गुरुणा प्रैषमीरयेत् ॥

ततोऽमन्त इति वाऽपां पूर्णमञ्जलिं निनयति । सखे मां गोपायेति दण्डं गृह्णाति । पदस्य पारे रजस इति शिष्यम् । येन देवाः पवित्रेणेति जलपवित्रम् । सावित्र्या कमण्डलुम् । सर्वाभिव्याहृतिभिर्ब्रह्मभाजनम् । तत उदुत्यं चित्रं तच्चक्षुर्हंसः शुचिषन्नमो मित्रस्येति ।

नमः सवित्रे जगदेकचक्षुषे जगत्प्रसूतिस्थितिनाशहेतवे ।

त्रयीमयाय त्रिगुणात्मधारिणे विरञ्चिनारायणशंकरात्मने ॥

इत्यादित्यमुपतिष्ठेत् । तथा च व्यासः—

कटिप्रक्षालनं कृत्वा प्रणवेन मुदा बहिः ।

ततः स्नानं प्रकुर्वीत मन्त्रवत्तु जलाशये ॥

तिसृष्वपि च संध्यास्वञ्जलीन्प्रदाय, ॐ भूस्तर्पयामि । ॐ भुवस्तर्पयामि । ॐ स्वस्तर्पयामि । ॐ भूर्भुवःस्वस्तर्पयामि । इति तर्पणं कुर्यात् । अथोदिते भानौ ॐ भूर्भुवःस्वरित्यञ्जलिं प्रदाय उदुत्यं चित्रं तच्चक्षुर्हंसः शुचिषदिदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा त्रिदिवो ब्रह्मजज्ञानमित्यादित्यमुपतिष्ठते । सर्वभूतेभ्यो नम इत्यात्मानं प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कुर्यात् । ॐ आदित्याय विद्महे सहस्राक्षाय धीमहि । तन्नः सूर्यः प्रचोदयात् । इति त्रिर्जपेन्निकालम् । अथ भिक्षिष्यन्नुद्वयं तमसस्परीति चतसृभिरादित्यमुपस्थाय मौनी भूत्वा पञ्चागारं सप्तागारं वा प्रविशेत् । ततः पूर्णमसि पूर्णं मे भूयादिति जपित्वा पुनरावर्तते । शुचौ देशे शुचिर्भूत्वा चतुरः पिण्डान्निर्वपेत् । ॐ भूःस्वधा नमः । ॐ भुवःस्वधा नमः । ॐ स्वःस्वधा नमः । इति सार्वभौतिकं चतुर्थम् । शेषं भुक्त्वा प्राणायामान्बुध्वाचरेत् । ब्रह्मभूयाय कल्पते । ब्रह्मभूयाय कल्पत इत्याह भगवान्बौधायनः ।

इति स्मृत्यर्थसारे संन्यासविधिः ।

अथ परिव्राजकस्य संस्कारविधिः—ग्रामात्प्राचीमुदीचीं वा गत्वा ब्रह्मवृक्ष-
स्याधस्तान्नदीतीरे वा शुचौ देशे वा दण्डप्रमाणं देवयजनं व्याह-
तिभिः खात्वा त्रिसप्तव्याहृतिभिः प्रोक्ष्य दर्भान्संस्तीर्यालंकृत्य शवं
निदधाति । श्वभ्रे विष्णो हव्यं रक्षस्वेति । इदं विष्णुर्विचक्रम इति दक्षि-
णहस्ते दण्डं निदधाति । यदस्य पारे रजस इति सव्यहस्ते शिष्यम् ।
येन देवाः पवित्रेणेति मुखे जलपवित्रम् । सावित्र्या उदरे ब्रह्मभाजनम् ।
भूमिर्भूमेति गुह्ये कमण्डलुम् । चित्तिः सुगिति दशहोत्रिभिरनुमन्त्रयते ।
नात्र शेषसंस्काराः पूर्वमनुष्ठितत्वात् ।

सर्वसंगनिवृत्तस्य ध्यानयोगरतस्य च ।

न तस्य दहनं कार्यं नाशौचं नोदकक्रिया ॥

अथ संन्यासिनां दहनविधिः—

भूमिभागे खाते—

संनिकृष्टैस्तु संन्यस्ते पितर्युपरते सुतैः ।

दहनं तस्य कर्तव्यं यच्चान्यच्छेषसंज्ञितम् ॥

तस्य समीपेऽग्निं प्रज्वालय यतेर्दक्षिणहस्ते उपावरोहेत्यवरोह्य तस्याग्निं
पुत्राः पितृविधानतः, अग्निहोत्रविधानेन सावित्र्या प्रणवेन वा दहेत् ।
यतीन्दहन्स्पृशन्वाऽपि जलावगाहनादेव सद्यः शुध्येत् । प्राप्नोत्यश्व-
मेधफलम् ।

अहन्येकादशे प्राप्ते पार्वणं तु विधीयते ।

एकोद्दिष्टं न कुर्वीत त्रिदण्डानां कदाचन ॥

सपिण्डीकरणं तेषां न कर्तव्यं सुतेन तु ।

त्रिदण्डधारणात्पैत्यं नष्टमाहोशना मुनिः ॥

कुटीचरं संप्रदहेत्पूरयेच्च बहूदकम् ।

हंसो जले विनिक्षेप्यः परहंसं प्रपूरयेत् ॥

इत्याह भगवान्बौधायनः ।

इति स्मृत्यर्थसारेऽशौचप्रकरणम् ।

कामधेनौ प्रदीप्तेऽब्धा कल्पवृक्षलतादिषु ।

शंभुद्रविडकेदारलोलटाद्यैश्च भाषितम् ॥

मन्वत्रियाज्ञवल्क्यादिव्याख्यातुप्रतिपादितम् ।

स्मृत्यर्थसारं वक्ष्यामि सुखानुष्ठानसिद्धये ॥

अथ प्रायश्चित्तान्युच्यन्ते—तत्र पापानामचीर्णप्रायश्चित्तानां नरकभोगान्ते कर्मविपाका उच्यन्ते । अज्ञानाद्ब्रह्महो क्रमात्सृगालश्वसूकरोष्णाणां योनिं याति । सुरापः खरपुल्कसवेनानां नागपक्षिचाण्डालपुल्कसानां योनिं सुवर्णस्तेयी विट्ब्राह्म कृमिकीटपतङ्गत्वम् । गुरुतल्पगस्तृणगुल्मलतात्वं क्रमाद्याति । ज्ञानाद्ब्रह्महा श्वसूकरखरोष्ट्रगोजाविमृगपक्षिचाण्डालपुल्कसानां योनिं याति । सुरापो विट्कृमिपतङ्गपक्षिहिंस्रसत्त्वानाम् । सुवर्णस्तेयी ऊर्णनाभिकृकलासतिरश्चामम्बुचारिणां हिंसाणां पिशाचानां च सहस्रशो योनिं याति । गुरुतल्पगस्तृणगुल्मलतानां क्रव्यादानां क्रूरकर्मणां च शतशो योनिं याति । तत्संसर्गी च तद्वत् । ततो मनुष्यजन्मनि ब्रह्महा क्षयरोगी । सुरापो निजकृष्णदन्तः । सुवर्णस्तेयी कुनखी । गुरुतल्पगः कुष्ठी । तत्संयोगी च तद्वत् । परस्त्रियं द्रव्यं च हत्वाऽरण्ये निर्जले देशे ब्रह्मराक्षसः स्यात् । अनध्यायेऽध्यायी सृगालो बहुप्रतिग्राही च । अन्नं रत्नं वा हत्वाऽजीर्णव्याधिरत्यन्तदरिद्रो वा । ज्ञानवेदवाचकपुस्तकहारी मूकः । पत्रशाकं मयूरः । रत्नानि हेमकारी पश्यत्यन्तदरिद्रो वा । न्यासमनपत्यो दरिद्रो वा । शुभगन्धाञ्छुच्छुन्दरी । छुच्छुन्दरी राजमूषिका । धान्यं मूषकः । तैलं तैलपायी पक्षी । परस्वं हत्वा नानातिर्यग्जातिः स्यात् । हुतं हविरश्चञ्छ्वाऽतिदुःखी च । यानं हरच्छुष्ट्रः । फलं कपिः । जलं जलप्लवः पतङ्गो वा पक्षी मत्स्यो वा । क्षीरं काको बको वा । गृहोपस्करं गृहहारी कीटः । मधु हरन्दंशः कीटः । मांसं गृध्रः । गां गोधा सर्पो वा । अग्निं बकः । वस्त्रं कुष्ठी पतङ्गो वा । रसांश्च लवणचारी कीटः । तैजसं मण्डली । गोदेवब्राह्मणस्वं पाण्डुरोगी । न्यासं काणोऽनपत्यो वा । शय्यां क्षपणकः । शङ्खं शुक्तिं हरन्कपाली । दीपं कौशिकः । स्नेहं क्षयी । परस्वं परप्रेष्यः । यद्यदपहरन्ति तत्प्रकाराः प्राणिनो जायन्ते तत्साध्यविकला वा । ब्राह्मणीं गच्छन्निर्बीजः । मातरं सुषां वा गच्छन्वातवृषणः । चण्डालीं

१ ख. ग. पापिना° । २ ख. ग. °न्ते ये ये क° । ३ ख. ग. °काः स्युस्त उ° । ४ ख. ग. °हा मृगश्च° । ५ ख. ग. ज्ञानं देवं पुस्तकं वाचं च मूकः । ६ ख. ग. °यी कीटः । ७ ख. ग. °हकारी° । ८ ख. ग. °न्कपिः । ९ ख. ग. वाऽजातवृ° ।

पुल्कसीं वाऽजगरः । प्रव्रजितां नरः पिशाचः । शूद्रीं दीर्घकीटः ।
 सवर्णां दरिद्रः । राजस्त्रियं नपुंसकः । गां गच्छन्मण्डूकः । धान्यमिश्र-
 कोऽतिरिक्ताङ्गः । पिशुनो दुर्गन्धि(न्ध)नासिकः । सूचको दुर्गन्धास्यः ।
 देवब्राह्मणक्रोशकः स्खलद्वाक् । गरदाग्निदाबुन्मत्तौ । गुरुप्रतिकूलोऽप-
 स्मारी । गोघ्नश्चान्धः । धर्मपत्नीमुत्सृज्यान्यत्र प्रवृत्तः शब्दवेधी प्राणी
 गुल्मी वा । मधुकुण्डाशी मधुभक्ष्यः । स्त्रीपण्यजीवी षण्ढः । कौमार-
 दारत्यागी दुर्मगः । मृष्टैकाशी वानरो वातगुल्मी वा । अभक्ष्य-
 भक्षको गण्डमाली । क्रूरकर्मा वामनः । मित्रधुक्क्षयी । माता-
 पित्रोराक्रोशी षण्ढाकारः । अनृतवाक्संचलितवाक् । कूटसाक्ष्यु-
 च्छिन्नजङ्घाचरणः । विवाहविघ्नकर्ता छिन्नोष्ठः । अवगोरणे छिन्न-
 हस्तः । चतुष्पथे विण्मूत्रविसर्गे मूत्रकुच्छी । कन्यादूषकः षण्ढः ।
 ईर्ष्यालुर्मशकः । पित्रा विवदमानोऽपस्मारी । विद्याविक्रयी पुरुषमृगः ।
 वेदविक्रयी द्वीपी । बहुयाचको जलप्लवः । अयाज्ययाजको वराहः ।
 अनिमन्त्रितभोजी वायसः । यतस्ततोऽश्नन्मार्जारः । कक्षवनदाही
 खद्योतः । अदत्तादायी बलीवर्दः । दारकाचार्यो मुखविगन्धः । पर्युषि-
 ताशी कृमिः । मत्सरी भ्रमरः । अग्न्युत्सादी मण्डलकुष्ठी । शूद्राचार्यः
 श्वपाकः । वार्धुषिकोऽङ्गहीनः । अविक्रयविक्रयी गृध्रः । राजाक्रो-
 शको गर्दभः । अनध्यायेऽध्यायी शृगालः । मत्स्यवधे गर्भवासी ।
 इत्यादीन्यनूर्ध्वगसमानि स्त्रियोऽप्येतेषु निमित्तेषु तज्जातिषु स्त्रियो
 जायन्ते । ईदानींतनपापिनां प्रायश्चित्तोन्मुखत्वार्थं पूर्वजन्मकर्मविपाका
 दर्शिताः ।

अथ महापातकिनः—ब्रह्महा सुरापो ब्राह्मणसुवर्णस्तेयी गुरुतल्पग एते
 महापातकिनः । अब्दं तत्संसर्गी पञ्चमश्च तद्वत्साक्षात्कर्तुरनुग्राहक
 आज्ञापयितोपदेष्टा च । आज्ञापयिताऽभ्यर्थयिता । उपदेष्टा प्रयोज-
 यिता स्वार्थं परार्थं च ।

(* आक्रुष्टस्ताडितो वाऽपि धनैर्वा विप्रयोजितः ।
 यमुद्दिश्य त्यजेत्प्राणान्ब्रह्महा स निगद्यते ॥)

* धनुश्चिह्नान्तर्गतश्लोकः क. पुस्तके वर्तते ।

१ ग. 'न्यश्रमिको । २ ख. ग. 'वा । कुण्डाशी भगभक्ष्यः । ३ ख. ग. 'क् स्खलद्वाक् ।
 ४ ख. ग. 'याजको । ५ ख. ग. एवं तत्तत्पापि । ६ ख. ग. 'यिताऽभ्यर्थयितोप' ।

अनुमन्ता सनिमित्तं मर्त्सनताडनार्थहरणादिना कोपं जनयन्निमित्त-
कर्ता । तत्कर्तृषु साक्षात्कर्तुरनुग्राहकस्याल्पदोषः । तस्मात्प्रयोजकस्य ।
तस्माच्चोपदेष्टुः । तस्मात्प्रयोजकानुमन्तुः । तस्मान्निमित्तकर्तुरल्पदोषः
प्रायश्चित्तं च तद्वत् ।

अथानुपातकानि—तत्र ब्रह्महत्यासमानि यागस्थनृपवैश्ययोर्वधः । शरणा-
गतस्य च । रजस्वलाया गर्भिण्याश्चानत्रिगोत्रायाश्चाविज्ञातगर्भस्य
सुहृन्मात्रस्य च वधः । गुरुविप्रविषयेऽज्ञानान्मिथ्यामिश्रंसनं क्रोधो-
त्पादनम् । अधिकेषोऽसकृन्मिथ्यानिर्वन्धश्च । राजगामि पैशुन्यम् ।
गुरौ महाद्वेषः । नास्तिक्याद्वेदनिन्दोऽशास्त्राभ्यासाद्वेदनाशश्च ।

अथ सुरापानसमानि—लशुनविड्वराहच्छत्राकग्रामकुक्कुटपलाण्डुगृञ्ज-
नादीनां मत्या भक्षणम् । गुरुविषये मिथ्यामिश्रंसनेनान्यथावादित्वम-
न्यथाकर्तृत्वं च । जैह्वस्यं कौटिल्यं च तद्वत् । आत्मोत्कर्षार्थं राजकुला-
दावनृतोक्तिरुदक्यावक्त्रास्वादो मित्रवधः कूटसाक्ष्यम् । वेदत्यागो वेद-
निन्दा । तयोरन्नस्य भुक्तिः ।

अथ सुवर्णस्तेयसमानि—ब्राह्मणसंबन्धश्चरत्नमनुष्यस्त्रीभूधेनुहरणम् ।
निक्षेपस्य चार्वाक्सुवर्णमानात् ।

अथ गुरुतल्यगसमानि—स्नुषाभगिनीचण्डालीसखिभार्योत्तमजातिकन्यासु-
रेतःसेकः । तथा पितृव्वसारं मातृव्वसारं मातुलानीं मातुः सपत्नीं
स्नुषाभगिन्यौ सकामे आचार्यपत्नीं तनयां स्वसृपितृव्यमातामहमातुल-
श्रोत्रिर्यात्विगुरूपाध्यायशिष्यस्त्रियमुत्तमामुदक्यां निक्षिप्तां प्रव्रजितां
व्रतस्थामुत्तमां ब्राह्मणीं सगोत्रां शरणागतां मातुः सखीं राजपत्नीं
स्तन्यधात्रीमन्यमातरं मातृव्वसुः सखीं मातुलानीसखीं गच्छन्गुरुतल्प-
गवत्सद्यः पतति । तथा पितृमातृयोनिसंबन्धां गच्छन् । स्तेनना-
स्तिकानिन्दितकर्मत्यागिनिन्दितकर्मात्यागिपतितात्याग्यपतितत्यागिनः
पतिताः पातकसंयोजकाश्चेत्यनुपातकानि ।

अथोपपातकानि—

तत्र याज्ञयल्क्यः—

गोवधो ब्राह्म्यता स्तेयमुणानां चानपक्रिया ।

अनाहिताग्निता पण्यविक्रयः परिवेदनम् ॥

१ क. °श्चात्रि° । २ ख. ग. °रुविषयेऽज्ञाता ज्ञातमि° । ३ ख. ग. °न्दाकुशास्त्रीयस्वातन्त्र्या-
वेदनाशश्च । ४ ख. ग. °तितपाकसंयो° ।

भृतादध्ययनादानं भृतकाध्यापनं तथा ।
 पारदार्यं पारिवित्त्यं वार्धुष्यं लवणक्रिया ॥
 स्त्रीशूद्रविद्वक्षत्रवधो निन्दितार्थोपजीवनम् ।
 नास्तिक्यं व्रतलोपश्च सुतानां चैव विक्रयः ॥
 धान्यकुप्यपशुस्तेयमयाज्यानां च याजनम् ।
 पितृमातृसुतत्यागस्तडागारामविक्रयः ॥
 कन्यासंदूषणं चैवं कौटिल्यं व्रतलोपनम् ।
 आत्मनोऽर्थे क्रियारम्भो मद्यपस्त्रीनिषेवणम् ॥
 स्वाध्यायाग्निसुतत्यागो बान्धवत्याग एव च ।
 इन्धनार्थं द्रुमच्छेदः स्त्रीहिंसौषधिजीवनम् ॥
 हिंस्रयन्त्रविधानं च व्यसनान्यात्मविक्रयः ।
 शूद्रप्रेष्यं हीनसख्यं हीनयोनिनिषेवणम् ॥
 तथैवानाश्रमे वासः परान्नपरिपुष्टता ।
 असच्छास्त्राभिगमनमाकरेष्वधिकारिता ॥
 भार्यायाः विक्रयश्चैषामेकैकमुपपातकम् ।

गोवधो गोपिण्डव्यापादनम् । कालेऽनुपनीतत्वं व्रात्यता । ब्राह्मण-
 सुवर्णं तत्समादर्वाक्परस्वहारणं स्तेयम् । गृहीतस्य सुवर्णादेरप्रदानमु-
 णानपाकरणं देवर्षिपितृणामुणानपाकरणं च । सत्यप्यधिकारेऽनाहिता-
 ग्नित्वम् । अपण्यस्य लवणादेर्विक्रयः । सोदरे ज्येष्ठे भ्रातरि स्थिते कनि-
 ष्ठस्य दाराग्निहोत्रग्रहणं परिवेदनम् । पणपूर्वाध्ययनं भृताध्ययनम् ।
 गुरुतर्लपव्यतिरिक्ततत्समस्त्रीगमनं पारदार्यम् । कनिष्ठस्य विवाहे ज्येष्ठ-
 स्य विवाहराहित्यं पारिवित्त्यम् । निषिद्धवृद्धयुपजीवित्वं वार्धुष्यम् ।
 लवणस्योत्पादनं लवणक्रिया । अनात्रेय्या अगर्भिण्या अपि स्त्रिया वधः ।
 शूद्रवधः । अदीक्षितक्षत्रियवधो वैश्यवधश्च । अराजस्थापितार्थोपजी-
 वनम् । परलोकाभावबुद्धिर्नास्तिक्यम् । ब्रह्मचारिणः स्त्रीसंयोगो व्रत-
 लोपे देवताराधनार्थं गृहीतव्रतलोपश्च । अपत्यानां विक्रयो दासीमां-
 वार्थं तडागारामोपवनादेश्च विक्रयो द्रव्यग्रहणेन ब्रीह्यादिद्रव्याणामाह-
 रणं स्तेयमसारत्रपुसीसादिकुप्यस्य च । गवादेः पशोश्च । जातिदुष्टशूद्रा-

१ ख. ग. °व परिनिन्द्याजनम् । कन्याप्रदानं तस्यैव कौ° । २ ख. ग. °लपतत्समव्यति-
 रिक्तप° । ३ क. घ. आत्रेय्या । ४ ख. ग. °भावार्थमात्मनोभार्यायाश्च त° ।

दीनां याजनं कर्मदुष्टवात्यादीनां च याजनम् । भोजनं चोभयत्र । अप-
तितपितृमातृसुतानां गृहनिर्गमस्त्यागः । अङ्गुल्यादिना योनिविदारणं
कन्यादूषणम् । परिवेदकयाजनं तस्मै कन्याप्रदानं च । अगुरौ कौटि-
ल्यम् । आत्मार्थं पाकादिक्रियारम्भो मद्यपायाः स्त्रियाश्चोपभोगः ।
कुटुम्बरक्षणार्थमसच्छास्त्राधिगमार्थं चाधीतस्वाध्यायत्यागः । श्रौतस्मा-
र्ताग्नीनां च संस्काराद्यकरणेन सुतस्य च शक्तौ बान्धवानां च त्यागः ।
पाकादिदृष्टकार्यार्थमार्द्रद्रुमाणां च च्छेदः । भार्यां पण्यभावेन प्रयोज्य
तल्लब्धोपजीवनं स्त्रीजीवनं स्त्रीधनोपजीवनं वा । प्राणिवधेन जीवनम् ।
वश्याद्यर्थौषधिजीवनम् । तिलेक्ष्वादिपिण्डार्थं हिंस्रयन्त्रप्रवर्तनं महायन्त्र-
प्रवर्तनं वा । व्यसनानि मृगयादीन्यष्टादश । आत्मविक्रय आत्मनो
भार्यायाश्च विक्रयः । शूद्रप्रेष्यं शूद्रसेवा । हीनेषु मैत्रं हीनसख्यम् ।
अकृतसवर्णविवाहेश्च हीनवर्णविवाहो हीनयोनिनिषेवणं साधारणस्त्री-
संभोगश्च । अगृहीताश्रमित्वमनाश्रमित्वम् । परपाकरतित्वं परान्नपुष्टता ।
चार्वाकादिग्रन्थाभ्यासोऽसच्छास्त्राधिगमः । सुवर्णाद्युत्पत्तिस्थानेषु
राजाज्ञयाऽधिकारित्वमाकरेण्वधिकारित्वमभिचारश्च । लशुनादेर्मत्या
भक्षणमित्यादीन्युपपातकानि ।

अथ जातिभ्रंशकरसंज्ञकानि—

ब्राह्मणस्य रुजः कृत्यं घ्रातिरग्रेयमद्ययोः ।

जैहृम्यं पुंसि च मैथुन्यं जातिभ्रंशकरं हि तत् ॥

अथ संस्कीरणानि—खरोष्ट्रमृगहस्त्यजाविमीनाहिमहिषाणामन्येषां
ग्राम्यारण्यानां पशूनां वधः ।

अथापात्रीकरणानि—निन्दितेभ्यो धनादानं वाणिज्यं शूद्रसेवनम् ।
कुसीदजीवनमसत्यभाषणं च ।

अथ मलिनीकरणानि—बहुकृमिकीटजलस्थजलजवयोहत्या । मद्यानुग-
तभोजनम् । बहुफलेन्धनपुष्पस्तेयमधैर्यं च । अतोऽन्यानि पापानि
प्रकीर्णसंज्ञानि ।

अथ महापातकप्रायश्चित्तम्—अज्ञानाद्ब्राह्मणं हत्वा बालवल्कलचीरादि-
वासा जटी वापितो वा स्वेन हतब्राह्मणस्य शिरःकपालं चिह्नार्थं । तद-
भावेऽन्यस्य वा तदन्यदेव शिरःकपालं ध्वजदण्डौ धारयन्वन्यैरन्नाद्यै-
रेकवारं पात्रमात्रादिषु मिताशी संयतात्मा त्रिकालस्नायी संध्या-

मुपासनं च विधिवन्मन्त्रपूर्वं च कुर्वन्नध्ययनाध्यापनव्याख्याप्रवच-
नयाजनदानप्रतिग्रहादि वर्जयन्ब्रह्मचारी स्त्रीमधुमांसगन्धमाल्यादि-
दिवानिद्राञ्जनाभ्यञ्जनोपानच्छत्रकामक्रोधलोभमोहहर्षशोकविषादादि-
नृत्यगीतपरिवादादि वर्जयन्सर्वभूतहित आर्यभुवं यथोपक्रमस्थाना-
सनाभ्यां विहरंस्तीर्थान्यनुवसन्वने वा पुण्याश्रमे वा कुटीं कृत्वा
निवसन्ग्रामान्ते गोव्रजे वा वृक्षमूले वा द्वादशाब्दमेवं व्रतं चरित्वा
शुद्धः । यदि वन्यैर्न जीवति तदा भिक्षार्थं ग्रामं प्रविशेत् । तत्र लोहि-
तकेन मृन्मयखण्डेन शरावेण वा गृहद्वारि स्थित्वा ब्रह्महाऽस्मीति
स्वपापं प्रख्याप्य सप्तागाराणि मृष्टामृष्टाविवेकेन चातुर्वर्ण्यं वा भैक्ष्यं
याचयित्वैककालमेव मिताशी द्वादशाब्दं व्रतं चरित्वा शुद्धः । यद्वा
द्वादशाब्दं नियतः प्राजापत्यं कृच्छ्रं निरन्तरमावर्त्य षष्ठ्यधिकं त्रिशतं
चरित्वा शुध्यति । द्वितीये ब्रह्मवधे द्विगुणम् । तृतीये त्रिगुणम् ।
चतुर्थे न निष्कृतिः । यद्वा चतुर्थादिषु प्रतिपापेषु गोसहस्रम् । निर्ध-
नोऽग्निं प्रविशेत् । यद्वा पूर्वोक्तं भिक्षाचर्याकृच्छ्राचरणादि व्रतं याव-
न्मरणं कुर्यात्तेन शुध्यति । (* तत्र बुद्धिपूर्वं साक्षादकर्तुर्बुद्धिपूर्वकम-
नुग्राहकप्रयोजकानुमन्तृनिमित्तकर्तृप्रोत्साहकादीनां ब्रह्महत्यासमानम-
र्धमर्धं तस्याप्यर्धमित्याद्यूह्यम् । यद्वा बुद्धिपूर्वमबुद्धिपूर्वं वा साक्षा-
त्कर्तुर्नुग्राहकः पादोनं चरित्वा शुध्यति । प्रयोजकस्य तदर्धमनु-
मन्ता सार्धं पादं चरेत् । निमित्तकर्तुः पादम् । प्रोत्साहकादीनां तार-
तम्यविभागात्कल्प्यम् । यदि निर्निमित्तं भर्त्सको गुणवान्मस्त्यो निर्गुणो
मृतस्तदा त्वेकाब्दं व्रतं चरेत् । तदाऽपि मुख्यकर्तृणां ये त्वनुग्राहकाद-
यस्तेषां तारतम्यात्कल्प्यम् । तथा दण्डोऽपि प्रोत्साहकाश्रयदानुमोदका-
दीनां यथायोगं कल्प्यः । ऊनषोडशाब्दबालानामशीत्यधिकवृद्धानां
च स्त्रीणां रोगिणां च सर्वप्रायश्चित्तम् । यद्वा द्वादशाब्दादवागशीते-
रुर्ध्वं तु पादमेव । ऊनैकादशाब्दान्तानां पुंसामर्धम् । स्त्रीणां पादमा-
त्रमेव । अनुपनीतानां बालानां तु पादमेव प्रायश्चित्तं पिता भ्राता
तत्समोऽन्यो वा सुहृत्सर्वं कल्पोक्तप्रायश्चित्तं चरेत् । ततः परमाषो-
डशाब्दादन्ये वा चरेयुः) ततः परमशीतिवर्षान्तं स्वयमेवाऽऽचरेयुः ।
गुरुप्रायश्चित्ते प्रायश्चित्तान्तराभावे प्रसङ्गादनुष्ठानसिद्धिः । सोमयाग-
स्थब्राह्मणवधे द्विगुणं व्रतम् । तदशक्तौ गवां सहस्रद्वयं विधिवत्पा-

त्रेभ्यो दद्यात् । आचार्यवधे द्वादशाब्दं व्रतं गोसहस्रं वा । उपाध्या-
येऽङ्गवत्करि चानूचानऋत्विग्वधे द्वादशाब्दव्रतादूर्ध्वं गोसहस्रं पादो-
नमर्धपादं चरेदित्याद्यूह्यं तारतम्यकल्पनया । तथा ऋत्विग्गुरुवधे याव-
जीवं व्रतं चरेत् । द्विगुणं त्रिगुणं चतुर्गुणं वा । तदशक्तौ व्रतं द्वाद-
शाब्दं कृत्वा गोसहस्रं च कुर्यात् । अथ यदि द्वादशाब्दं चरन्मध्ये
चोरव्याधैर्हन्यमानमेकं ब्राह्मणं गोद्वादशकं वाऽऽत्मानमन्तरा कृत्वा
रक्षेत् । असावसंपूर्णद्वादशाब्दोऽपि तदैव शुध्यति । यदि तत्र प्रवृत्तस्त-
दकृत्वैव श्रियेत तथाऽपि तदैव शुध्येत् । तथा पराश्वमेधादिमहायज्ञा-
वभृथे यजमानसंनिधौ वा स्वपापमृत्विजां प्रख्याप्य तैरनुज्ञातः स्नात्वा
तदैव शुध्यति । यद्वा व्रतमध्ये कुष्ठादिदीर्घतीव्रव्याधिग्रस्तं ब्राह्मणं गां
चौषधैः संरक्ष्य तदैव शुध्येत् । यद्वा व्रतमध्ये विप्रस्य भूधेन्वादि सर्वस्वं
चौरैर्हृतं सर्वं दत्त्वा शुध्येत् । तत्र प्रवृत्तस्तैर्हतो बहुक्षतो मृतकल्पो
जीवन्वाऽपि तदैव शुध्येत् । ज्ञात्वा ब्राह्मणवधे चतुर्वर्णा भृगुपतनम-
ग्निपतनं वा कुर्युः । तत्र ये त्रैवर्णिका इष्टप्रथमयज्ञास्तेऽग्निपतनं
स्वर्जितं गोसवमभिजिद्विजितौ त्रिवृदग्निष्टुतं वा क्रमेणाल्पदक्षिणं
कुर्युः । क्षत्रियः सार्वभौमश्चेदश्वमेधं कुर्यात् । यद्यज्ञानात्रैवर्णिकाः
साग्निका महापापं कुर्युस्तर्हि तत्पुत्रादयो ह्यादोषक्षयात्तदग्नीत्रक्षयेयुः ।
ज्ञानाच्चेद्ब्रह्माग्नीन्वेतानिकानप्सु प्रक्षिपेत्ततोऽग्निपतनादि प्रायश्चित्तं
कुर्वतां मरणे चैवं संपरिच्छदानाम् । विद्वांश्चेन्निर्धनो गुणी हन्ता
हतो निर्गुणोऽरण्ये नियतस्त्रिवारं वेदं जपेत् । शक्तश्चेद्वेदं जप-
न्योजनशतं व्रजेत् । अविद्वांश्चेन्निर्धनो गुणी प्लाक्षप्रस्रवणादौ पश्चि-
मोदधेः प्रतिस्रोतःसरस्वतीं हविष्यमिताशी गच्छेत् । निर्गुणो धनी
हन्ता चेत्पात्रे गृहभूम्यादि जीवनसमर्थं दद्यात् । गृहं वा सोपस्करं
जीवनसमर्थमनपत्यश्चेत्सर्वस्वम् । एतन्नयेऽन्यतमं गृहीत्वाऽऽहिताग्निर्वै-
श्वानरेष्टिमनाहिताग्निर्वैश्वानरस्थालीपाकं कुर्यात् । हन्ता मूर्खो निर्धनो
विप्रमात्रवधेऽधःशायी त्रिषवणी स्वकर्म वेदयन्मैक्षाशी महानदीस-
ङ्गमादिपुण्याश्रमगोष्ठपर्वतप्रस्रवणतपोवनविहारी स्थाने वीरासनी वत्सरं
कृत्स्नं चरित्वा रत्नहेमगोधान्यतिलदधिसर्पाणि विप्रेभ्यो दद्यात् ।
मनसा ब्रह्मवध्यव्यवसायं कृत्वा स्वयमेवोपरतो द्वादशाहं जलाशी
द्वादशाहमुपवसेदित्यादि । अन्यत्र समेषु विकल्पो विषमेषु व्यवस्था
कल्प्या । उक्तानि द्वादशाब्दादीनि ब्राह्मणस्यैव । द्विगुणं क्षत्रियस्य

त्रिगुणं वैश्यस्य । शूद्रादेश्वतुर्गुणम् । तत्रापि हन्तृहन्यमानगुणविशेषेण प्रायश्चित्तविशेषो ज्ञेयः । एवं क्षत्रियवैश्यादावपि । हीनोत्कृष्टवधे प्रायश्चित्ततारतम्यं दण्डगौरवात्कल्प्यम् । अनुलोमप्रतिलोमजानां तु दण्डवत्प्रायश्चित्तम् । गृहस्थाद्विगुणं ब्रह्मचारिणो वानप्रस्थस्य त्रिगुणं यतेश्वतुर्गुणम् । ब्रह्मचारिणो द्वैगुण्यं षोडशाब्दादूर्ध्वमेव । सर्वत्र प्रक्रान्तप्रायश्चित्तस्य मध्ये मरणे तदैव शुद्धिः ।

अथ निदेशः—सोमयागस्थक्षत्रवैश्यवधे ब्रह्महत्याव्रतं द्वादशाब्दं चरेत् । ज्ञानाद्वैगुण्यमेव न प्राणान्तिकम् । तत्र च जातिशक्तिगुणाद्यपेक्षया व्यवस्था । सर्वत्र स्त्रीनपुंसकत्वेनाविज्ञातगर्भस्य वधे, ऋतुमत्यात्रेय्यत्रिगोत्राचाऽऽत्रेयी तस्याश्च वधे पुरुषहत्यावद्यवहारे साक्षात्सत्योक्तौ वर्णानां वधप्राप्तौ साक्षित्वं गुरौ क्रोधावेशी च ब्राह्मणनिक्षेपं हत्वाऽऽहिताग्नि-ब्राह्मणभार्यां सगुणां सोमयागस्य विघातको ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् । आतिदेशिकेषु पादोनं प्रायश्चित्तम् । प्रायश्चित्तस्यातिदेशो न पातित्यस्य च । ब्राह्मणादिवधार्थं शस्त्रप्रहारे केनचित्प्रतिबन्धेनासौ न मृतस्तथाऽपि ब्रह्महत्यादिव्रतं पादोनं चरेदागमनेऽर्धम् । प्रयत्ने पादः । ब्रह्महत्यासमानार्थं प्रायश्चित्तं सर्वत्र साक्षात्कर्तुरनुग्राहकस्य पादोनं प्रयोजकस्यार्धमनुमन्तुः सार्धं पादं निमित्तकर्तुः पादं प्रोत्साहकादीनां च तारतम्यं विद्यात् । सर्वत्र बालवृद्धस्त्रियो रोगिणश्च साक्षात्कर्तृत्वेऽपि प्रायश्चित्तार्धमर्हन्ति । अशीतिवर्षादूर्ध्वं वृद्धः षोडशाब्दात्प्राग्बालः । अनुपनीतानां बालानां कन्यानां च पादं प्रायश्चित्तम् । तच्च पिता भ्राताऽन्यो वा सुहृच्चरेत् । ततो द्वादशाब्दान्त एवं चारयेयुः । ऊर्ध्वं स्वयमेव चरेयुः । सर्वत्र जातिशक्तिगुणाद्यपेक्षया व्यवस्था ।

इति स्मृत्यर्थसारे ब्रह्महत्याप्रायश्चित्तम् ।

अथ सुरापानप्रायश्चित्तम्—तत्र मुख्यसुरा पैष्ठी गौडी माध्वी च । तन्मध्ये सुरां त्रैवर्णिकस्तथा शूद्रा स्त्री च चातुर्वर्ण्यविवाह उत्पत्त्यादि न पिबेत् । यदि सुरां ज्ञानात्सकृत्पिबेत्सुराम्बुगोमूत्रक्षीरघृतानामन्यतममग्निसंनिभं कृत्वाऽऽर्द्रवासा लौहेन पात्रेणाऽऽयसेन तात्रेण वा पीत्वा मरणाच्छुध्येत् । अज्ञानाज्जलबुद्ध्या सुरापाने तालुमात्रसंयोगे जटी बालचीरादिवासा ब्रह्महत्याव्रतं तच्चिह्नवर्जं द्वादशाब्दं संपूर्णं कुर्यान्न

पादोनम् । सर्वत्र स्त्रीबालवृद्धानामर्थं षडब्दम् । अनुपनीतानां कन्यानां च पादं त्र्यब्दमेव कुर्यात् । ज्ञानाच्चेद्विगुणम् । यदि पीत्वा छर्देद्वा त्र्यब्दं रात्रौ सकृत्पिण्याकमेवाद्यान्नाश्रीयात् । सुरापाने तावन्मात्रसंयोगे वर्षं वा बालवासा जटी ध्वजी तथा कुर्यात् । सुरैकौषधरोगार्थं पाने त्वज्ञाने कृच्छ्राब्दपादं चान्द्रायणं वा कृत्वा पुनरुपनयनं च कार्यम् । बाल्ये तु तच्च माता भ्राता पिता वा कुर्यात् । ज्ञाने तु तप्तकृच्छ्रं पराकं चान्द्रायणं च क्रमात्कुर्यात् । सुरासंस्पृष्टशुष्करसान्नस्य मूत्रविद्धरेतःशवादीनां वा ज्ञानान्द्रक्षणे कार्यं पुनरुपनयनम् । शुष्कसुराभाण्डोदकपाने छर्दनमुपवासो घृतप्राशनं च । तज्जलं पर्युषितं पीत्वा शङ्खपुष्पीविपक्वक्षीरं त्र्यहं पिबेत् । अज्ञानाभ्यासे पञ्चरात्रं पिबेत् । ज्ञानात्तज्जलपाने सप्तरात्रं पिबेत् । ज्ञानाभ्यासे तु द्वादशरात्रं क्षीरेण ब्राह्मीसुवर्चलां पिबेत् । सुरापस्य मुखगन्धस्यामत्या घ्राणे सोमपश्चेदप्सु त्रीन्प्राणायामान्कृत्वा घृतं प्राश्रीयात् । मत्या चेद्विगुणं सर्वत्र । असोमपश्चेदनप्सु प्राणायामान्कृत्वोक्तं प्राश्रीयात्कुशोदकं चाऽऽहुः । साक्षात्सुरागन्धघ्रातौ तु जातिभ्रंशकरेषूक्तं सातपनम् । मत्या चेत्कार्यं ज्ञेयमित्यादि ।

इति स्मृत्यर्थसारे सुरापानप्रायश्चित्तम् ।

अथ मद्यपानप्रायश्चित्तम्—तत्र गोडी माध्वी च सुरा मद्यम् । तालं पानसं द्राक्षं माधुकं खार्जूरं सैरमारिष्टं मैरेयं नालिकेरजमेतान्येकादश मद्यानि विद्यात् । एतानि मद्यान्युत्पत्त्यादि ब्राह्मणानां तत्स्त्रीणां चानुपनीतानां कन्यायाश्चापेयानि । क्षत्रवैश्ययोर्न दुष्यति मद्यम् । अज्ञानाज्जलादिवुद्ध्या तालादिमद्यपाने तप्तकृच्छ्रं पुनरुपनयनं च । मूत्रविद्धेतः-स्त्रावादिभक्ष्ये द्विजानां चैवम् । अज्ञानाद्गौडीमाध्व्योर्ज्ञानात्तालादिमद्यपाने च कृच्छ्रातिकृच्छ्रचान्द्रायणानि कृत्वा पुनरुपनयनं घृतप्राशनं च । गौडीमाध्व्योर्ज्ञानात्पाने तु पिण्याकेन कणैर्वा त्रैवार्षिकम् । अभ्यासे षडब्दम् । अत्यन्ताभ्यासे निरन्तराभ्यासे च द्वादशाब्दम् । बहुकालाभ्यासे चाग्निवर्णं मद्यं पीत्वा मृतः शुध्येत् । तालादिषु तदर्थं कल्प्यम् । सर्वत्र स्त्रीबालवृद्धादीनामर्थम् । अनुपनीतस्य कन्यायाश्च पादं माता

१ ग. °त् । कणान्वा तथैवाद्यात् । सु० । २ ख. ग. अज्ञाने । ३ ख. ग. °ष्टपानं सार्द्धभक्षणं चार्द्धं सुराभाण्डोदकादिपानं च सुरापानमेव । सुरासंस्पृष्टशुष्कं । ४ क. °तः श्रुवा० ।

पिता भ्राता वा कुर्यात् । तालादिमद्यापेक्षया लेह्याभक्ष्यमूत्रविद्धेतः-
 सावादीनां मुखमात्रप्रवेशे क्षीरौदुम्बरबिल्वपालाशकुशोदकं षड्रात्रं
 पिबेत् । गौडीमाध्योस्तु द्विगुणम् । अज्ञानाद्गौडीमाध्वीमद्यवासितशु-
 ष्कभाण्डाम्बुपाने कुशमूलविषकं क्षीरं त्र्यहं पिबेत् । ज्ञानतोऽभ्यासे तु
 क्षीरौदुम्बरबिल्वपालाशैरुग्रहम् । अज्ञानाभ्यासे शङ्खपुष्पीघृतं क्षीरं च
 पञ्चरात्रं पिबेत् । ज्ञानतोऽभ्यासे तु गोमूत्रयावकं सप्तरात्रं पिबेत् ।
 अत्यन्ताभ्यासे तु ब्राह्मीं सुवर्चलां पयसा द्वादशरात्रम् । तालादिमद्य-
 भाण्डोदकपाने त्वर्धं कल्प्यम् । सर्वत्र स्त्रीबालादीनां योग्यं कल्प्यम् ।

इति स्मृत्यर्थसारे मद्यपानप्रायश्चित्तम् ।

अथ सुवर्णस्तेयप्रायश्चित्तमुच्यते—स्तेयशब्देन समक्षं परोक्षं वा बलाच्चौ-
 र्येण वा क्रयादिस्वत्वहेतुत्वं विना ग्रहणमुच्यते । तत्राऽऽदौ सुवर्णप्रमाणं
 निरूप्यते । गवाक्षगतसूर्यरश्मिमध्ये दृश्यमानं त्रसरेणुप्रमाणं रज इत्या-
 चक्षते । त्रसरेणुषट्कं तु लिक्षा । लिक्षात्रयं राजसर्षपः । राज-
 सर्षपत्रयं गौरसर्षपः । गौरसर्षपषट्कं यवः । यवत्रयं कृष्णलः ।
 कृष्णलपञ्चकं माषः । षोडशमाषकं सुवर्णम् । अमत्या ब्राह्मणस्य सुवर्णं
 हत्वा द्वादश वर्षाणि ब्रह्महत्याव्रतं शवशिरोध्वजतत्कपालधारणरहितं
 चरेत् । यस्य कस्यापि हिरण्यं यः कश्चिद्धरति स तस्यैकादशगुणं दत्त्वा
 प्रायश्चित्तं समाचरेत् । गुरुणां यज्ञकर्तृणां वा श्रोत्रियाणां वा धार्मि-
 कब्राह्मणानां वा सुवर्णं हत्वाऽऽत्मनो मुण्डनं कृत्वाऽऽत्मशरीरं घृतेना-
 भ्यज्य कारीषाच्छादितो दग्धः शुध्येत् । निर्गुणविप्रसुवर्णहरणे नवा-
 व्दमीदृशमेव चरेत् । क्षामबहुकुटुम्बरक्षणार्थं हरणे कृच्छ्रं षडब्दं विश्व-
 जिदादिकं क्रतुं वा कुर्यात् । मत्या यः कश्चिद्ब्राह्मणसुवर्णहार्येकसुवर्ण-
 मारभ्य स्वपापं भूपाय निवेद्याऽऽयसं दण्डं खादिरं वा प्रदाय मुक्त-
 केशो भृशं राज्ञा दण्डेन ताडितो मृतो वा जीवन्वा शुध्येत् । स्वश-
 क्त्याऽताडने राज्ञस्तु दोषः स्यात् । सुवर्णस्तेयी ब्राह्मणो व्रतमेव चरेन्न
 दण्डेनाऽऽत्मानं घातयेत् । न च विप्रं राजा हन्यात् । हनने ब्रह्महत्या
 भवत्येव । अग्निहोत्री धार्मिकश्च विद्वान् क्षत्रियो ब्राह्मणसुवर्णहार्य-
 श्वमेधेन शुध्यति । गोसवं यज्ञं वा कृत्वा शुध्येत् । आत्मसंमितं हेम
 वा दत्त्वा शुध्येत् । तावद्धनाभावे तपस्यशक्तौ च विप्रस्य सकुटुम्बस्य

रक्षणपर्याप्तं धनं दद्यात् । अब्राह्मणश्चेद्ब्राह्मणसुवर्णस्तेयी दण्डताड-
नेनाऽऽत्ममरणमनिच्छन्सुरापानव्रतं कृत्वा शुध्येत् । यदा त्वपहारानन्तरं
जातानुतापः प्रत्यर्पयति त्यजति वा तत्राऽऽपस्तम्बोक्तं चतुर्थकालमिता-
शनं त्र्यब्दम् । मनसा सुवर्णस्तेये प्रवृत्तः स्वयमेवोपरतश्चेद्द्वादशाहं वायु-
भक्षः शुध्येत् । सुवर्णस्तेयसमेष्वश्वरत्नमनुष्यस्त्रीभूधेनुहरणादिषु सुव-
र्णस्तेयप्रायश्चित्तार्थं कार्यम् । त्रसरेणुप्रमाणस्तेय एकप्राणायामः ।
लिक्षाप्रमाणहेमस्तेये त्रयः । राजसर्षपप्रमाणहेमस्तेये चत्वारः षड् वा
प्राणायामाः । गौरसर्षपप्रमाणस्तेयेऽष्टसहस्रगायत्रीजपः । यवप्रमाण-
हेमस्तेये प्रातरारभ्य सायंकालान्तं गायत्रीजपः । कृष्णलप्रमाणहेमस्तेये
सांतपनम् । माषप्रमाणहेमस्तेये गोमूत्रपक्वयवभुङ्क्मासत्रयेण शुध्येत् ।
सुवर्णप्रमाणाकिञ्चिन्न्यूनहेमस्तेये गोमूत्रपक्वयवभुगब्देन शुध्येत् । संपू-
र्णप्रमाणब्राह्मणहेमस्तेये द्वादशाब्दव्रतादिकं कार्यमित्युक्तम् । सुव-
र्णप्रमाणन्यूनरजतस्तेये सांतपनम् । निष्कचतुष्कप्रमाणादूर्ध्वं दश-
निष्कान्तरजतस्तेये चान्द्रायणं कार्यम् । दशनिष्कप्रमाणादूर्ध्वं शतनि-
ष्कान्तरजतस्तेये चान्द्रद्वयम् । शतनिष्कप्रमाणादूर्ध्वं सहस्रनिष्कान्तर-
जतस्तेये चान्द्रत्रयम् । सहस्रनिष्कप्रमाणादधिकरजतस्तेये पादोनं
ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् । नागरङ्गायसताम्रपित्तलकांस्यानां सहस्रनिष्कप्र-
माणस्तेये पराकम् । एषां निष्कसहस्रादिमूल्यानां स्तेये ब्रह्महत्याप्राय-
श्चित्तं द्वादशाब्दव्रतादिकम् । चतुर्निष्कमूल्यरत्नस्तेये सांतपनम् । चतु-
र्निष्कमूल्यादूर्ध्वं दशनिष्कमूल्यान्तरत्नस्तेये चान्द्रम् । दशनिष्कादूर्ध्वं
शतनिष्कमूल्यान्तरत्नस्तेये चान्द्रद्वयम् । शतनिष्कमूल्यादूर्ध्वं सहस्र-
निष्कमूल्यान्तरत्नस्तेये चान्द्रत्रयम् । रत्नसहस्रनिष्कमूल्यादधिकरत्न-
स्तेये ब्रह्महत्याप्रायश्चित्तं पादोनं नवाब्दादिकम् । अब्राह्मणस्य निक्षेपं
सुवर्णं हत्वा षडब्दं व्रतं चरेत् । नरभूमितुरङ्गहरणे च षडब्दकम् ।

इति स्मृत्यर्थसारे सुवर्णस्तेयप्रायश्चित्तम् ।

अथ गुरुतल्पगप्रायश्चित्तम्—जनको गुरुस्तत्तल्पस्तस्य भार्योच्यते ।
अज्ञानेन मातरं गत्वा मातृसपत्नीं सवर्णामुत्तमवर्णं वा तथा
प्रोत्साहितो ज्ञानाद्गत्वा लोहस्त्रियं सुतप्तमालिङ्ग्य मृतः शुद्धः ।
तप्तेऽयःशयने सुप्त्वा वा मृतः शुद्धः । उभयोः प्रोत्साहनात्

तप्तायःशयने सुप्तस्याऽऽलिङ्गने शुद्धिः । स्वयं प्रोत्साहितश्चेत्स्वस्य
 गुह्यत्रिकं स्वहस्तच्छिन्नं स्वाञ्जलिना धृत्वा नैर्ऋतीं दिशं गच्छ-
 न्नग्रतः स्थितमविचारयन्पृष्ठतोऽपश्यन्प्राणान्तं शुध्येत् । अमत्या सव-
 र्णोत्तमस्त्रीगमने द्वादशाब्दं ब्रह्महत्याव्रतम् । अमत्याऽभ्यासे घृताक्तो
 मुण्डितः करीषैराशिमध्यस्थः पादादिसर्वाङ्गदाहान्मृतः शुध्येत् ।
 जनन्यां मत्या चैवम् । जनन्यां मत्या प्रवृत्तौ रेतःसेकात्प्राङ्नि-
 वृत्तस्य द्वादशाब्दम् । अमत्या षडब्दम् । मत्या मातुः सपत्नीं सवर्णां
 व्यभिचारिणीं गत्वा वेदजपसहितं चान्द्रत्रयं कुर्यात् । अमत्याऽब्दं
 कृच्छ्रम् । क्षत्रियामपि पितृभार्या मत्या विप्रः सकृद्भूत्वा त्रैवार्षिकमष्ट-
 कालाशनम् । मत्याऽभ्यासे लिङ्गं विना वृषणच्छेदाच्छुद्धिः । क्षत्रि-
 यायां मत्या प्रवृत्तस्य रेतःसेकात्प्राङ्निवृत्तौ तया प्रोत्साहितस्य त्रैमा-
 सिकं कार्यम् । उभयप्रोत्साहितस्यातिकृच्छ्रं त्रैमासिकम् । स्वेन प्रोत्सा-
 हितायां कृच्छ्रातिकृच्छ्रं त्रैमासिकम् । तत्रैवामत्या प्रवृत्तस्य रेतःसेका-
 त्पाक्प्रवृत्तस्य योषिदुभयात्मप्रोत्साहे तु क्रमात्कृच्छ्रातिकृच्छ्रचान्द्राय-
 णानि । वैश्यायां तु गुरुपत्न्यां मत्या सकृद्गमने षडब्दं चरेत् । मत्याऽ-
 भ्यासे लिङ्गार्धच्छेदने शुद्धिः । अमत्या सकृद्गमने त्र्यब्दम् । अत्यन्ता-
 भ्यासे यावज्जीवं व्रती । वैश्यायां मत्या प्रवृत्तस्य रेतःसेकात्पूर्वं निवृत्त-
 स्योभयात्मयोषिप्रोत्साहेषु क्रमात्तत्कृच्छ्रपराकसांतपनानि । अमत्या
 प्रवृत्तस्य योषिदुभयात्मप्रोत्साहेषु क्रमात्पञ्चरात्रसप्तरात्राष्टरात्राणि ।
 शूद्रां गुरुभार्या मत्या विप्रः सकृद्भूत्वा त्र्यब्दं चरेत् । मत्याऽभ्यासे
 द्वादशाब्दं कार्यम् । अमत्याऽभ्यासे निरन्तरं चान्द्रायणम् । शूद्रायां मत्या
 प्रवृत्तस्य रेतःसेकात्प्राङ्निवृत्तस्य योषिदुभयात्मप्रोत्साहेषु क्रमादतिकृ-
 च्छ्रपराकाः । तत्रैवाऽमत्या प्रवृत्तस्य कायसांतपनसप्तरात्रोपवासाः ।
 एवं क्षत्रियापुत्रस्य वैश्यायां मातरि मत्या सकृद्गमनादिषु नवाब्दादीनि
 योज्यानि । शूद्रायां च नवाब्दादीनि योज्यानि । वैश्यापुत्रस्य च शूद्रायां
 नवाब्दादीनि योज्यानि । सर्वत्र गमनं चरमधातुविसर्गान्तमुच्यते ।
 सर्वत्र रेतःसेकात्प्राङ्निवृत्तौ मरणान्तेषु द्वादशाब्दम् । अन्यत्रोक्तार्धं
 कार्यम् । पुरुषवत्स्त्रीणां महापातकानि सन्त्येव । अतस्तासां मत्या

१ ख. ग. °षशिखिम° । २ ख. ग. घ. °त्वा नवाब्दं चरेत् । मत्याऽभ्यासे तु वृषणौ
 विना लिङ्गच्छेदाच्छुद्धिः । अमत्या सकृद्गमने त्रै° ।

प्रवृत्तौ मरणान्तिकं प्रायश्चित्तम् । अमत्या प्रवृत्तौ द्वादशाब्दादिष्वेव सर्वत्रार्थकल्प्या योग्यं पुरुषोक्तवत्कार्यम् ।

जात्युक्तं पारदार्यं च कन्यादूषणमेव च ।

साधारणं स्त्रियां नास्ति गुरुतल्पत्वमेव च ॥

अथातिपातकानुपपातकेषूच्यन्ते—मत्या समानगोत्रां समानप्रवरामूढां गत्वा गुरुतल्पव्रताच्छुध्येत् । तज्जो गर्भश्चाण्डालः स्यात् । सा पत्नी संभोगे त्याज्या रक्षयैव । अमत्योढां गत्वा त्रिभिश्चान्द्रैः शुध्येत् । गर्भः कश्यपः स्यात् । सर्वर्णकन्यां मित्रस्त्रियं भगिनीं सगोत्रां चाण्डालीं मातङ्गीं वाऽऽत्मजस्त्रियं सकृदज्ञानाद्गत्वा चान्द्रद्वयाच्छुध्येत् । ज्ञानात्सकृद्गमने कृच्छ्राब्दाच्छुद्धिः । आसामन्यतमामेकस्यां रात्रौ बहुवारं गत्वा ब्रह्म-हत्याव्रतं त्रैवार्षिकं चरेत् । आसामन्यतमामनेकदिनेषु गत्वा ब्रह्महत्या-व्रतं चरेत् । आसामेकां बुद्धिपूर्वं बहुदिनेषु गत्वाऽग्निं प्रविश्य मृतः शुध्येत् । मातृष्वसारं पितृष्वसारमाचार्यपुत्रीमाचार्यभार्यामनुजपत्नीं चाऽऽत्मसुतां मातुलानीमज्ञानात्सकृद्गत्वाऽब्दकृच्छ्रेण शुध्येत् । आसामे-कामेकस्मिन्दिने बहुवारं गत्वा त्रैवार्षिकं ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् । आसा-मेकां बहुदिनेष्वनुबन्धेन गत्वा ब्रह्महत्याप्रायश्चित्तं कुर्यात् । आसामे-कामेकस्मिन्दिनेऽसकृज्ज्ञानाद्गत्वा षडब्दं ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् । आसा-मेकां बहुदिनेषु बुद्धिपूर्वं गत्वाऽग्निं प्रविश्य मृतः शुध्येत् । चाण्डालीं पुलकसीं व्याधस्त्रियं भगिनीं स्नुषां मातुःस्वसारं च सखीं विश्वस्तां प्रव्राजितां मातुलानीं शरणागतामन्तःपुरस्त्रियं च गत्वा शिष्यपत्नीं पतितां सगोत्रां च गत्वा रेतोनिःसरणात्पूर्वं निवृत्तस्य मासोपवासेन शुद्धिश्चान्द्रेण वा । एतासु व्यभिचारिणीं यदि सकृद्गच्छेच्चान्द्रेण शुध्येत् । अज्ञातां स्त्रियं सकृद्गत्वा तत्सकृच्छ्रेण शुध्येत् ।

इति स्मृत्यर्थसारे गुरुतल्पगप्रायश्चित्तम् ।

अथ महापातकिसंसर्गिप्रायश्चित्तम्—एतैश्चतुर्भिर्महापातकिभिरध्ययनाध्या-पनविवाहयज्ञयाजनसहवाससहभोजनानि कृत्वा सद्यः पातित्यमाप्नोति । एतैरेकासनस्थितिमेकपङ्क्तिभोजनमेकशयने स्वापमेकवाहनगतिं चैक-वत्सरं कृत्वा पातित्यमाप्नोति । येन महापातकिना यः संसर्गी पतितः स तस्योक्तव्रताच्छुध्येत् । अस्य मरणापादकप्रायश्चित्तस्थाने ब्रह्महत्या-व्रतं द्वादशाब्दिकं स्यात् । अज्ञानाद्यस्य येन संसर्गो जातस्तस्य तदुक्त-व्रतार्थाच्छुद्धिः । अज्ञानाच्चतुर्भिर्महापातकिभिः पञ्चरात्रं संसर्गे त्रिरा-

त्रं दशरात्रसंसर्गे कायकृच्छ्रादि । द्वादशरात्रं संसर्गे सांतपनम् । पक्ष-
संसर्गे दशोपवासाः । माससंसर्गे पराकाच्छुद्धिः । त्रिमाससंसर्गे चान्द्रम् ।
षण्माससंसर्गे चान्द्रद्वयम् । किञ्चिद्भूनाब्दं नैरन्तर्यसंसर्गे षण्मासं
कृच्छ्राद्वा । किञ्चिद्भूतं संवत्सरं संसर्गे चाद्रायणाब्दम् । एतैश्चतुर्भिः
संसर्गे स्त्रीबालवृद्धातुरास्तत्तदुक्तव्रतार्थं कुर्युः । महापातकिसंसर्गिसं-
सर्गे तु तत्संसर्गिव्रतस्यार्थं कुर्यात् ।

इति स्मृत्यर्थसारे महापातकिसंसर्गिप्रायश्चित्तं समाप्तम् ।

अथोपपातकप्रायश्चित्तान्युच्यन्ते—अज्ञानाद्वाह्मणमात्रस्य गोमात्रं ब्राह्मणो
हत्वा त्रिरात्रमुपोष्य वृषभैकादशगा दत्त्वा शुध्यति द्वादशप्रजाप-
त्यैर्वा । प्रत्याम्नायद्वादशधेनूर्वा दत्त्वा शुध्यति । ज्ञानाच्चेद्गोहितो गोर्ग-
मनस्थानासनशयनेषु स्वयं च तथा कुर्यात् । भयव्याधिक्षुत्पिपासा-
शीतातपादिभ्यो रक्षन्नात्मीयपरकीयभक्ष्यपानेष्ववारयन्नवेदयन्नात्रौ गां
नत्वा वीरासनो वनशाकाद्याहारो मासत्रयान्ते वृषभैकादश गा
दद्यात् । अशक्तः सर्वस्वं दत्त्वा शुध्यति । प्राजापत्यप्रत्याम्नायपक्षे
त्वज्ञानपक्षाद्विगुणम् । अज्ञानात्क्षत्रियस्य गोमात्रं हत्वा गोहितो गोनु-
गामी गोष्ठशायी त्रिषवणस्नायी संयतः पञ्चगव्यमेव पिबन्मासान्ते धेनुं
दत्त्वा शुध्यति षट्प्राजापत्यैर्वा । प्रत्याम्नाये षड् धेनवो देयाः । ज्ञानाच्चे-
च्चतुर्थकाले हविष्यमक्षारलवणं मितमश्रन्गोमूत्रस्नायी द्वौ मासौ नीत्वा
शुध्येत् । प्राजापत्यं प्रत्याम्नाये द्विगुणम् । अज्ञानाद्वैश्यस्य गोमात्रं
हत्वा गोहितादिकृदतिकृच्छ्रं निरन्तरं चरन्मासान्ते धेनुं दत्त्वा शुध्यति
पञ्चप्राजापत्यैर्वा प्रत्याम्नाये धेनुं दद्यात् । ज्ञानाच्चेद्वैश्यस्य गोमात्रं हत्वा
तद्विगुणं सर्वं चरेत् । अज्ञानाच्छूद्रस्य गोमात्रं हत्वा गोहितादिकृत्प्राजा-
पत्यं निरन्तरं चरन्मासान्ते धेनुं दत्त्वा शुध्यति । प्रत्याम्नाये धेनुचतु-
ष्कम् । ज्ञानाच्चेत्कृतवान्गोचर्मणाऽऽर्द्धेण संवृतो गोष्ठे वसन् षण्मासं
यवागूं पिबन्शुध्यति । प्राजापत्यप्रत्याम्नायौ चेद्विगुणौ । अकामात्सो-
मयागस्थश्रोत्रियस्य गोमात्रं हत्वा गोहितादिकृच्छ्राकादिभुगब्दान्ते
वृषभैकादशगा दद्यात् । गोघ्रासभुक् षण्मासैर्वा शुद्धः । कामाच्चेद्गोहि-
तादिकृन्मौण्डी शाकभुक् त्र्यब्दं चरेत् । धनी वक्ष्यमाणव्रतं गोशतं
चरेत् । ज्ञानात्सोमयागस्थश्रोत्रियातिदुर्गतकुटुम्बिब्राह्मणस्य कपिलां

होमार्थं गर्भिणीं बहुक्षीरां सुवृत्ततरुणादिगुणां निर्गुणो धनवान्प्रति-
ज्ञया खड्गादिना हत्वा भ्रूणहा भवति । स ब्रह्महत्याद्विगुणं व्रतं
चरेत् । यद्वा गोहितादिकृदण्डमौञ्जीमृदक्षारलवणं रुक्षं षष्ठे कालेऽश्व-
न्मोमतीं प्रणवं वेदं वा जपन्दिमासान्ते गोसहस्रं दद्यात् । अज्ञानाच्चेद्ब्र-
ह्महत्याव्रतं त्रैवार्षिकम् । वृषभैकशतगोदानमगर्भिण्याः कामतश्चेद्ब्रधः ।
अकामतश्चेद्गोहितादिकृन्मौञ्जीशाकादिभुक्त्र्यब्दं चरेत् । यवि तां काष्ठेन
हन्यात्सातपनशतं गोसहस्रशतदानं त्र्यब्दादिषु । लोष्ठेन कायम् । पाषा-
णेन तप्तकृच्छ्रपूर्वं व्रतान्ते विप्रान्संभोज्य तेभ्यस्त्रिंशद्वा वृषभं च दद्यात् ।
बालामतिवृद्धामतिकृशां रोगिणीं च हत्वा पूर्वप्रोक्तार्धव्रतं कृत्वा
विप्रान्संभोज्य शक्यता हेमतिलान्दद्यात् । एकाब्दे गवि हते पादं द्व्यब्देऽर्धं
त्र्यब्दे पादोनं ततः कार्यं चरेत् । गर्भिण्या वधे तूच्यते । उत्पन्ने गर्भे पादं
दाढ्येऽर्धमापूर्णे पादोनं चैतन्ये गोव्रतं द्विगुणम् । अज्ञानादेकां बहवो
हत्वोक्तव्रतस्य पादं प्रत्येकं कुर्युः । द्वे हत्वाऽर्धं बह्वीः पादोनम् । ज्ञाना-
त्प्रत्येकं कृच्छ्रमेव । एकेन रोधादिना बहूनां वधे द्विगुणं व्रतम् । अज्ञा-
नाद्वैद्येन मिथ्यौषधेनैकस्या वधे द्विगुणम् । अज्ञानाद्वैद्येन हितबुद्ध्या
त्वौषधदाने पादव्रतम् । रोधादौ व्यवहितकर्तृषु रोधने पादबन्धनेऽर्धं योजने
पादोनं निपातने सर्वम् । अज्ञानाद्रोधादि कृत्वा तज्जन्यप्रमादपरिहा-
रार्थमवेक्षमाणे मृते कार्यं कृत्वा विप्रान्संभोज्य गोमिश्रुनं दद्यात् ।
रोधनादिप्रमादरक्षणाकरणे क्रमात्पादार्धं त्रिपादं सर्वाणि त्रैमासिका-
दीनि कार्याणि । चिह्नव्याधेरन्यत्र दाहेऽतिवाहे नासापुच्छादिच्छेदे
नदीपर्वतादिरोधेऽतिदाहेऽतिदमने संघाते योजने शृङ्खलानालिकेरशण-
वालमौञ्जादिवृढपाशबद्धे मृते पादोनम् । सर्वत्र घण्टाक्षिभूषणनिमि-
त्तेऽर्धकृच्छ्रम् । मृतकल्पवधे तु सक्तुयावकमैक्षपयोदधिघृतानि क्रमा-
न्मासार्धं भुक्त्वा विप्रान्संभोज्य गां दद्यात् । मरणहेतुव्याधिमुत्पाद्य
द्वादशरात्रं पञ्चगव्यं पिबेत् । शृङ्गास्थिमङ्गे चर्मविमोचनादौ च गवि
जीवति मासान्तं यवागूं पिबेत् । अशक्तः पयो दधि घृतं वा दशरात्रं
पिबेत् । अनुग्राहकप्रयोजकादीनां पूर्वबद्दोषतारतम्यम् । अरक्षोपेक्षानि-
मित्तं जलपङ्काच्च नीचादिविषमस्थाने दुर्गे च शून्यगृहबन्धने विद्यु-
त्सर्पमृगव्याघ्रश्वापदाद्यैरशीतवाताद्यैरुद्ध्वन्धनाद्यैश्च मृते गोस्वामी कार्यं

१ ख. ग. शन्नोमिति प्र० । २ क. कुशमरो० ३ क. 'त्र ज्वहादिभू' । ख. घ. 'त्र यदा-
दिभू' । ४ क. 'सार्धं य' । ५ ख. ग. ड. 'लपातोच्च' ।

कुर्यात् । कार्यान्तरव्यग्रत्वे त्वर्धम् । गूढगर्भनिर्गमनार्थं सदंशदण्डाङ्कु-
शादिप्रवेशननिमित्ते वधे रक्षार्थं रोधबन्धने च न दोषः । औषधस्नेहाहारे
दीयमाने हितार्थदाहच्छेदशिरोमेदेषु च ग्रामघाते शरीरौ गृहभङ्गेऽति-
वृष्टौ कुड्यादिपाते चान्यगृहग्रामादिदाहे दोषो नास्ति । बन्धे मृते पादं
चरेत् । गवि स्त्रीत्वमविवक्षितम् । सर्वत्र हतगोसदृशं तन्मूल्यं वा गोस्वा-
मिने दत्त्वेव प्रायश्चित्तम् । राजदण्डं च तत्समम् । एतत्सर्वं हन्तुर्बा-
ह्मणस्यैव । क्षत्रियस्य सर्वत्र पादोनम् । वैश्यस्यार्धं शूद्रादेः पादं
विद्यात् । सर्वत्र स्त्रीबालवृद्धादीनां त्वर्धम् । अनुपनीतादीनां पादं
तत्पित्रादिश्चरेत् । स्त्रीणां तु वपनमनुगमनं गोष्ठशयनं चर्मप्रावरणं च
नास्ति तत्सर्वकेशान्समुद्धृत्य द्यङ्गुलं छेदयेत् । सर्वत्रैवं तासाम् । पुंसां
तु पापव्रत आकण्ठालोम्नां वपनम् । अर्धे श्मश्रूणां च । त्रिपादे
शिखावर्जम् । समस्ते साशिखं वपनम् । ज्ञात्वा चेत्सर्वत्र द्विगुणम् ।

इति स्मृत्यर्थसारे गोवधप्रायश्चित्तम् ।

अथ ब्राह्मणस्य प्रायश्चित्तम्—तत्र सर्वोपपातकार्थं चान्द्रं पञ्चगव्यं मासं
पयो मासं पराकं त्रैमासिकं कृच्छ्रं वा प्रतिपदोक्ताभावे कुर्यात् ।
ब्राह्मणत्वे तूपनेत्राद्यभावेनोपनयनकालातिक्रमे चान्द्रादिव्रतचतुष्केऽन्य-
तमं शक्त्या कारयित्वोपनयनं कार्यम् । अनापदि कालातिक्रमे त्रैमा-
सिकं कारयित्वोपनयेत् । तत्रैव पञ्चदशवर्षादूर्ध्वमपि कियत्कालातिक्रम
औद्दालकं व्रतं चरेत् । तत्रैवम्—द्वौ मासौ यावकेन वर्तयेत् । मासं
पयसा । पक्षमामिक्षया । अष्टरात्रं घृतेन । षड्रात्रमयाचितेन । त्रिरात्र-
मम्भक्षोऽहोरात्रमुपवसेदिति । ब्राह्मणस्तोमेन वा यजेत् । यस्य पिता
पितामहो वाऽनुपनीतौ स्यातां तस्याब्दं त्रैविद्यकं ब्रह्मचर्यम् । यस्य
प्रपितामहादेर्नानुस्मर्यत उपनयनं तस्य द्वादशाब्दत्रैविद्यकं ब्रह्मचर्यमि-
त्यापस्तम्बोक्तं कृत्वोपनयनम् ।

अथ स्तेये प्रायश्चित्तम्—तत्र विप्रो विप्रस्य दशकुम्भं धान्यं वा तत्परि-
मितं तण्डुलादि वा ताम्ररजतादिकममत्या हत्वा त्रैमासिकं कुर्यात् ।
मत्याऽभ्यासे कृच्छ्राब्दम् । क्षत्रियादेर्हर्तुः पादपादह्नासः । क्षत्रियस्त्वं
विप्रो हत्वा षण्मासिकम् । वैश्यस्त्वे त्रैमासिकं शूद्रस्त्वे चान्द्रम् । एव-
मुत्तरत्राप्युच्यते । कुम्भः पञ्चसहस्रपलपरिमाणः । विप्रस्य गृहक्षेत्रभूमि-

निक्षेपरजतवज्रमणीनां नराश्वस्त्रीणां च सार्धशतद्वयपणलब्धपानीयर-
सवापीकूपजलानां च हर्तुर्विप्रस्य सुवर्णस्तेयसमवत् । क्षत्रादिस्वे
चान्द्रतदर्धपादादि । त्रपुसीसादिद्रव्याणामल्पप्रयोजनानां सार्धशतद्वयं
पणपञ्चदशार्धानां हर्तुः सांतपनम् । मक्ष्यभोज्याहारपानादीनामेकवार-
भोजनपर्याप्तानां पानशय्यासनानां पुष्पमूलफलानां च हर्तुः पञ्चगव्ये-
नाहोरात्रम् । त्रिवारभोजनपर्याप्ते त्रिरात्रम् । तृणकाष्ठदुग्धानां त्रिवार-
भोजनपर्याप्तमूल्याध्याणां शुष्कान्नगुडतैलचर्ममांसानां च हर्तुश्चिरात्रम् ।
मणिमुक्ताप्रवालताम्ररजतायःकांस्योपलानां च द्वादशाहारपर्याप्तमू-
ल्यानां हर्तुर्द्वादशाहकणान्नत्वम् । कार्पासकीटजोर्णानां द्विखुरैकखुरर-
ज्जुपक्षिगन्धौषधीनां त्रिवारभोजनपर्याप्तमूल्याध्याणां हर्तुः पयस्सहम् ।
सर्वत्र ह्यियमाणद्रव्याल्पत्वबहुत्वाभ्यां प्रायश्चित्तालपत्वमहत्त्वे कल्प्ये ।
सर्वस्तेयप्रायश्चित्तद्रव्यं स्वामिने सति दत्तैव कार्यम् ।

इति स्तेयप्रायश्चित्तम् ।

अथ ऋणानपाकरणे—तत्र ऋणमात्मपितृपितामहादिकृतम् । तपोब्रह्म-
चर्याद्यकरणे ऋषीणामृणम् । यज्ञाकरणे देवानामृणम् । प्रजोत्पत्त्यकरणे
पितॄणां ऋणम् । एषामृणानामनपाकरणे चान्द्रादिष्वेकं शक्त्या कार्यम् ।
सर्वथा तदसंभवेऽब्दान्ते वैश्वानरेष्टिः कार्या । अनाहिताग्नित्वे तु सत्य-
धिकारित्वेऽग्न्याधानेऽब्दादर्वाक्प्रतिमासं त्रिरात्रम् । ततः प्रत्यब्दं चान्द्रा-
दिष्वेकमनापदि त्रैमासिकम् । पितर्यनाहिताग्नावाधातर्ययष्टरि यष्टुश्च
सुतस्य ब्राह्मणपशुः कार्यः । औपासनाग्न्यसंनिधौ द्यब्दं प्रतिमासमुपवा-
सोऽब्दे चान्द्रादिष्वेकम् । यद्वाऽऽद्याब्दे कृच्छ्रो द्वितीयेऽतिकृच्छ्रस्तृतीये
कृच्छ्रातिकृच्छ्रो ततश्चान्द्रम् । अपण्यानां विक्रये गुडतिलपुष्पमूलफल-
पक्वान्नविक्रये सौम्यकृच्छ्रम् । लाक्षालवणमधुमांसतैलक्षीरदधिघृततक्र-
गन्धचर्मवाससां विक्रये चान्द्रम् । ऊर्णाकेशकेसरिमूधेनुवेश्मशस्त्राविक्रये
चान्द्रम् । अमक्ष्यमांसस्नाय्वस्थिशृङ्गनखविक्रये तप्तकृच्छ्रः । हिङ्गुगुग्गुल-
हरितालमनःशिलाञ्जनगैरिकाक्षारलवणमणिमुक्ताप्रवालवैणववेणुमृन्म-
येषु तप्तकृच्छ्रः । आरामतडागोदपानपुष्करिणीसुकृतविक्रये त्रिषवण-
स्नाय्यधःशायी चतुर्थकालाहारो दशसहस्रं जपन्नब्देन शुध्येत् ।
हीनमानोन्मानसंकीर्णविक्रये चैवम् । एवमन्यैः शङ्खलिखिताद्यैरुक्तं

ज्ञेयम् । यत्र मायश्चित्तं नोक्तं तत्रापि चान्द्रादिकम् । अनापदि त्रैमासिकम् ।

इति पण्यविक्रयप्रायश्चित्तम् ।

अथ परिवेदनम्—तत्रामत्या परिवेत्ता चान्द्रादिष्वेकं कृत्वा ज्येष्ठाय स्वोढां स्त्रियं दत्त्वा तेनानुज्ञातां तामेवोद्वहेत् । मत्या चेत्तत्रापि कन्यापित्राद्यज्ञानेऽब्दं कार्यम् । ब्राह्मणगृहभैक्षाशनं च कृत्वैवं कुर्यात् । कन्यापित्रादिषुतोद्वहे त्रैमासिकम् । कृच्छ्रातिक्छ्रौ वा कृत्वैव कुर्यात् । परिवेद्यस्य तु द्वे कृच्छ्रे कन्यायाः कृच्छ्रो दातुरतिकृच्छ्रो होतुश्चान्द्रम् । एवं परिवेद्यवत्पर्याहितपरीज्यपरिवेत्तानां कायद्वयम् । परिवेत्तृपरिवेत्तपर्याधातृपरियद्ग्रेदिधिषूपरिदिधिषूपतीनां चाब्दं गौतमोक्तं ब्रह्मचर्यं कृत्वा पश्चाद्विवाहः । अग्रेदिधिषूपतिः कृच्छ्रं कृत्वा तामेवोद्वहेत् । दिधिषूपतिस्तु कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ कृत्वा तस्मै दत्त्वाऽनुज्ञातः पुनस्तामेवोद्वहेत् । यद्वाऽग्रेदिधिषूपतिः कायं कृत्वा तामेव ज्येष्ठां पश्चाद्वन्येनोढामुद्वहेत् । दिधिषूपतिस्तु कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ कृत्वा स्वोढां ज्येष्ठां कनीयस्याः पूर्ववोद्वे दत्त्वाऽन्यामुद्वहेत् । ज्येष्ठे स्थिते कनिष्ठः कृतविवाहः परिवेत्ता परिविविदानश्च स ज्येष्ठः परिवित्तिः परिवेद्यश्च सः । परिविमागवेत्तृपरिविमागवित्यादेश्वैवम् । ज्येष्ठायां कन्यायामनूढायामनुजोढा चेत्साऽग्रेदिधिषूः पूर्वा दिधिषूः । भृतकाध्यापको भृतकाध्यापितश्च पयसा बाह्नीं सुवर्चलां त्रीन्यक्षान्नियतः पिबेत् । चान्द्रादिष्वेकं वा कुर्यात् । अनुयोगप्रदाने चैवम् । उत्कर्षहेतोरधीयानस्य किं पठसि नाशितं त्वयेत्येवं प्रयनुयोगोऽनुयोगप्रदानम् । अनुयोगप्रदानाभ्यासे पातित्यमाहुः ।

अथ पारदार्ये—तत्र गुरुतल्पतत्समादिषु प्रायश्चित्तविशेष उक्तः । ऋतुकाले जातिमात्रब्राह्मणीगमने वार्षिकं प्राकृतं ब्रह्मचर्यम् । ऋतावेव धर्मकर्मसाधनत्वादिगुणवत्यां ब्राह्मण्यां गमने द्विवार्षिकम् । तादृश्यामेव श्रोत्रियपत्न्यां त्रैवार्षिकम् । तादृश्यामेव क्षत्रियायां द्विवार्षिकं तादृशवैश्यायां वार्षिकं शूद्रायां षाण्मासिकम् । एवं क्षत्रियस्यापि क्षत्रियादिषु द्विवार्षिकवार्षिकषाण्मासिकानि । वैश्यस्य च वैश्याशूद्रोर्वार्षिक-

षाण्मासिके । शूद्रस्य च शूद्रां परपत्न्यां षाण्मासिकमेव । अनन्य-
पूर्विकास्तु चाभ्यासे द्वादशाब्दम् । एकस्यामेव गमनाभ्यासे पादपाद-
न्यूनं स्यात् । अमत्या सर्वत्रार्थं योज्यम् । अनृतौ जातिमात्रब्राह्मण्यां
त्रैमासिकम् । क्षत्रियादिस्त्रीषु द्वैमासिकचान्द्रमासिकानि । क्षत्रियादीनां
क्षत्रियादिषु द्वैमासिकान्येव । अमत्या ब्राह्मणाद्या वृषभैकादशगोदानं
मासं पञ्चगव्यं मासं कायं च क्रमात्कुर्युः । शूद्रागमने तु मासं काया-
र्धम् । ब्राह्मणश्चेदप्रेक्षापूर्वकं ब्राह्मणभार्यां शूद्रामधिगच्छेन्नवृत्तधर्म-
कर्मणः कृच्छ्रम् । अनिवृत्तधर्मकर्मणोऽतिकृच्छ्रः । द्विजातिस्त्रीविप्रोढास्तु
द्विस्त्रिव्यभिचरितास्वमत्या गमने चैवम् । मत्या कृच्छ्रद्वयम् । वर्णास्त्रि-
योऽपि चतुर्थे व्यभिचारे स्वैरिण्यः पञ्चमे बन्धव्यः स्वैरिणीगमनेषु
शूद्रां सचैलस्नात उदकुम्भं विप्राय दद्यात् । वैश्यायां चतुर्थकालाहारो
विप्रान्मोजयेत् । क्षत्रियायां त्रिरात्रोपोषितो यैवाढकं दद्यात् । बन्ध-
कीषु तु ब्राह्मण्यां किञ्चिद्दद्यात् । क्षत्रियायां चेद्धेनुः । वैश्यायां चैलकम् ।
शूद्रायामुदकुम्भं दद्याद्विप्रः । इदं च प्रायश्चित्तं गर्भानुत्पत्तिविषयम् ।
गर्भोत्पत्तौ यद्विशेषेण प्रायश्चित्तमुक्तं तदेव तत्र द्विगुणं कुर्यात् । प्राति-
लोम्यगमने पुंसो वधः । स्त्रियाः कर्णादिकर्तनम् । स्वस्त्रीभ्रान्त्या प्राति-
लोम्यगमने ब्राह्मण्यां शूद्रस्य द्वादशाब्दम् । वैश्यादेः पादपादह्नासः ।
अत्यन्तव्यभिचारितब्राह्मण्यां तु शूद्रस्य गोमूत्रयावकम् । वैश्यस्य
क्षत्रियस्य च कृच्छ्रं सातपनम् । रजकचर्मकारभिलव्याधशैलूषनटबुरु-
डकैवर्तमेदम्लेच्छाद्या एते रजकाद्याः कापालिकाश्च तद्वत् । रजका-
द्यन्त्यजागमने त्वमत्या ब्राह्मणस्य पराकश्चान्द्रं वा । मत्या चान्द्रद्व-
यम् । क्षत्रियादीनां पादपादह्नासः । अभ्यासे कृच्छ्राब्दम् । रेतःसेका-
त्पाङ्ग निवृत्तौ कायम् । चाण्डालाद्यन्त्यावसायिस्त्रीसंगमने तु गुरुतरं
प्रायश्चित्तं गुरुतल्पप्रकरणे दर्शितम् । चाण्डालादिषु गर्भोत्पत्तौ द्वादशा-
ब्दार्धगुरुतल्पव्रतम् । स्त्रीणामपि सवर्णानुलोमगमने यत्पुरुषोक्तं त्रैवा-
र्षिकादिकं तदेव कार्यम् । प्रतिलोमगमने तु शूद्रो ब्राह्मणीं गच्छेच्चे-
द्वीरणैर्वेष्टयित्वाऽग्नौ तं क्षिपेत् । ब्राह्मण्याः शिरो वापयित्वा सर्पि-
षाऽभ्यज्य नग्नां खरमारोप्य महापथं गमयेत् । सा पूता भवति ।
वैश्यश्चेलोहितदर्भैर्वेष्टयित्वाऽग्नौ क्षिपेत् । ब्राह्मणीं पूर्ववद्गमयेत् ।

१ क. अन्यपूर्वास्तु चतुरभ्या । २ घ. ०स्तु चतुरभ्य ० । ३ क. 'सं द्योः कं च' । ४ ख. ग.
यवोदकं दं । ५ ख. ग. घ. कमासः । वै । ६ ख. शाब्दं गुं ।

क्षत्रियश्चेच्छरपत्रैर्वैद्यित्वाऽग्नौ निक्षिपेत् । ब्राह्मणीं पूर्ववद्गमयेत् ।
 एवं क्षत्रियायां वैश्यशूद्रयोर्वैश्यायां शूद्रस्य चैवं स्त्रीपुंसयोः प्रायश्चित्तम् । यद्वा ब्राह्मण्याः क्षत्रियगमनेऽतिकृच्छ्रो वैश्ये कृच्छ्रातिकृच्छ्रः ।
 क्षत्रियायां विप्रक्षत्रियवैश्यगमनेष्वर्धकायकायातिकृच्छ्राणि । वैश्यायां विप्रक्षत्रियवैश्येषु कृच्छ्रपादकृच्छ्रार्धकायकायातिकृच्छ्राणि । शूद्रायाः शूद्रे कायम् । विप्रक्षत्रियवैश्येषु त्वहोरात्रत्रिरात्रार्धकृच्छ्राणि । ब्राह्मण्याः प्रतिलोमगमने गर्भोत्पत्तौ विशेषः । ब्राह्मण्याः शूद्रसंगमे कृच्छ्रं चान्द्रत्रयं च । वैश्ये कृच्छ्रं चान्द्रद्वयं च । क्षत्रिये कृच्छ्रं चान्द्रं च । क्षत्रियायाः शूद्रसंगमे कृच्छ्रं चान्द्रद्वयं च । वैश्ये कृच्छ्रं चान्द्रं च । वैश्यायाः शूद्रसंगमे कृच्छ्रं चान्द्रं च । वैश्ये कृच्छ्रम् । गर्भे प्रसूते तु ब्राह्मण्या विप्रगर्भे तु पराकः । क्षत्रगर्भे चान्द्रम् । वैश्यगर्भे चान्द्रं पराकं च । शूद्रगर्भे तु चाण्डालत्वात्यागः । ऋतुकालदोषैर्गर्भस्त्रावे चान्द्रत्रयम् । मत्या गमने तु पराकादिद्विगुणम् । द्विजभार्याः शूद्रेण संमता अनिसृतगर्भाः प्रसूयन्ते चेत्प्रायश्चित्ताभावः । गर्भधारणकाले शूद्रसंगमे तु प्रसवोत्तरकालमेव प्रायश्चित्तं कार्यमन्यथा गर्भबाधा स्यात् । तच्च मासं यावकम् । स गर्भो दोषाभावात्संस्कार्यः । औद्धत्यात्प्रायश्चित्ताकरणे स्त्रियाः कर्णादिकर्तनं कार्यम् । अन्त्यजगमनेऽपि स्त्रीणाम् । तत्र ब्राह्मण्या अमत्या रजकाद्यन्त्यजगमने चान्द्रत्रयम् । चाण्डालाद्यन्त्यावसायिसंगमे त्वमत्या ब्राह्मण्याश्चान्द्रचतुष्कम् । मत्या द्विगुणम् । गर्भिण्याः पश्चादन्त्यसंगमेऽपि प्रसूताया एवं प्रायश्चित्तम् । सा गृहे न प्रचरेत् । न भर्त्रा सह शयीत । न बान्धवैः सह भुञ्जीत । न धर्मकर्मसाधनम् । सा कृच्छ्राब्दं चरेत् । हिरण्यं धेनुर्वा दक्षिणा । मत्याऽन्त्यसंपर्के तु सा प्रदीप्तेऽग्नौ प्रविश्य मृता शुध्येत् । प्रायश्चित्तमकुर्वाणाः पुंलिङ्गेनाङ्कनीया वध्या वा स्युः ।

इति स्मृत्यर्थसारे पारदार्यप्रायश्चित्तम् ।

परिवित्तेरपि परिवेत्तप्रायश्चित्तवत् । तत्र कृच्छ्रातिकृच्छ्रस्थानेऽत्र कायम् । वार्धुष्ये चान्द्रादिष्वेकं त्रैमासिकं जातिशक्तिगुणाद्यपेक्षया योज्यम् । लवणक्रियायां चैवम् ।

अथ स्त्रीशूद्रविट्क्षत्रवधेषु—तन्नामत्या जातिमात्रस्त्रीक्षत्रवैश्यशूद्रवधेषु क्रमेण ब्रह्महत्याव्रतं त्रैवार्षिकवार्षिकषाण्मासिकानि कुर्यात् । यद्वा वृष-

भैकसहस्रा गा वृषभैकशता गा वृषभैकादश गाः सवत्सा धेनूर्दद्यात् ।
ईषद्वृत्तस्थक्षत्रादिवधेषु ब्रह्महत्याव्रतचतुर्थांशाष्टांशषोडशांशव्रतानि ।
सम्यग्वृत्तस्थवधेष्वेकांशाधिकानीमानि । सदाचारगुरुपूजाघृणाशौचेन्द्रि-
यनिग्रहभूतहितादिगुणयुक्तत्वं वृत्तस्थत्वम् । मत्या षड्वार्षिकत्रैवार्षि-
कवार्षिकाणि । श्रोत्रियक्षत्रादिवधेषु नवषट्त्रिवर्षाणि व्रतानि । व्रत-
स्थश्रोत्रियक्षत्रादिवधेषु दशवार्षिकम् । प्रारब्धसोमयागस्थश्रोत्रियक्ष-
त्रादिवधे द्वादशाब्दम् । सोमयागस्थश्रोत्रियक्षत्रादिवधे षड्वार्षिकं
ब्रह्मचर्यमृषभैकसहस्रगोदानसहितं त्रैवार्षिकमृषभैकादशगोदानसहितं
वार्षिकमृषभैकादशगोदानसहितं षाण्मासिकं च गौतमोक्तम् । दुर्वृत्तक्ष-
त्रादिवधे मत्या त्रैमासिकद्वैमासिकचान्द्राणि । अमत्या त्रिरात्रोपवा-
ससहितमृषभैकादशसहितगोदानं पञ्चगव्यमासं पयोमासं च कुर्यात् ।
इदं प्रायश्चित्तजातं ब्राह्मणस्य कर्तुर्ज्ञेयम् । क्षत्रियादेः कर्तुः पादपाद-
न्यूनं ज्ञेयम् । मूर्धावसिक्तादीनां वधे चैवं प्रायश्चित्तं तत्र तत्रोक्तम् ।
सर्वत्र दण्डवृद्धिहासाभ्यां प्रायश्चित्तवृद्धिहासौ विज्ञेयौ ।

अथ स्त्रीवधे—तत्र ब्राह्मण्यादिस्त्रीणां प्रातिलोभ्येनान्त्यजातिप्रसूतानां
ब्राह्मणादिभार्याणां स्वैरिणीनाममत्या वधे तु जलाधारचर्मकोशं हतिं
धनुश्छागमेषान्क्रमादद्यात् । मत्या षट्चतुर्द्वेकमासाः कार्याः । सुता-
दीनां वधे चैवम् । वैश्याकर्मणा जीवन्तीनां वधे किञ्चिदेव जलं
दद्यात् । प्रातिलोभ्येन व्यभिचरितब्राह्मण्यादिस्त्रीवधकर्तृणां क्षत्रिया-
दीनां गोवधोक्तप्रायश्चित्तं यथार्हं योज्यम् । ब्राह्मणीनां वधे त्वमत्या
षाण्मासिकं दशधेनुदानं वा । क्षत्रियादिवधे त्रैमासिकतत्तदर्धानि । मत्या
ब्राह्मण्यादिषु द्विगुणम् । यद्वा वैश्यायां धेनुदानम् । शूद्रायां चान्द्रादि-
ष्वेकम् । धर्मकर्मसाधनब्राह्मण्यादिवधे तु ब्राह्मण्यां षड्वर्षं प्राकृतं ब्रह्म-
चर्यम् । क्षत्रियायां त्रैवार्षिकं वैश्यायां सार्धं वर्षं शूद्रायां नवमासम् ।
अमत्या सर्वत्रार्धम् । आत्रेय्यां प्रायश्चित्तमुक्तम् ।

अथान्यर्हिसायाम्—तत्रास्थिमतां कृकलासादीनामनुक्तनिष्कृतीनां सह-
स्रवधे वाऽनस्थिमतां क्षोदिष्ठानां युकामशकमत्कुणदंशादीनां शकटपू-
र्णवधे च षाण्मासिकं प्राकृतं ब्रह्मचर्यं दशधेनुदानं वा । तत्प्रमाणाधि-
केऽधिकं कल्प्यम् । ततो वा कृशास्थिप्राणिवधे किञ्चिद्देयम् । अष्टमु-

ष्मिन्तं धान्यं किञ्चित् । किञ्चिदष्टौ तु पुष्कलम् । पुष्कलानि तु चत्वारि
 पूर्णपात्रमाढकं च । चतुराढकं द्रोणं द्रोणात्मिका खारिका । हिरण्ये तु
 पणं किञ्चित् । अनस्थिके क्षोदिष्ठे प्राणायामः । स्थविष्ठानस्थिघुणादि-
 प्राणिवधे तु तप्तयावकं त्र्यहम् । फलपुष्पान्नरसजातप्राणिवधे घृताहा-
 रोऽहोरात्रम् । मार्जारगोधानकुलमण्डूकचाषकाकोलुकादीनां प्रत्येकं
 पयस्त्रिरात्रं पादकृच्छ्रं योजनगमनं वा । स्रवन्त्यां समुद्रगन्ध्यां स्नानं वा ।
 अब्दैवतसूक्तजपो वा । एतानि प्रत्येकं त्रिरात्रं कुर्यात् । एकवर्षवत्सो वा
 देयः । मत्या द्विगुणम् । अभ्यासे कायम् । एषां समुदितानां वधे कायं
 पाणमासिकम् । गजे पञ्चनीलवृषा देयाः । हये वरवस्त्रयुग्मम् । उष्ट्रे गुञ्जा-
 मारः सुवर्णगुञ्जा वा । खरे वृष एकवर्षवत्सो वा देयः । अजेऽनड्वा-
 न्वृषो वा । मेघे चैवम् । हंससारसपारावतमयूरचक्रवाकबकबलाकावि-
 षज्ञकङ्कृष्णाविट्कारण्डवश्येनभासराजपक्षादिषु गौर्देया । गृध्रकाको-
 लूककपोतकुक्कुटबृहत्पक्षादिषु त्रिवर्षो वत्सः । शुकचाषखञ्जरीटलाव-
 कसारिकादिषु द्विवर्षो वत्सः । टिट्ठिमितित्तिरमङ्गवाहिकादिक्षुद्रप-
 क्षिष्वेकवर्षो वत्सः । क्रव्यादव्याघ्रगृणालादिमृगवधेषु वानरे च हंस-
 श्येनकङ्कृगृधादिषु जलचरबलाकादिपक्षिषु स्थलचरकाकादिषु मासे
 मयूरे चैतेषां प्रत्येकवधे गौर्देया । अक्रव्यादहरिणादिमृगेषु खञ्ज-
 रीटादिपक्षिषु च वत्सतरी देया सरीसृपेष्वायोदण्डस्तीक्ष्णोभयाग्रः ।
 यद्वा शुके द्विवर्षो वत्सः । क्रौञ्चे त्रिवर्षः । मृगपक्षिषु नपुंसकवधे त्रपु-
 सीसकं माषमानं देयं पलालमारो वा सूकरे घृतकुम्भः । तित्तिरौ तिल-
 द्रोणः । एषु दानाशक्तौ द्रव्यकल्पनया तत्समस्य कृच्छ्रादि कार्यम् ।
 यद्वा दानाशक्तौ गजगण्डभारसाश्वोष्ट्रखरगौरगवयः क्रव्यमहिषमेषादि-
 ष्वमत्या प्रत्येकवधे सार्धकृच्छ्रः । समस्तवधे चान्द्रम् । मत्या प्रत्येक-
 वधे चान्द्रम् । समस्तवधे त्वावृत्तिः । हरिणसारङ्गरुरुवराहसिंहगण्डके-
 सरिव्याघ्रमकरमहामत्स्यग्राहशिंशुमारादीनाममत्या प्रत्येकं कृच्छ्रः ।
 समस्तवधे कृच्छ्रद्वयम् । मत्या प्रत्येकवधे चैवम् । समस्तवधे चान्द्रम् ।
 श्ववृकवानरजम्बूकविड्वराहादिष्वमत्या प्रत्येकं त्रिरात्रम् । समस्तवधे
 कृच्छ्रः । मत्या प्रत्येकवधे चैवम् । समस्तवधे द्विगुणम् । मार्जारसर्पाजग-
 रदुन्दुमनकुलमण्डूकमूषककर्कटशलमसेधागोधाशाल्मककूर्मशशादिष्व-
 मत्या प्रत्येकवधे पादकृच्छ्रः । समस्तवधे कृच्छ्रः । मत्या प्रत्येकं चैवम् ।

हंसादिष्वमत्या प्रत्येकवधे कृच्छ्रः । गृध्रादिषु पादन्यूनकृच्छ्रः । शुका-
दिष्वर्धकृच्छ्रः । मत्या प्रत्येकवधे चैवम् । टिट्ठिमादिषु पादकृच्छ्रः ।
समस्तवधादौ तच्च द्विगुणं सर्वत्र । एकहन्तुविषय एवम् । हन्तुद्वित्वे
तु प्रत्येकं तत्र तत्रोक्तार्थं स्यात् । हन्तुबहुत्वे तु गजादिषु प्रत्येकं कृच्छ्रः ।
हरिणादिषु त्रिरात्रम् । श्वादिषु द्वाहम् । मार्जारादिषूपवासः । टिट्ठिमा-
दिषु नक्तम् । मृतप्रायेष्वमत्या प्रत्येकवधे तु गजादिषु त्रिरात्रम् ।
हरिणादिषु द्वाहम् । खरादिषु चतुर्थकालः । मार्जारादिषूपवासः ।
गृध्रादिषु नक्तम् । शुकादिष्वेकभक्तम् । टिट्ठिमादिषु जले प्राणायामः ।
अविज्ञातसर्वभृगपक्षिषु त्रिरात्रमित्यादिदेशकालजातिशक्तिगुणाद्यपे-
क्षया गुरुविषये लघुविषये च योज्यम् ।

इति हिंसाप्रायश्चित्तम् ।

अथ वृक्षच्छेदनप्रायश्चित्तम्—वृक्षगुल्मलतावीरुर्धा फलपुष्पादिभिरुपयो-
गिनां छेदने गायत्र्यादीनामृचां शतं जपितव्यम् । तावद्वायत्रीजपो वा ।
ओषधीनां ग्राम्यारण्यानां वृथैव छेदने दिवा गोपरिचर्यां कृत्वा रात्रौ
क्षीरं पीत्वैव स्वपेत् । पञ्चमहायज्ञाद्यदृष्टार्थत्वच्छेदने न दोषः ।
कृष्याद्युपकरणादिदृष्टार्थत्वे च न दोषः । चैत्यश्मशानसीमापुण्यस्था-
नदेवालयस्थे वृक्षेऽन्यस्मिन्प्रख्याते वा वृक्षे छेदनं ऋक्शतजपो द्विगुणं
दण्डानुसारेण प्रायश्चित्तं कार्यम् । सर्वत्र शूद्रस्य जपस्थाने दण्डानुसा-
रेण द्विरात्रादि कल्प्यम् । वृक्षच्छेदाभ्यासे चान्द्रादिष्वेकं कार्यम् ।

इति वृक्षच्छेदप्रायश्चित्तम् ।

अथ श्वमार्जारादिदष्टेषु—श्ववृकशृगालखरोष्ट्रविड्वराहकाककुटवानरपुं-
श्रलीक्रव्यादान्त्यजातिभिर्दष्टः शक्तश्चेन्नाभेरधः पयसा द्विरात्रम् ।
अग्निहोत्र्येकरात्रम् । ब्रह्मचारी त्रिरात्रम् । नाभेरूर्ध्वं द्विगुणम् । वक्त्रे
त्रिगुणम् । मस्तके चतुर्गुणम् । यद्वोत्तमाङ्गे समुद्रगनदीस्नानं प्राणा-
यामशतं च कृत्वा घृतेनैकरात्रम् । अशक्तस्य जले प्राणायामत्रयं कृत्वा
घृतेनैकरात्रम् । अत्यशक्तौ गत्वा ब्राह्मणान्प्राणिपत्य तैर्निरीक्षितः
शुध्येत् । अत्यन्ताशक्तौ हिरण्योदकमिश्रं घृतं प्राश्य शुध्येत् । ईषदृष्टे
तु नाभेरधश्चेदापो हिठीयादिभिः स्नानं प्राणायामत्रयं च । नाभेरूर्ध्वं
द्विगुणादि । मार्जारमूषकश्वादिनकुलाश्वाजमहिषीहीनजात्यारण्यमुगै-
र्दष्टे जले दश प्राणायामाः । ईषदृष्टस्य पञ्च । क्षत्रियादेः पादपादन्यून-
नम् । शूद्रस्य तूपवासेन गोदानेन गोमिथुनदानेन वाऽमन्त्रकप्राणायामेन

वा शुद्धिः । ब्राह्मणी दष्टा स्नात्वोदितं ग्रहनक्षत्रं दृष्ट्वा शुध्येत् । कृच्छ्रा-
 दिव्रतस्था दष्टा त्रिरात्रमुपोष्य सघृतं यावकं भुक्त्वा व्रतशेषं समापयेत् ।
 ब्राह्मण्यनुसारेण क्षत्रियादिस्त्रीणां चैवम् । रजस्वला श्वादिदष्टा पञ्च-
 दशरात्रं निराहारा पञ्चगव्येन शुध्यति । नामेरूध्वं मस्तके च द्वित्रिच-
 तुर्गुणादि योज्यम् । श्वादिघ्रातस्य चावलीढस्य च नखैर्विलिखितस्य
 चाग्निः प्रक्षालनमग्निना चोपतापनम् । श्वादिदंशशस्त्रघातादिजनित-
 व्रणे कृमिजनने गवां मूत्रपुरीषेण त्रिसंध्यं स्नानमाचरेत् । नामेरूध्वं
 चेन्निरात्रं पञ्चगव्याशी स्यात् । तत आकण्ठात्पङ्गात्रम् । शिरो-
 व्रणे तु कायम् । तत्र श्वादिदंशव्रणे तदंशप्रायश्चित्तानन्तरमिदं कृमिजन-
 ननिमित्तं प्रायश्चित्तं कार्यम् । शस्त्रादिव्रणे त्वेवमेव त्र्यहं पञ्चगव्याशना-
 दिकम् । क्षत्रियादिषु पादपादह्लासः । अन्यव्रणे कृमिदोषे तूपवासो
 हिरण्यं च दत्त्वा कृच्छ्रेण शुद्धिः । निन्दितार्थोपजीवने चान्द्रादिष्वेकं
 त्रैमासिकं वा । नास्तिक्यं वेदोक्तकर्मनिन्दनम् । तेन जीवनं नास्ति-
 क्यवृत्तित्वम् । नास्तिक्ये सकृत्कृते कृच्छ्रः । नास्तिक्यावृत्तावतिकृच्छ्रः ।
 अभ्यासे चान्द्रादिष्वेकम् । अत्यन्ताभिनिवेशेन बहुकालाभ्यासे
 पञ्चाब्दं ब्राह्मणगृहे मैक्षचर्या ।

अर्थे ब्रह्मलोपे प्रायश्चित्तम्—तत्रोपकुर्वाणो नैष्ठिकश्च त्रैवर्णिकब्रह्मचारी
 स्त्रियं गत्वाऽवकीर्णी भवति तत्र गुरुतल्पे तत्समे च गुरुप्रायश्चित्तमुक्तम् ।
 ततोऽन्यस्त्रियं गत्वा स नैर्ऋतदेवतेन रक्षोदेवतेन चैकाक्षगर्दभेन पशुनाऽ-
 रण्ये चतुष्पथे रात्रौ लौकिकेऽग्नौ पाकयज्ञधर्मेणाऽऽश्वलायनादिपशुकल्प-
 तन्त्रेणेष्ट्वा तस्याजिनमूर्ध्ववालं परिधाय त्रिषवणस्त्रायी लोहितपात्रः
 स्वकर्माऽऽचक्षाणः सप्तगृहभैक्षायण्येकवाराशी वत्सरेण शुध्येत् । एवमशक्तौ
 तु नैर्ऋतं चरुं निरुण्य पक्त्वा कामाय स्वाहा निर्ऋत्यै स्वाहा रक्षोदेव-
 ताभ्यः स्वाहेति हुत्वा होमशेषं समापयेत् । अम्बुव्रतं चरित्वा शुध्येत् ।
 इदं वार्षिकव्रतमश्रोत्रियपत्न्यां वैश्यायां श्रोत्रियपत्न्यां वा कार्यम् ।
 गुणवत्यां च क्षत्रियायां श्रोत्रियपत्न्यां द्विवार्षिकम् । गुणवत्यां
 ब्राह्मण्यां त्रिवार्षिकम् । अमत्याऽवकीर्णी वार्षिकस्थाने ब्रह्महत्याव्रतं
 षण्मासं चीरवासाश्चरेत् । ईषद्याभिचारिण्यां चैवम् । द्विवार्षिकादिष्वम-
 त्याऽर्धम् । अत्यन्तव्यभिचरितासु स्त्रीषु शूद्र्यां सचैलं स्नात्वोदकुम्भं
 दद्यात् । वैश्यायां चतुर्थकालाहारो ब्राह्मणान्मोजयेद्यवसभारं च

गोभ्यो दद्यात् । क्षत्रियायां तु त्रिरात्रोषोषितो घृतपात्रं दद्यात् ।
ब्राह्मण्यां षड्रात्रोषोषितो गां दद्यात् । गोष्ववकीर्णः कायम् । षण्ढायां
पैललभारं सीसं माषं च दद्यात् । स्त्रीसंभोगं विना मत्या रेतो विसृज्य
नैर्ऋतयागमात्रम् । दिवा स्वप्ने चैवम् । कृच्छ्रचान्द्रादिव्रतेष्वतिदिष्ट-
ब्रह्मचर्येषु रेतःस्कन्दने चैतदेव यागमात्रम् । स्वप्ने रेतःस्कन्दने ब्रह्मचारी
स्नात्वाऽर्कमर्चयित्वा पुनर्मामैत्विन्द्रियमित्यृचं त्रिर्जपेत् । वानप्रस्थो
यतिश्च मत्या ब्रह्मचर्यलोपे पराकत्रययुक्तमवकीर्णिव्रतं चरेत् । अमत्या
कृच्छ्रत्रयमुक्तम् । संन्यस्तस्य गार्हपत्यपरिग्रहे षाण्मासिकं कृच्छ्रं कृत्वा
पुनर्जातकर्मादिसर्वसंस्कारैः शुद्धिः पुनःसंन्यासेन । क्षत्रियस्य चान्द्र-
द्वयम् । वैश्यस्य कृच्छ्रत्रयम् । यद्वैतानि ब्राह्मणस्यैव शक्तिसकृदभ्या-
सापेक्षया योज्यानि । अनाशकनिवृत्तानां चैवम् । मरणसंन्यासिनां तु
जलाग्न्युद्धन्धनभ्रष्टानां प्रव्रज्यानाशकच्युतानां विषप्रपनप्राप्तशस्त्राघा-
तच्युतानां च चान्द्रं तप्तकृच्छ्रद्वयं च शक्त्याद्यपेक्षया ज्ञेयम् । आत्म-
त्यागाद्यशास्त्रीयमरणाध्यवसितस्य तावन्मात्रे त्रिरात्रम् । शस्त्रादिक्षते
कृच्छ्रः । दृढक्षते चान्द्रम् । शस्त्रादिमृतस्य पुत्रादयश्चान्द्रं तप्तकृच्छ्रद्वयं
च कुर्युः ।

इत्यवकीर्णप्रायश्चित्तम् ।

ब्रह्मचारी त्वनातुरो गुरुशुश्रूषादिगुरुतरकार्यव्यग्रतया सप्तरात्रं मैक्ष्य-
स्याग्निकार्यस्य वा लोपे कामाच्चावकीर्णोऽस्म्यवकीर्णोऽस्मि कामका-
माय स्वाहा काममवपन्नोऽस्म्यवपन्नोऽस्मि कामकामाय स्वाहेत्याभ्या-
माज्याहुतीर्हुत्वा

समासिञ्चन्तु मरुतः समिन्द्रः सं बृहस्पतिः ।

सं माऽयमग्निः सिञ्चैत्वायुषा च बलेन च ॥

इत्यनेनोपतिष्ठेत् । अव्यग्रतया लोपेऽवकीर्णिव्रतम् । उपनयनानन्तरं
व्रतमध्ये यज्ञोपवीतादीनां नाशे वस्त्रं सूत्रान्तरं वा धृत्वा मनोज्योतिरि-
त्यादिभिर्मनोऽलिङ्गाभिस्त्वमग्रे व्रतपा असीत्यादिव्रतलिङ्गाभिश्चतस्र
आज्याहुतीर्हुत्वा विधिना धारयेत् । असन्नैक्ष्यभोजनेऽभ्युदितेऽस्तमिते
वान्ते दिवास्वप्ने नग्नस्त्रीदर्शने नग्नस्वापे श्मशानमाक्रम्य हयादींश्चाऽऽरुह्य
स्वपूज्यानतिक्रम्याग्निकार्यलोपे चैतैर्जुहुयात् । मणिवासोगवादीनां प्रति-

ग्रहे सावित्र्यष्टसहस्रं जपेत् । स्थावरजङ्गमवृक्षवल्मीकपशुसरीसृपादिप्रा-
णिवधे कूष्माण्डीभिर्होमः । यज्ञोपवीतं विना यज्ञोपवीतमन्यथाकृत्वा वा
भोजने विण्मूत्रोत्सर्गे वा गायत्र्यष्टसहस्रेण सप्राणायामेन शुद्धिः । पाने
त्रिः प्राणायामाः । नग्नमक्षणे षट् प्राणायामाः । भोजने मेहने चैवम् ।
यज्ञोपवीतमेखलाजिनदण्डानां लोपे व्याहृतिहोमं षट् प्राणायामा-
न्कृत्वा पुनर्धारयेत् । संध्याग्निकार्यलोपे स्नात्वाऽष्टसहस्रजपः । भिक्षाट-
नमकृत्वा स्वस्थस्यैकान्नाशनेऽष्टशतजपः । भिक्षां याचित्वैकान्नाशने
न दोषः । गुरुशुश्रूषादिलोपेऽष्टशतजपः । मधुमक्षणे मेध्यमांसमक्षणे च
कृच्छ्रः । मत्या पराकः । अभ्यासे द्विगुणं पुनः संस्कारस्ततो व्रतसमाप-
नम् । तदेव वैद्यकार्थं गुरुच्छिष्टं देयम् । ततो नीरुजो भूत्वा हंसः
शुचिषदित्यादित्यमुपतिष्ठेत् । आज्ञाविघातादि गुरुप्रतिकूलं कर्माऽऽचर-
न्प्राणिपातादिना प्रसाद्यैव शुध्येत् । चोरव्याघ्रादिभयाकुलप्रदेशे महान्ध-
कारे रात्रौ गुरुणा स्वकार्यार्थं प्रेषितः शिष्यो दैवान्मृतश्चेत्स गुरुः
कृच्छ्रत्रयं कृत्वा शुध्येत् । सर्वत्राऽऽरोग्यार्थमौषधपथ्यान्नप्रदाने तदर्थ-
यत्नेन मृते न कश्चिदोषः ।

अथ मिथ्याभिशंसने—यस्तु ब्राह्मणो ब्राह्मणं महापातकाद्यैर्मिथ्याऽभि-
शंसति स मासमम्बुमक्षो नियतेन्द्रियः शुद्धवतीमन्त्रजपशीलः शुध्येत् ।
क्षत्रियाद्यभिशंसनेऽर्धाध्वहानेन कुर्यात् । क्षत्रियाद्या ब्राह्मणाभिशंसने
द्वित्रिचतुर्गुणं कुर्युः । शूद्रस्य जपस्थानेऽमन्त्राः प्राणायामाः । भूताभि-
शंसने तत्तदर्थम् । अतिपातकाभिशंसिनां पादोनम् । अनुपातकाभि-
शंसिनां तदर्थम् । उपपातकाभिशंसिनां ततो न्यूनम् । मिथ्याभिशस्तः
कृच्छ्रं चाऽऽग्नेयं पुरोडाशं वायव्यं पशुं वा कुर्यात् । अतिपातकादिषु
पादपादह्रासः । ज्येष्ठभ्रातुः कनिष्ठभ्रातुर्वा भार्यामनियुक्तोऽमत्या गत्वा
चान्द्रम् । मत्या संवत्सरं ब्राह्मणगृहे मैक्ष्यं चरेत् । रजस्वलां स्वभार्या-
ममत्या सकृद्भूत्वा त्रिरात्रं घृतं प्राश्य विशुध्येत् । अभ्यासे सप्तरात्रम् ।
मत्या सकृच्चेत्सप्तरात्रम् । अभ्यासे कृच्छ्रः । अन्त्यन्ताविच्छिन्नाभ्यासे
त्रैवार्षिकम् ।

अथ रजस्वलानां परस्परस्पर्शने वक्ष्यते—रजस्वले द्वे सैवर्णैकमर्तुके अमत्या
वा मत्या परस्परं स्पर्शं सद्यः स्नाते शुध्यतः । असपत्न्योस्तु सवर्णयो-

१ क. ग. तदैकवैद्यार्थं । क. तदेकवैद्यार्थं । २ ख. ग. शंसिनां तं । ३ ख. ग. घ.
सवर्णे वाऽसवर्णे चैकं ।

योनिगोत्रसंबन्धयोरमत्या स्पर्शं स्नानमात्रम् । मत्या त्वेकरात्रं निराहार-
 रत्वं पञ्चगव्याशनत्वं च । असंबन्धयोः सवर्णयोः स्पर्शने त्वमत्या
 स्नात्वा दिनान्ते रात्र्यन्ते वा शुद्धिः । मत्या स्पर्शं त्वा शुद्धेर्नाश्रीयात् ।
 भुक्तौ प्रतिदिनमुपवासस्तावद्दानं वा । असवर्णयोस्तु स्पर्शं ब्राह्मणी-
 शूद्रयोर्मत्या स्पर्शं ब्राह्मण्याः कृच्छ्रः । शूद्रायाः पादकृच्छ्रस्तावद्दानं
 वा । ब्राह्मणीवैश्ययोः स्पर्शने ब्राह्मण्याः पादोनकृच्छ्रः । वैश्यायाः
 पादकृच्छ्रः । ब्राह्मणीक्षत्रिययोः स्पर्शं ब्राह्मण्याः कृच्छ्रार्धम् । क्षत्रि-
 यायाः पादकृच्छ्रः । क्षत्रियाशूद्रयोः स्पर्शं क्षत्रियायास्त्रिरात्रम् । शूद्राया-
 स्त्वहोरात्रम् । क्षत्रियावैश्ययोः स्पर्शं क्षत्रियायास्त्रिरात्रम् । वैश्याया
 अहोरात्रम् । वैश्याशूद्रयोः स्पर्शं च वैश्यायास्त्रिरात्रम् । शूद्राया-
 श्रतुर्थकाल आहारः । एषां वर्णस्त्रीणां मत्या स्पर्शं शुद्धिः । अमत्या
 स्पर्शं तु सवर्णमधिकवर्णां वा स्पृष्ट्वा स्नायादेव । हीनवर्णां स्पृष्ट्वा
 स्नात्वाऽऽशुद्धेर्नाश्रीयात् । यदि मुङ्क्ते पश्चात्प्रतिभोजनमुपवासस्तावद्दानं
 वा । विप्रभोजनं वा प्रत्याम्नायं वा कुर्यात् । चाण्डालाद्यन्तावसायिप-
 तितशवादीनां मत्या स्पर्शने तदाद्यहान्यमुञ्जानाऽतिक्रम्य प्रायश्चित्तं
 कुर्यात् । तच्च प्रथमेऽह्नि स्पर्शं त्रिरात्रम् । द्वितीये द्यहम् । तृतीये
 त्वहोरात्रम् । परतो नक्तम् । प्रथमादिदिने यदि मुङ्क्ते पश्चाच्चान्द्रं
 पादपादन्यूनं दिनानुसारेण कुर्यात् । अमत्या चाण्डालादिस्पर्शं तु
 तदाद्यनाहारा कालेनैव शुध्येत् । तत्र प्रथमादिदिने भुक्तौ प्रत्या-
 म्नायः । मत्या रजकादिस्पर्शं तु चाण्डालादिस्पर्शवत्किंतु प्रथमादिदिने
 भुक्तौ कृच्छ्रद्वयमर्धार्धन्यूनं कुर्यात् । अमत्या रजकादिस्पर्शं च तदाद्ये
 भुञ्जाना कालेनैव शुद्धा । भुक्तौ प्रत्याम्नायः । श्ववृकशृगालवानरख-
 रोष्ट्रविड्वराहकाककुक्कुटपश्वनखोच्छिष्टशूद्राणां मत्या स्पर्शने तदाद्य-
 हान्यमुञ्जाना नीत्वा प्रायश्चित्तं कुर्यात् । प्रथमेऽह्नि स्पर्शं द्यहम् । द्विती-
 येऽहोरात्रम् । तृतीये नक्तम् । तत एकभक्तम् । तत्र प्रथमादिदिने भुक्तौ
 कायं पादपादन्यूनं कुर्यात् । अमत्या श्वादिस्पर्शं तदाद्यभुञ्जानैकका-
 लेन शुध्येत् । भुक्तौ प्रत्याम्नायः । चाण्डालरजकरजस्वलादिसंस्पृष्टानां
 मत्या स्पर्शने हीनामेध्यादिमलोच्छिष्टस्पर्शने च तदाद्यहान्यमुञ्जानाऽ-
 तिक्रम्य प्रथमेऽह्नि स्पर्शं तूपवासम् । द्वितीये नक्तम् । तृतीये त्वेकभक्तम् ।
 प्रथमादिदिने भुक्तौ त्रिव्येकरात्रोपवासनैकभक्तानि । अमत्या तत्स्पृ-

दस्पर्शनेऽभुक्त्वा कालेन शुध्येत् । भुक्तौ प्रत्याम्नायः । अशक्तावमत्या
 चण्डालरजकश्वादस्पर्शने सद्यः स्नात्वा शुचिराचन्द्रदर्शनात् । अत्य-
 शक्तौ स्नात्वा दिवैवाद्यात् । उच्छिष्टयो रजस्वलयोरमत्या स्पर्शने ब्राह्मणी
 कृच्छ्रेण त्रिरात्रेण शुध्येत् । शूद्री दानैरुपोषिता । अन्यवर्णस्त्रीणामनु-
 च्छिष्टानां मत्या परस्परस्पर्शने यत्प्रायश्चित्तं तदेवोच्छिष्टानाममत्या
 स्पर्शनेऽपि मत्योच्छिष्टयोः स्पर्शने तत्तद्विगुणम् । उच्छिष्टान्द्विजात्रज-
 स्वला स्पृष्टा चेदधस्तनोच्छिष्टेषूपवासः । ऊर्ध्वोच्छिष्टस्पर्शने त्रिरात्रम् ।
 रजस्वला भुञ्जानोच्छिष्टा च चण्डालादिस्पर्शने तदाद्यहान्यभुञ्जाना
 नीत्वा प्रथमेऽह्नि स्पर्शं गोमूत्रयावकं षड्रात्रं द्वितीये चतुरात्रं तृतीये
 द्विरात्रं चतुर्थे तूपवासं कुर्यात् । (*अत्र प्रथमादिदिने भुक्तौ कायोत्तरं
 चान्द्रम् । उच्छिष्टा रजस्वला रजकादीन्स्पृष्ट्वा तदाद्यभुञ्जानैव स्थित्वा
 प्रथमादिदिने स्पर्शं पश्चरात्राद्येकैकदिनह्नासं कुर्यात् ।) अत्र प्रथमादिदिने
 भुक्तौ त्रिरात्रोत्तरं कायम् । श्वादस्पर्शं (+तदाद्यभुक्त्वा चतुरात्रादि । प्रथ-
 मादिदिने भुक्त्वोपवासोत्तरं त्रिरात्रम् । चण्डालरजकादिसंस्पृष्टस्पर्शने)
 तदाद्यभुक्तैव त्रिरात्रादि । प्रथमादिदिने भुक्तौ प्रत्याम्नायः । सर्वत्राशक्तौ
 काश्चनं दद्यात् । विप्रेभ्यो भोजनं चान्यद्वा तत्समं कुर्यात् । ततः शुद्धा
 भवत्विति वाचयेत् । प्रायश्चित्ते समुत्पन्ने रजोदृष्टौ त्वेवम् । सपत्नीं
 रजस्वलां स्पृष्ट्वा रजोदृष्टौ सद्यः स्नात्वा शुध्येत् । सपत्नीं सवर्णामधिक-
 वर्णां वा स्पृष्ट्वा रजोदृष्टावेकरात्रं निराहारत्वम् । हीनवर्णां स्पृष्ट्वा
 रजोदृष्टावा शुद्धेरभुक्त्वाऽदृष्टौ पश्चगव्याशनं च । चण्डालादिसूतिकाश-
 वतत्परिचारादिस्पर्शं रजोदृष्टावा शुद्धेरभुक्त्वा पश्चाच्चान्द्रम् । रजकादि-
 स्पर्शं रजोदृष्टावा शुद्धेरभुक्त्वा पश्चात्कायम् । श्वादस्पर्शं रजोदृष्टौ
 त्रिरात्रम् । अन्यास्पृश्योपहतौ रजो दृष्टोपवासः । अप्रायत्ये समुत्पन्ने
 रजोदृष्टौ सर्वत्र बालापत्याया अभिषेके कृते भुक्तिः स्यात् । पश्चादश-
 नप्रत्याम्नायो वा । कृच्छ्रचान्द्रादिव्रतस्थायाः स्नाने नैमित्तिके प्राप्ते रजो-
 दृष्टौ पात्रान्तरिततोयेन स्नानं ततोऽद्भिः सिक्तगात्रा वस्त्रनिष्पीडनमन्य-
 वस्त्रधारणं वा कृत्वा व्रतं समाचरेत् । शावाशौचे प्रसवाशौचे वा मध्य

* धनुश्चिह्नान्तर्गत ग्रन्थः क. पुस्तके नास्ति । + धनुश्चिह्नान्तर्गत ग्रन्थः क. पुस्तके नास्ति ।

क्तुदर्शने त्वस्नात्वा भोजनं शुद्धावुपवासः । आर्तवमध्ये जातमृताशौचे तु स्नात्वा भोजनम् । रजस्वलाया व्रतस्थाया रजस्वलाभिभाषणे तूप-
वासः । रजस्वलां स्पृष्ट्वा भुक्त्वा रजस्वलाऽऽस्नानकालं नाश्रीयत् । व्रत-
स्थायाः पञ्चगव्यं च । रजस्वला श्वादिदृष्टा पञ्चरात्रं निराहारा पञ्च-
गव्येन शुध्येत् । प्रारब्धे दीर्घव्रते रजोदृष्टौ व्रतलोपो नास्ति । हविष्य-
भोजनादि कुर्यात् । दिवार्चनादिकं च कारयेत् । शुद्धिकाले त्वस्नात्वा
मुक्तौ कार्यं मत्या चान्द्रम् । शेषं मक्ष्यामक्ष्यप्रायश्चित्तं वक्ष्यते । रज-
स्वला त्वञ्जनाभ्यञ्जनस्नानप्रचारदन्तधावननखनिकृन्तनरज्जुस्पर्शव्यापा-
रताम्बूलमधुमांसगन्धपुष्पदिवास्वापग्रहनक्षत्रनिरीक्षणादि वर्जयेत् ।
पाणौ मृन्मये वा खर्परे वा भुञ्जीतेत्यादिनियमस्था च । अत्र सर्वत्र
स्नानं सचैलम् ।

इति रजस्वलाविधिः ।

अथ सुतानां विक्रये—तत्र कन्याविक्रये देवगृहप्रतिश्रयोद्यानारामपुष्क-
रिणीसमाप्रपापुण्यसेतुविक्रये च चान्द्रादिष्वेकम् । अथवा त्रैमासि-
कम् । आपदि तप्तकृच्छ्रः । अत्यन्तापदि सांतपनम् । पुत्रवि-
क्रये सर्वं द्विगुणम् । एकापत्यपुत्रविक्रये त्रिषवणस्नाप्यधःशायी
चतुर्थकालाशी वत्सरेण शुध्येत् । कन्याविक्रये तदर्धेन शुद्धिः ।

अथायाज्ययाजने—तत्र व्रात्ययाजकश्च व्रात्योपनेताऽध्यापकश्च हीनया-
जकः शूद्रान्त्येष्टिकर्मयाजकश्च वेदविक्रयी तत्स्करव्यतिरिक्तशरणागत-
घाती तत्स्करात्यागी चाभिचारी वा मत्या कायादिषु योग्यं कृच्छ्रादि-
त्रयं कुर्यात् । मत्या व्रात्यस्योपनयनाध्यापनयाजन उद्दालकव्रतं कुर्यात् ।
तच्चोक्तं व्रात्यप्रायश्चित्तेषु । अतिक्रान्तोपनयनो व्रात्यः । द्यहादिद्वाद-
शाहान्तोऽहर्गणो यज्ञोऽहीनः । औव्रताव्यभिचारे? दोषमाहुः । ब्राह्मणा-
द्यन्त्येष्टिकर्मसु लोभाद्याजने कायातिकृच्छ्रतप्तकृच्छ्राः । अभ्यासे द्विगु-
णम् । अत्यन्ताभ्यासे त्रिगुणम् । शूद्राद्ययाज्ययाजने त्वमत्या चान्द्रा-
दिष्वेकम् । अशक्तौ कृच्छ्रः । मत्या त्रैमासिकम् । अभ्यासे द्विगुणादि ।
परिवेदकादियाजने चैवम् । पर्वचाण्डालादिश्रोत्रावकाशाद्यनध्यायेष्व-
ध्ययनं वेदविप्लवः । उत्कर्षहेतोरधीयानस्य किं पठसि नाशितं त्वये-
त्येवं पर्यनुयोगदानं च वेदविप्लवः । चाण्डालादिपतितश्रवणे वेदपाठ

उपवासः । मत्या त्रिरात्रमभ्यासे कृच्छ्रः । अत्यन्ताभ्यासे कृच्छ्रत्रयम् । स्मृतिधर्मशास्त्रव्याख्याने तु तदर्धम् । नित्यानध्यायेष्वध्ययने यावदधीतं तावज्जलेऽधमर्षणवत्स्वाध्यायं जपेत् । अशक्तौ जपेदनधमर्षणवत् । अत्यशक्तौ स्थले जपेत् । तावदन्यमन्त्रं वा जपेत् । मत्या प्रत्यनध्याय-
मुपवासः । अशुद्ध्यध्ययने चैवम् । नैमित्तिकानध्यायेऽध्ययने चैवम् । दुर्बोधस्य तदर्धम् । ग्रामकुक्कुटमूषकमण्डूकाद्यन्तरागमने नक्तम् । गवा-
श्वमहिषादिपशुस्त्रीशूद्राद्यन्तरागमन उपवासः । मार्जारसर्पनकुलपञ्च-
नखजात्यन्तरागमने त्रिरात्रं त्रिकालस्नानं च । श्ववृकशृगालवानररज-
कादीनामन्तरागमनेऽध्ययने कायम् । खरवराहोष्ट्रादिचण्डालसूतिको-
दक्याशवाद्यन्तरागमने कायत्रयम् । गौरगवयाजादिब्रह्मोद्धतनास्तिका-
दीनां गमने त्रैमासिकम् । शशमेषश्वपाकादिगमने षाण्मासिकम् ।
गजगण्डसारसव्याघ्रमहापातकिंकृतघ्नादिगमनेऽध्ययने कृच्छ्राब्दं ताव-
त्कालमनध्यायश्च । सर्वत्र मत्याऽर्धम् । अन्तरागमने तदानीमेव स्वाध्या-
यविरमणे न प्रायश्चित्तमित्येक इत्यादि च ज्ञेयम् । पितृमातृगुरुणाम-
कारणत्यागे चान्द्रादिष्वेकं त्रैमासिकं वा । अधिकं मासं षष्ठान्नकालत्वं
संहिताजपो वाऽधिकः । सुतत्यागे चान्द्रादिष्वेकं त्रैमासिकं वा बान्ध-
वत्यागे चैवम् । कन्यादूषणे सवर्णानां चान्द्रं त्रैमासिकम् । असवर्णा-
नामानुलोम्ये पयोमासः कायं वा । प्रातिलोम्ये क्षत्रियवैश्ययोः कृच्छ्रा-
ब्दम् । शूद्रस्य वध एवम् । अत्यन्ताभ्यासे सवर्णस्यापि कृच्छ्राब्दम् । सोम-
विक्रयी वृषलीपतिः कौमारदारपरित्यागी शूद्रयाजको गुरोः प्रतिहन्ता
सुरामद्यपो ब्राह्मणवृत्तिघ्नः कूटव्यवहारी पतितव्यवहारी मित्रध्रुक्प्रति-
रूपकवृत्तिश्चामत्या त्रैमासिकव्रतं मत्या षाण्मासिकमभ्यासे कृच्छ्राब्दं
कुर्यात् । देवताद्याराधनार्थं गृहीतव्रतलोपेऽन्यस्मिन्व्रतलोपे वाऽऽत्मार्यं
पाके च मद्यपस्त्रीनिषेवणे च चान्द्रादिष्वेकं त्रैमासिकम् । अधी-
ताध्ययनत्यागे व्यसनासक्त्या कृते ब्रह्महत्यासमानवत् । सच्छास्त्रा-
द्यभ्यासासक्त्या बहुकुटुम्बरक्षात्यागे चान्द्रादिष्वेकं त्रैमासिकं वा ।
अत्यन्तापदि ब्रह्मोज्झस्य कायम् ।

अथाग्नित्यागे—नास्तिक्यादग्नित्यागे मासद्वये कायं कृत्वा पुनःसंधा-
नम् । मासचतुष्टयेऽतिकृच्छ्रः । षाण्मासके पराकः । षण्मासादूर्ध्वं
चान्द्रादिष्वेकं संवत्सरादूर्ध्वं त्रैमासिकं द्वैमासिकं वा । आलस्यादिना

त्यागे तु द्वादशाहातिक्रमे त्र्यहमुपवासः । मासातिक्रमे द्वादशोपवासाः ।
पयोमक्षणं वा । प्रमादादिना त्यागे त्वात्रिरात्रं द्वादश लघुप्राणायामाः ।
आषट्प्रात्राद्विंशतिः । आद्वादशरात्रात्पञ्चाशत् । आविंशतिरात्राच्छतं
प्राणायामाः । आत्रिंशद्रात्रादुपवासः । आषट्प्रात्रात्रात्रिरात्रम् । आसं-
वत्सरात्कायम् । अतःपरं प्रत्यब्दं च कायम् । सर्वत्र यावत्कालमहोमी
च तावद्द्रव्यं दद्यादित्याहुः । संवत्सरादूर्ध्वमग्निहोत्रत्यागे चान्द्रं कृत्वा
पुनराधानम् । द्विवर्षत्यागे चान्द्रं सोमायनं चान्द्रद्वयं वा । त्रिवर्षत्यागे
कृच्छ्राब्दं गोदानं पुनराधानं च । स्त्रीजीवने हिंसाजीवने वश्याद्यर्थेष-
धिजीवने वा हिंसार्थयन्त्रविधाने च चान्द्रादिष्वेकं वा । द्यूतमृगयादि-
व्यसनेषु चैवम् । अनृतवाक्तस्करो राजसेवको वृक्षारोपकवृत्तिर्गर्दोऽ-
ग्निदोऽश्वगजारोहणवृत्ती रङ्गोपजीवी श्वागणिकः शूद्रोपाध्यायो वृष-
लीपतिर्माण्डको नक्षत्रोपजीवी श्ववृत्तिर्ब्रह्मजीवी चिकित्सको देवलः
पुरोहितः कितवो मध्यपः कूटकारकोऽपत्यनरपशुविक्रेता चेत्याद्या अमो-
ज्यान्नास्तेषामन्नाशने ब्राह्मण्यमिच्छन्तो द्रव्यं त्यक्त्वा त्रैमासिकं कुर्युः ।
बहुकाले द्रव्यं त्यक्त्वा चतुर्थकालाहारास्त्रिषवणस्नायिनोऽब्दं चरि-
त्वाऽन्ते देवपितृतर्पणं गवाहिकं च दत्त्वा शुध्येयुः । श्वागणिकः श्वग-
णजीवी । माण्डकस्तूर्यादिजीवी बन्दी वा । श्ववृत्तिः सेवकः । ब्रह्म-
जीवी मौल्येन द्विजकर्मकर्ता । आत्मविक्रये शूद्रसेवायां च चान्द्रा-
दिष्वेकं त्रैमासिकं वा । बहुकालं शूद्रसेवायां चतुर्थकाले मितमोजिन-
स्त्रिकालस्नायिनः स्थानासनाभ्यां विहरन्तस्त्रिभिर्वर्षैः शुध्येयुः । समु-
द्रयाने ब्राह्मणन्यासहरणे सर्वपण्यैर्व्यवहरणे भूम्यनृते चैवम् । हीनसख्ये
चान्द्रेष्वेकं त्रैमासिकं वा । अहीनसख्यभेद उपोष्य पयःपारणम् ।
हीनयोनिनिषेवणे चान्द्रादिष्वेकं त्रैमासिकं वाऽनुक्तौ । तत्र त्वमत्या
ब्राह्मणो राजन्यां पूर्वोढां गत्वा कायम् । वैश्यां पूर्वोढां गत्वा कृच्छ्रम् ।
शूद्रां पूर्वोढां गत्वा त्वतिकृच्छ्रम् । क्षत्रियो वैश्यां पूर्वोढां गत्वा
कायम् । शूद्रां पूर्वोढां गत्वा कृच्छ्रम् । वैश्यः शूद्रां पूर्वोढां गत्वा
कायम् । मत्या चान्द्रादिष्वेकम् । ब्राह्मणादिषु योग्यं योज्यम् ।
साधारणस्त्रीगमने पशुवेश्यामिगमने त्वमत्या कायमभ्यासे चान्द्रादि-
ष्वेकम् । मत्या कुशतप्तमुदकं सप्तरात्रं सकृत्पिबेत् । अभ्यासे त्रैमा-
सिकम् । अत्र प्रतिनिमित्तं नैमित्तिकप्रायश्चित्तस्याऽऽवृत्तिर्नास्ति किंतु

मत्या गमनाभ्यासेऽहर्गुणवृद्धिर्मासादवाक् । ततो मासगुणवृद्धिर्याव-
द्वन्द्वम् । ततोऽब्दगुणवृद्धिर्यावत्पापमेवमाचरेत् । अमत्या गमनेऽभ्यासे
तु सकृत्कृते यत्प्रोक्तं त्रिभिर्दिनैस्तत्रिगुणं मासात्पञ्चगुणम् । षणमा-
सात्तु दशगुणम् । अब्दात्पञ्चदशगुणम् । त्र्यब्दाद्विंशतिगुणम् । ततोऽप्येवं
प्रकल्प्यम् । एवमुपपातकाभ्यासे । महापातकाभ्यासे तु सकृत्कृते यत्प्रो-
क्तं तद्वितीये द्विगुणं तृतीये त्रिगुणं चतुर्थे निष्कृतिर्नास्तीत्येवमादि-
कम् । साधारणगमने तज्जन्मप्रभृत्यनुबन्धतोऽनवच्छिन्नाभ्यासे गुरुतल्प-
घतम् । अनाश्रमी त्वाश्रमासंभवे संवत्सरे कायं कृत्वाऽऽश्रममुपेयात् ।
द्वितीयेऽब्देऽतिकृच्छ्रः । तृतीयेऽब्दे कृच्छ्रातिकृच्छ्रः । अत ऊर्ध्वं चान्द्रम् ।
संभवेऽनाश्रमी प्रथमेऽब्दे चान्द्रादिष्वेकम् । यद्वा त्रैमासिकम् । ततोऽ-
ब्दाच्चतुर्गुणं योज्यम् । परपाकरुचित्वेऽसच्छास्त्राधिगमन आकराधि-
कारित्वे मार्याविक्रये च चान्द्रादिष्वेकं त्रैमासिकं वा ।

इति स्मृत्यर्थसार उपपातकप्रायश्चित्तम् ॥

अथासत्प्रतिग्रहे—तत्र प्रतिग्रहस्यासत्त्वं जातिदुष्टचाण्डालादेः कर्मदु-
ष्टपतितावेश्व भवति । कुरुक्षेत्रादिदेशे ग्रहणादिकाले च । स्वरूपतोऽपि
सुरामद्यमहिषीकृष्णाजिनकालपुरुषमृतशय्योभयमुख्यादेरसत्त्वम् । तत्र
पतितादेर्मेष्यादिप्रतिग्रहे ब्रह्मचर्यवान्गोष्ठे वसन्प्रत्यहं सावित्रीत्रिसहस्रं
जपन्पयोवृत्तिर्मासेन शुध्येत् । न्यायवृत्तिर्ब्राह्मणादेः सकाशान्निषिद्ध-
मेष्यादिप्रतिग्रहे पतितादेरनिषिद्धभूम्यादिप्रतिग्रहे च चान्द्रम् । पवि-
त्रेष्टिर्वा मित्रविन्देष्टिर्वा । गायत्रीलक्षजपो वा । अभ्यासे मासमप्यु-
वसन्षष्ठे काले पयोमक्षयो मासान्ते विप्रान्संतर्प्य शुध्येत् । पतितादेः
कुरुक्षेत्रग्रहणादौ मेष्यादिप्रतिग्रहे चैवम् । सर्वत्रानुक्तौ दातृदेशकाल-
द्रव्येष्वदुष्टेषु द्वादशनिष्कप्रमाणद्रव्यप्रतिग्रहे कायम् । एवं सर्वत्र द्रव्या-
नुसारात्प्रायश्चित्तवृद्धिर्ह्यसौ । दातृदेशकालद्रव्येष्वन्यतरदोषे प्रायश्चि-
त्तस्यैकैकवृद्धिः । मणिवासोगवादीनामल्पद्रव्याणां प्रतिग्रहेऽष्टसहस्र-
जपः । ततोऽल्पेऽल्पं भिक्षामात्रप्रतिग्रहे पुण्यमन्त्रमुच्चरेत् । प्राय-
श्चित्तं सर्वं द्रव्यं त्यक्तवैव कार्यम् । द्रव्ये विद्यमाने प्रायश्चित्ता-
धिकारो नास्ति ।

अथामक्ष्यमक्षणे प्रायश्चित्तम्—तत्र स्वभावदुष्टलशुनपलाण्डुगृञ्जनछत्रा-
कविड्वराहग्रामकुक्कुटानाममत्या सकृद्भक्षणं सातपनम् । अभ्यासे

यतिचान्द्रायणम् । मत्यां सकृच्चैवान्द्रायणम् । अभ्यासे तु सुरापानस-
मवत् । पलाण्डादिसमे पूलिमेदे दीर्घपत्रपिच्छगन्धमहौषधिपण्यवृन्ता-
कपरारिकयवनेष्टेषु छत्राकमेदकवुकादौ चैवम् । अभ्यासे चान्द्रावृत्तिः ।
अत्यन्ताभ्यासे तु सुरापानसमवत् । एतेषु बलात्कारेण भक्षणे तदेकवेद्ये
च सावित्र्यष्टसहस्रेण मूर्ध्नि संततजलबिन्दुपातेनोपवासेन च शुद्धिः ।
सर्वत्र च्छदितेषूक्तार्थम् । गन्धवर्णरसैर्लशुनादिसमेषु सांतपनम् । यति-
व्रतिब्रह्मचारिणां तप्तकृच्छ्रादि । खट्वाख्यं पक्षिणं कुसुमं वार्ताकं
कुम्भीतकं शिशुं भूतुणं खुखण्डकवकं कृष्णसर्पं तन्दुलीयकं नालि-
कानालिकेरीखट्वाख्यशाकानि कालिन्दबावककुम्भीकेषु वर्तुलालाब्बा-
रकण्टकीकुसुमभरक्तशिशुकोविदारश्लेष्मातकनालिकक्षुद्रश्वेतकञ्चुकिवृ-
न्ताकानि पोतिकाकेतुकखट्वाख्यकवकशणपुष्पशालमलीषु चान्येषु
कन्दुदुर्गन्धविट्कन्दमूलादिषु व्रश्चनोद्भवेषु लौहितवृक्षनिर्यासादिषु रेतो-
विण्मूत्रेषु करनिर्मथिते दधि च बहिर्वेदकत्विजश्च पुरोडाशेषु भक्षणे
त्वमत्या सकृच्चैदुपवासः । आवृत्तिरभ्यासे मत्या त्रिरात्रम् । अभ्यासे
कायम् । अत्यन्ताभ्यासेऽतिकृच्छ्रोऽत्यन्तानवच्छिन्नाभ्यासे तप्तकृच्छ्रः
पुनरुपनयनं च । अन्यथा पतेत् । नील्यास्त्वमत्या सकृद्भक्षणे
चान्द्रम् । विप्रस्याभ्यासे चाऽऽवृत्तिरत्यभ्यासे पतनम् । शैवसौरनिर्मा-
ल्यनैवेद्यभक्षणे चान्द्रम् । अभ्यासे द्विगुणम् । मत्याऽभ्यासे सांतपनम् ।
अन्यनिर्माल्ये त्वनापद्येवम् ।

अथ जातिदुष्टेषु—संधिनीयमसूस्पन्दिन्यनिर्दशामेध्यसेविमृतवत्सागवा-
मनिर्दशजामहिष्योश्च क्षीरेष्वेकशफेषु महिषीवर्जितारण्यमृगाणामजाव-
र्जितद्विस्तनीनां च पाने दधितत्संभववर्जितशुक्तेषु चामत्योपवासो-
मत्या त्रिरात्रम् । अविखरोष्ट्रवानरविड्बराहश्वापदक्षीरेष्वमत्या सांत-
पनम् । मत्या तप्तकृच्छ्रः । अभ्यासे चान्द्रं पुनरुपनयनं च । वपनमेख-
लादण्डमैक्ष्यव्रतानि सर्वत्र पुनःसंस्कारे निवर्तन्ते । अत्यभ्यासे पतनम् ।
ब्रह्मचार्यादेः कृच्छ्रस्तप्तकृच्छ्रो वा । शुक्ते दधि सविकारं भोज्यम् ।
द्विस्तनेष्वाजमारण्येषु माहिषं च । कपिलाक्षीरादिषु क्षत्रियादेस्तथैव
सर्वत्र निषिद्धक्षीरविकारेषु चामत्या द्विरात्रं यावकम् । मत्या षड्वारत्रम-
भ्यासे द्विगुणम् । विड्बराहग्रामकुक्कुटसमानजातीयव्यतिरिक्तपक्षिमां-
सादिष्वजामहिषमृगाणां मृलोष्टकेशनखकीटपतङ्गकृमिजलचरास्थिरक्त-

मत्स्यकण्टकमत्स्यास्थिमक्षणे रक्तवमने चामत्यापवासो मत्या त्रिरात्रम् । मांसमाण्डपकान्नाशने कुशपकं पयस्सहम् । व्रतिनः केशादौ मुखमात्र-
प्रविष्टे तप्तघृतं वा ब्राह्मीरसं वा पिबेत् । अन्ने भोजनकाले मक्षिकाके-
शादिदूषितेऽनन्तरमपः स्पृशेत् । तच्चान्नं मस्मना वा मृदा वाऽम्बुना
वा स्पर्शयेत् । अस्थना दूषिते स्नानं घृतप्राशनं च रक्तादिदृष्टौ तूपवासो
मुखे दृष्टौ त्रिरात्रम् । भुक्तौ ब्राह्मीरसो जले कुशोदकम् । सर्पसरीसृप-
भूषकमार्जारकृकलासकुक्कुटनकुलमण्डूकगृद्धिमयूरक्रव्यादविषभिदमुद्गर-
कुलीरशिशुमारमकरवक्त्रसर्पमुखमत्स्यविकृतमुखगृद्धपक्षिणां मेध्यत्वेऽ-
प्याममांसे च वृथामांसमक्षणे च नियुक्तमांसवर्जने चामत्या त्रिरात्रम् ।
मत्याऽतिकृच्छ्रः । प्रमादे तूपवासो वमने सद्यः स्नानं पञ्चगव्यं च ।
विड्वराहग्रामकुक्कुटसमानक्रव्यादनरवानरकपिश्वगोमायुवृकदंष्ट्रिपञ्च-
नखसिंहव्याघ्रश्वापदगजाश्वोद्वस्वरैकशफानामुभयतोदन्तानां काकबला-
कामासगृध्रजालपदचक्रविष्किरपुण्डरीककपिश्रलचक्रपशुपादकुक्कुट-
सारिकाकामचक्रहंसप्लवचक्रवाककारण्डवचटककपोतपारावतपाण्डुशुक-
सारिकासारसटिट्टिमोलूककङ्करक्तपादतिक्षिरचाषकोकिलसलहिकुटचार-
मद्गलविड्मक्रौञ्चश्येनखञ्जरीददावाघाटभूलिङ्गवागुलादीनां मत्स्यानां
च मांसानां सौनस्थानं गतानां च शुष्कमांसानां च तेषां विण्मूत्रशुक्ररक्त-
व्रसामज्जानां च तदुच्छिष्टानां च मक्षणे वाऽमत्या कायमभ्यासे महा-
सांतपनम् । मत्या तप्तकृच्छ्रोऽभ्यासे चान्द्रम् । अत्यन्ताभ्यासे पतनम् ।
तेषां कर्णविदूषभृतिमलषट्केऽर्धं कल्प्यम् । ब्रह्मचार्यादिर्मधुमांसादि-
मक्षणे लौकिकं त्रिरात्रं कायं पुनरुपनयनं वा ततो व्रतसमापनम् ।
तदेकवैद्यार्थं गुरुच्छिष्टं मक्ष्यम् । गवां मूत्रादि मेध्यमजानामुच्छिष्टं च ।

अथाशुचिसंस्पृष्टमक्षणे—तत्रोच्छिष्टमक्षणे तावच्छ्रवकाकादिपक्षिश्वाप-
दाखुबिडालनकुलोच्छिष्टे भूयस्यन्नरसे जग्धे केशाद्यवपन्ने च देवद्रो-
ण्यादौ द्रव्यसंस्काररहिते वाऽमत्या चेद्ब्राह्मीं सुवर्चलामेकरात्रं पिबेत् ।
मत्या चेत्त्रिरात्रम् । अल्पद्रव्ये चेदमत्याऽभ्यासेऽतिकृच्छ्रः । मत्याऽभ्यासे
पक्षं यावकं व्रतम् । ब्रह्मक्षत्रियवैश्यशूद्रोच्छिष्टे तु ब्राह्मण एकत्रिपञ्चसत्त-
रात्राणि पञ्चगव्यं पिबेत् । अभ्यासेऽप्येषामावृत्तिः । मत्या भोजने तु
तान्येव शुद्धोपवासादीनि कुर्यात् । मत्याऽभ्यासे कायातिकृच्छ्रतप्तकृच्छ्र-
चान्द्राणि । क्षत्रादौ पादं ह्वासयेत् । माण्डस्थेऽन्ने केशपिपीलिकामेध्यसे-
विकीटैरुपहृते तावन्मात्रमुद्धृत्य मस्मताम्रवैडूर्यहिरण्यरजतादिभिर्गो-
षालैर्दर्मयुक्तेन वारिणा शेषं प्रोक्षयेत् । हस्तस्थमेवंभूतं त्यजेत् । मुखस्थं

निष्ठीव्यं घृतं प्राश्रीयत् । मनुष्यरेतोविण्मूत्रभक्षणे वर्णास्तसकृच्छ्रा-
तिकृच्छ्रकायत्रिरात्राणि कुर्युः । मत्या चान्द्रतसकृच्छ्रकायान्पुनः
संस्कारं च । अलेह्यापेयचाण्डालाद्यन्त्यान्ने चैवम् । चण्डालः श्वपाकः
क्षत्ता सूत्रो वैदेहको मागध इत्याद्या अन्त्याः । तदन्नभोजने चैवम् ।
अन्त्यानां भक्तशेषं भुक्त्वा वर्णा यतिचान्द्रं कार्यं तदर्थं पादं च कुर्युः ।
अन्योच्छिष्टभक्षणे तु चान्द्रं महासांतपनं षड्रात्रं त्रिरात्रं च कुर्युः ।
अभ्यासेऽत्यभ्यासे वा द्विगुणं त्रिगुणं निरन्तरे पतनम् । आमग्रहे त्वर्धम् ।
तदुच्छिष्टभोजने द्विगुणम् । सहभोजने त्रिगुणम् । मत्याऽभ्यासे पतनम् ।
दीपोच्छिष्टतैलं रात्रौ रथ्यादूषितं चाभ्यङ्गशिष्टं च भुक्त्वा नक्तं चरेत् ।
पीतावशिष्टमुखनिर्गतपाने मत्याऽभ्यासे चान्द्रं पराकं वा कुर्यात् ।
पीतावशिष्टमात्रपाने वामहस्तेन च पाने तद्वर्धम् ।

अथाशुचिद्रव्यसंस्पृष्टभक्षणे—तत्र केशकीटाद्यवपन्ने नीलीलाक्षाम्नाय्वास्थि-
चर्मरक्तमांसवसामज्जासुराशुक्रविण्मूत्रसंस्पृष्टे महापापावेक्षिते दुष्टपक्ष्यु-
च्छिष्टे विड्वराहाद्युच्छिष्टे गवाघ्राते शुष्के पर्युषिते वृथापक्के देवपित्रार्थान्ने
होमार्थेषु चामत्या भक्षणे पाने चोपवासः पञ्चगव्यं च सर्वत्र । मत्या
च पादार्धकृच्छ्रः । अविज्ञातजात्यस्थ्यादिदूषिते तद्वर्धम् । कर्णविडा-
दिमलषट्के त्वर्धमेतदल्पसंसर्गे । महासंसर्गे तु द्विगुणम् । तत्रापि
दूषितसंज्ञाने तसकृच्छ्रः सर्वत्र पुनःसंस्कारश्च । संसर्गदुष्टे क्रियादुष्टे
स्वभावदुष्टे च चण्डालाद्यन्त्यसूतिकारजस्वलापतितशवदाहकषण्डदे-
वलकविसृष्टाग्न्यारूढपतिताभिश्चस्ताद्याश्चण्डालाद्याः श्वविड्वराहसरो-
द्गाद्याः श्वापदाद्याः पञ्चनखा यूथपश्वाद्याः । चण्डालादीन्भुञ्जानो
वृष्ट्वा ग्रासमुत्सृज्यान्तर्बाह्यमुखलेपान्प्रक्षाल्य स्नायात् । किञ्चिन्मात्र-
निगरणेऽष्टशतं जपः । तद्वासभोजने पक्षिण्युपवासः । समस्तभो-
जने त्रिरात्रं जलपाने तद्वर्धम् । श्वादिष्वाचमनं कार्यम् । भुक्त्वा
पीत्वा तद्वर्धम् । चण्डालादिभिरेवं भुञ्जानः श्रुत्वा भोजनाद्विरम्यैव
शुध्येत् । भुक्तौ स्नात्वाऽष्टशतं जप उपवासो वा । चण्डालाद्युच्छिष्ट-
स्पृष्टे कांस्ये भोजने कृच्छ्रः । मृन्मयेऽतिकृच्छ्रः । रजकाद्युच्छिष्टस्पृष्टे
तद्वर्धम् । चण्डालादिस्पृष्टान्नभोजने त्रिरात्रम् । चण्डालादिदृष्टान्ने
तूपवासः पञ्चगव्यं च । चण्डालादिहस्तैर्भाजने चान्द्रं कार्यम् । चाण्डा-

१ ख. 'मार्थान्ने होमार्थद्विविधि चा' । २ ख. ग. 'र्गवक्ति या' । ३ ख. ग. 'स्तभोजने चान्द्रं
कार्यं वा चा' ।

लादिमोजने ; द्विगुणम् । चाण्डालाद्युच्छिष्टान्नमोजने चतुर्गुणम् ।
 चण्डालादिहस्तनिर्मुक्ताम्बुपाने तूपवासः । तत्स्पृष्टविषये तदर्धम् ।
 चाण्डालादीनुच्छिष्टो दृष्टोपवसेत् । स्पृष्ट्या त्रिरात्रम् । रजस्वलां
 हीनवर्णां रजस्वला स्पृष्ट्वा नाश्रीयाद्वा शुद्धेः । सवर्णामधिकवर्णां
 वा स्पृष्ट्वा तस्मिन्नेवाहनि स्नात्वाऽश्रीयात् । रजस्वला काकादिस्पृ-
 ष्टाऽन्यथा रजस्वलया च स्पृष्टा चेदुपवासः पञ्चगव्यं च । मत्या चेदा
 शुद्धेरुपोष्य स्नात्वा घृतप्राशनाच्छुद्धिः । रजस्वला चण्डालाद्यन्त्यैः
 संस्पृष्टा नाश्रीयाद्वा शुद्धेः । मुक्ता चेत्तावन्त्यहान्यतिक्रम्य शुद्धौ
 प्रायश्चित्तं कुर्यात् । प्रथमेऽह्नि त्रिरात्रं द्वितीये द्वाहं तृतीयेऽहोरात्रं परतो
 नक्तम् । अप्रायस्ये रजोदृष्टौ बालापत्याया अभिषेकादमुक्तिः । मृतसू-
 तकसंपर्कं कर्तुं स्पृष्ट्वा स्नानकालान्नाश्रीयात् । मत्या भुक्त्वा चान्द्रम् ।
 चण्डालादिसंकरे भुक्त्वा पक्षं गोमूत्रयावकं कृच्छ्रं वा । चाण्डालादिर्यस्य
 गृहे त्वज्ञातस्तिष्ठति तस्यामत्याऽन्नं भुक्त्वा कायम् । मत्या पराकः ।
 चाण्डालादिस्वीकृततीर्थतडागनदीष्वमत्या पीत्वा पञ्चगव्यं पिबेत् ।
 चण्डालाद्यम्बुपाने कायं तदर्धं वा । चण्डालादिसंस्पृष्टाम्बुपाने गोमूत्रया-
 वकं त्रिरात्रम् । भुक्त्वोच्छिष्टस्य चण्डालादिस्पर्शने कायम् । यद्वा गाय-
 त्र्यष्टशतं सहस्रमष्टशतं वा जपित्वा त्रिरात्रान्ते पञ्चगव्यं पिबेत् । आम-
 मक्षोच्छिष्टे पादः । अधःस्थानोच्छिष्टश्चाण्डालादिस्पृष्टः पादम् । चाण्डा-
 लादिस्पृष्टौ मूत्रोत्सर्गे त्रिरात्रमुपोष्य जातवेदसं वा जपेत् । अमत्याऽश-
 क्तस्य तूपवासः । मोजने षड्रात्रम् । आममक्षणे त्रिरात्रं प्राणायामशतं
 वा । रजकादिविषये चाण्डालाद्युक्तार्थं ज्ञेयम् । उच्छिष्टः श्वादीञ्छूद्र-
 मद्यामेध्याद्यस्पृष्ट्यान्स्पृष्टोपोष्य पञ्चगव्यं पिबेत् । रजस्वलासूतिका-
 मेध्यपतितचाण्डालपुल्कसावधूतकुण्ठहस्तकृमिकुष्ठिकुनख्यस्पृष्ट्याशौचि-
 संस्पृष्टान्नं मत्या भुक्त्वा कायममत्याऽर्धम् । असद्व्यये केशाद्यवपन्ने च
 कुशशङ्खपुष्पादिकषायं ब्राह्मीं वा पिबेत् । शूत्रेण पक्वं वाऽमेध्यसेविकी-
 टोपहतं च मुञ्जाने शूद्रस्पर्शं चानर्हसहपङ्कौ वा मुक्ताञ्जानेषु वा यत्रो-
 च्छिष्टं प्रयच्छेदाचामेद्वा कुत्सित्वा वा यद्वा न्नं दद्यादुच्छिष्टपङ्कौ वा
 मुक्तावुपवासं पञ्चगव्यं च कुर्यात् । मत्या सांतपनम् । वामहस्तनिर्मु-
 क्तपात्रान्नमुक्तौ चैकपङ्कावेकस्मिन्नुत्थिते पश्चाद्मुक्तौ च सांतपनम् ।
 मृतपञ्चनखखरविड्वराहादिशवयुक्तकूपादौ च विण्मूत्रादिमिरत्यन्तोपहते
 च पाने च वर्णास्त्रिद्व्येकोपवासनक्तानि कुर्युः पञ्चगव्याशनं च । तत्रैव
 क्लिन्नभिन्नशवयुक्तेऽम्बुपाने तु मत्याऽतिकृच्छ्रः । तादृक्मानुषशवयुक्ते

तु मत्या चान्द्रायणम् । चाण्डालादिसंबद्धकूपाद्यल्पजलाशयेष्वम्बु पीत्वा स्नात्वा तद्गाण्डस्थं वा मत्या वर्णाः सांतपनं कायं तदर्धं पादं क्रमाच्चरेयुरमत्या तदर्धम् । अशक्तः पञ्चगव्यं पिबेत् । महाजलाशये न दोषः । हृदपुष्करिण्यादिषु जानुदग्ने न दोषः । ततोऽधस्तने त्वमत्या नक्तं मत्योपवासं विप्रः कुर्यात् । रजकाद्यन्त्यजकूपमाण्डस्थाभ्युपयोदधिपाने त्वमत्या द्विजा ब्रह्मकूर्चेन त्रिद्योकोपवासान्कुर्युः । शूद्रस्तूपवासं शक्त्या दानं च । मत्या ताद्विगुणम् । अन्त्यजैः खानितवापीकूपतडागादिषु स्नाने पाने चोपवासो मत्याऽभ्यासे कायम् । मध्यमेषु पञ्चगव्यम् । महत्सु न दोषः । प्रपास्वरण्ये मठके च सैरेयद्रोण्यां जलं कोशानिसृतं च पीत्वा पञ्चगव्येनाशक्तः शुद्धः । शक्त उपवासेन ।

अथ भावदुष्टमक्षणे—तत्र निजवर्णादिरहितं भावदुष्टम् । भावदुष्टेऽन्ने भावदुष्टे च भोजने मत्या त्रिरात्रममत्याऽर्धम् । छर्दने घृतप्राशनम् । मक्ष्यामक्ष्यशङ्कितमक्षणे त्वक्षारलवणे रूक्षां ब्राह्मीं सुवर्चलां पिबेत्त्रिरात्रम् । शङ्खपुष्पीं वा पयसा सह कुशपद्मोदुम्बरपलाशबिल्वपत्राम्बुपक्वं वा पिबेत् । संवत्सरस्य त्रीन्द्वावेकं कृच्छ्रं चरेत् । शङ्कायां विज्ञाने ताद्विगुणं द्विजश्चरेत् ।

अथ कालदुष्टमक्षणे—कालदुष्टं पर्युषितं शुक्तमनिर्दशागोक्षीरादि । तत्रामत्योपवासो मत्या त्रिरात्रं कायव्रतम् । यवगोधूमपयोदधिपिष्टविकारस्नेहपक्वान्नस्नेहाक्तान्नमासादौ न दोषः । शृङ्गास्थिदन्तजैः पात्रैः कन्दशालूकशङ्खशुक्तिकपर्दकैश्च पीत्वा नवोदकं च पीत्वा स्वकाले त्र्यहाद्वर्गकाले दशाहाद्वर्गकीत्वा पञ्चगव्यं पिबेत् । मत्योपवासः । संग्रहे भोजने नवश्राद्धे च ग्रामयाजकान्ने च चान्द्रम् । ग्रहणादिनिमित्तनिषिद्धकाले च संधिकाले चातिप्रातरतिसांयमित्यादौ धानादधिसक्तूनां रात्रौ तिलसंबद्धान्नभोजने चैवमादिष्वनादिष्टप्रायश्चित्तेषु प्राणायामशतं मत्योपवासः ।

अथ गुणदुष्टशुक्तादिमक्षणे—तत्र गुणदुष्टशुक्तानि कषायांश्चान्यान्यमेध्यान्यमत्या पीत्वा मुक्तवोपवसेत् । मत्या त्रिरात्रं यावकम् । आमलकादिफलयुक्तकाञ्जिकायां न दोषोऽभिघारणे च । उद्धृतसारविलापितपिण्याकमथितादिष्वन्नविकारे च मत्या त्रिरात्रं यावकममत्याऽर्धं छर्दित्वा

घृतं पिबेत् । प्राक्पञ्चनखेभ्यः प्राणिषु चैवम् । वैश्वदेवाग्न्यादिरहितान्न-
भोजने वृथा कृशरसंयावपायसापूपशङ्कुलीमधुमांसानां चामत्योपवासो
मत्या त्रिरात्रम् । आहिताग्निस्तु कायं त्रिरात्रं वा कुर्यात् । शूद्रभाजन-
भिन्नभाजनभाण्डेषु भुक्त्योपवासः पञ्चगव्यं च । मत्या त्रिरात्रम् ।
भिन्नकांस्ये कायम् । भिन्नभाण्डादिभोजने पञ्चगव्यं घृतं वा ब्राह्मी
वा पिबेत् । वटाकांश्चत्थकुम्भीतिन्दुककोविदारकदम्बपत्रेषु भुक्त्वा
चान्द्रम् । लतापलाशपद्मवृक्षपत्रे गृही भुक्त्वा चान्द्रं चरेत् । वानप्रस्थो
यतिश्च भुक्त्वा चान्द्रफलं लभेत् । अन्यः पद्मपलाशेषु ।

अथ हस्तदानादिक्रियादुष्टाभोज्यभोजने—तत्र हस्तदत्तभोजनेऽब्राह्मणसमीप-
भोजने दुष्टपङ्क्तौ बलादत्यपाङ्केयशूद्रहस्तेन च भोजने पानीये वाऽमत्या
नक्तम् । मत्योपवासः पञ्चगव्यं च । माक्षिकफाणितशाकगोरसलवणघृतेषु
हस्तदाने तथैव ।

आसनारूढपादो वा वस्त्रार्धप्रावृतोऽपि वा ।

मुखेन धमितं भुक्त्वा कृच्छ्रं सातपनं चरेत् ॥

अथ श्राद्धभोजने—पित्राद्युद्देशेन त्यक्तान्ने तु तत्र श्राद्धानि त्रिवि-
धानि । तत्रान्तर्दशाहे चैकादशाहे च नव श्राद्धानि । एकादशाहाज्य-
नाब्दान्तानि षोडशैकोद्दिष्टानि नवमिश्राणि । सपिण्डीकरणं मिश्रम् ।
ततः पुराणानि । एकादशाहश्राद्धं नवमिश्रम् । तत्र प्रायश्चित्तगौरवा-
द्दोषगौरवं चास्ति । आद्यैकोद्दिष्टं स्वतन्त्रमित्येके । तथाऽप्युभयधर्मप्राय-
श्चित्तदोषदण्डाः स्युः । तत्रापि सूतकसंबद्धेषु नवश्राद्धेषु भोजने कायम् ।
एकादशाहैकोद्दिष्टे कायं पादोनकायं वा । द्वादशाहे प्रथममासे वा
पादोनं कायमेव कुर्यात् । द्विमासे त्रिपक्षे चोन्षाणमासिके चोन्षा-
ब्दिके चार्धं कृच्छ्रम् । त्रिमासाद्यब्दमोक्षान्तेषु सपिण्डने चाऽऽद्या-
ब्दिके चोपवासः पादकृच्छ्रो वा । प्रत्यब्दं पुराणे च नक्तम् ।
गुरुविषये द्रव्यार्थं नवश्राद्धे त्रिरात्रमाद्ये त्रिरात्रं द्विरात्रं च ।
द्वादशाहादौ द्विरात्रम् । द्विमासादावुपवासस्त्रिमासादौ नक्तं पञ्चगव्यं
वा । प्रत्यब्दं वाऽन्यपुराणे च षट्प्राणायामाः । वृद्धौ त्रयः प्राणा-
यामाः । तत्रैव निःस्पृहमोक्तुर्जपशीलिनो वा तदर्धम् । क्षत्रिया-
दिश्राद्धेषु द्वित्रिचतुर्गुणानि क्रमात्कार्याणि । अनापदि तु नवश्राद्धे
चान्द्रं कायं च । द्वादशाहादौ कायमेव । द्विमासादौ पादोनम् । त्रिमा-

साद्यब्दान्ते सापिण्ड्ये च त्रिरात्रमर्धं कायं वा । आब्दिके पादं कायम् । प्रत्याब्दिके तूपवासः । क्षत्रियस्य तु नवश्राद्धे चान्द्रम् । आद्यमासिके चान्द्रं पराकश्च । द्वादशाहादौ पराकः । एकद्विमासत्रिपक्षादौ महासांतपनम् । त्रिमासादौ कायम् । आब्दिके पादोनं प्रत्यब्दे त्वर्धं पुराणे पादम् । वैश्यस्य त्वेतान्येव व्रतानि सार्धानि । शूद्रस्य द्विगुणानि । यद्वा नवश्राद्धे चान्द्रद्वयं सार्धं चान्द्रं च । द्वादशाहादौ सार्धचान्द्रमेव । द्विमासत्रिपक्षादौ चान्द्रं त्रिमासादौ पराकः । अब्दे महासांतपनं प्रत्यब्दे सांतपनम् । चण्डालसर्पबाह्यणपशुदंष्ट्रिवैद्युतपतनविषोद्धन्धनानाशकैर्मृतानां पापिनां च स्तेनपतिताद्यभोज्यान्नानां च श्राद्धेषु नवश्राद्धे चान्द्रम् । आदिमासिके चान्द्रं पराकश्च । द्वादशाहादौ पराक एव । द्विमासत्रिपक्षादावतिकृच्छ्रः । त्रिमासादौ कायोऽब्दे पादः । प्रत्यब्दे तूपवासः । सम्यग्विषयेऽपि द्रव्यार्थभोजिनश्चैवम् । अपाङ्क्त्यानामेकादशाहश्राद्धे शिशुचान्द्रम् । यतिर्व्रती ब्रह्मचारी सूतक्यन्ननवश्राद्धमासिकादौ भुक्त्वोक्तं कृत्वाऽधिकं त्रिरात्रमेकोपवासं त्रिप्राणायामान्वृतप्राशनं च कृत्वा व्रतशेषं समापयेत् । अनापदि तु कायं त्रिरात्रमेकरात्रोपवासं षट् प्राणायामाः पञ्चगव्यप्राशनमधिकम् । अभ्यासे कृच्छ्रादि द्विगुणम् । आमहेमसंकल्पितश्राद्धेषूक्तार्थतत्तदर्धानि । यद्वाऽनापदि चाऽऽमश्राद्धे कायं तप्तकृच्छ्रं वाऽशक्तश्चेत् । हेमश्राद्धे त्रिरात्रं कायं च । संकल्पितश्राद्धे तूपवासस्त्रिरात्रं च । दैवात्सूतकव्यवहितेषु तु ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रश्राद्धेष्वेकोद्दिष्टेषु कृच्छ्रातिकृच्छ्रतप्तकृच्छ्रचान्द्राणि । द्वादशाहादिषु पादं पादं ह्यासयेत् । अतिव्यवहितेषु तु त्रिरात्रादिकम् । गुरुविषये तूपवासनक्तषट्त्रिप्राणायामाः । अनापदि सर्वं द्विगुणम् । अतिश्रोत्रियपुराणेष्वनुक्तनिष्कृतिषु च गायत्र्या दशकृत्वोऽपः पीत्वा शुध्यति । ततः संध्योपासनं होमं च यथोचितं कुर्यात् । निवृत्ते चूडाहोमे च प्राङ्नामकरणे च जातकर्मणि चाङ्गश्राद्धे सूतकेऽप्यसूतके च नामश्राद्धे चूडाहोमान्ते चौलश्राद्धे च सीमन्ते सोमे चाऽऽधाने ब्राह्मोदने चामत्या चाऽऽपदि च भुक्त्वा सांतपनम् । मत्याऽनापदि च चान्द्रम् । अन्येषु संस्कारेषु तूपवासो नित्यं त्रिरात्रं चानापदि । अन्यदत्ता कन्याऽन्यस्मै

१ ख. ग. घ. °चण्डालोदकस° । २ क. भोजनानां नवश्रा° । ३ ख. ग. घ. °से तप्तकृ° । ४ ख. ग. °क्तचितेषु ।

पुनर्दत्ता सा पुनर्भूः । असंस्कृते पूर्वे गर्भे प्रसूते द्वितीये गर्भे संस्कारे या सा पुनारेताः । ऋतुषोडशाहात्यश्चादेव या गर्भिणी सा रेतोधाः । मर्तु-
शासनोल्लङ्घिनी कामचारिणी । आसां गर्भे पर्ववत्सांतपनं चान्द्र वा
सर्वस्त्रीप्रथमगर्भे च ।

अथ पारग्रहाचाशुचिदुष्टभोजने—तत्राश्रोत्रियतते यज्ञे ग्रामयाजकहुते स्त्रीहुते
क्लीबहुते वाऽन्नभोजने राजराजपुरोहितराजभृत्यवेश्यशूदाणां क्लीबा-
जाविकमाहिषिकस्थानिकभूमिपालानां स्तेनगायकतक्षवाधुंषिकदीक्षा-
वास्थितानां कदर्यबद्धनिगडाभिश्स्तपुंश्चलीदाम्भिकवैद्यकुलिमसांवत्स-
रिकाणां मत्तक्रुद्धातुरगणिकानां श्वचक्रमद्यस्त्रीभृगजीविनां कूराच्छि-
ष्टभोज्युग्रपतितपिशुनानां शैलूषतन्तुवायतुन्नवायकिराटिप्रव्रजितानां
व्रात्यकर्मारघोषतरुवाजिजीविकानां घृतक्षीरतैललवणगुडविक्रयिणाम-
ग्निदनित्यरोगिघाण्टिकविषशस्त्रकारविप्रगोदेववृत्तिघ्नानां वैणवातिपापि-
वेश्यापाखण्डजीविसूतादिप्रतिलोमजानां कर्मारकृतघ्नानां पुण्यसोमक-
र्मात्मविक्रयिणां विवादद्वेषरङ्गावतारसुवर्णकारवृत्तीनां शौण्डिकवस्त्रनि-
र्णैजकवेनश्ववतां कूटनटनर्तकवृषलीतत्पतीनां नृशंसोपपतिकोप्रपतिमर्ष-
कस्त्रीजितकितवानां शूद्राध्यापकयाजकधर्मपतिस्त्रीणां ग्रामयाजिवृषली-
जवाणिक्काण्डपृष्ठसेवकानां पर्याहितपरीष्टपरिवित्तिपरिविविदानां पुनर्भू-
जाग्रेदिधिषूपतिचक्रतैलवधजीविनां भगवृत्तिपक्षिरक्षिसमुद्रतारकहीना-
तिरिक्ताङ्गानां मातृपितृसुतगुर्वाग्नित्यागिनां कूटमानकूटसुतकन्यास्त्रीसत्य-
विक्रयिणां सीसकारगोधालोहकारसूचिकापुत्रब्रह्मचारिणां कुण्डाशि-
वीरहगुरुगुप्तिकगरदसूपजीविनां सूतकसौनिकपौण्डिकुलालचित्रकर्मणां
योनिशंकरिकाश्रमभेदकतस्करवृथाश्रमिवृथाहोतृणामित्यादिपापिनां मार्गे
तिष्ठतां भिक्षान्ने चान्द्रम् । एषामकृतनिष्कृतीनामन्नभोजने याजने
दाने प्रतिग्रहे च तथा कुनखिकृष्णर्दन्ताब्राह्मणान्नदशूद्रशूद्रान्नदंब्राह्मणा-
नामभोज्यान्नानां च प्रपासत्रे सोम एकादशाहश्राद्धे दुष्टान्नदुष्टविद्व-
ज्जुगुप्सितमहापाप्यवेक्षितश्वस्पृष्टोदक्यादुष्टगवाघ्रातपक्ष्यालीढासद्बहुया-
चितसरोषसविस्मयान्नं च पदा स्पृष्टमवज्ञातमनर्चितपर्यायान्नस्त्रीशूद्रो-
च्छिष्टवृथामांसजातमृतसूतकसूतकिकाप्रेतान्नं चातुष्टिकरं चातोऽन्यतम-

१ ख. 'यतातय' । क. घ. 'यतने य' । २ ख. ग. 'श्वचक्रम' । ३ ग. 'किरीटिप्र' । ४ ख.
ग. 'जडावनश्व' । ५ घ. 'जक व' । ६ ख. ग. घ. 'पौण्डिक' । ७ ख. ग. 'स्त्रि पूर्वक' । ८ घ.
दन्तकुष्टिवा' ।

स्यान्नं भुक्त्वा वा रेतोविण्मूत्रमक्षणे वा मत्या त्रिरात्रम् । अभ्यासे कृच्छ्रः । मत्याऽतिकृच्छ्रोऽभ्यासे तत्कृच्छ्रः । ब्रह्मचर्यादेः कार्याणि तत्कृच्छ्राणि चान्द्राणि पुनः संस्कारश्च । द्वित्रिषण्णवद्वादशरात्राणि पयसाऽत्यभ्यासे चान्द्रम् । अत्यन्ताभ्यासे चान्द्रवृद्धिः । आपद्येकद्वित्रिचतुरूपवासाः । अत्यन्तापदि त्रिषण्णवद्वादश प्राणायामाः । आमेषु स्नानम् । विप्रान्न एकभक्तम् । अनाचारे दुराचारे नक्तम् । ब्राह्मणब्रुवे स्नानमष्टशतजपः । गुर्वाचार्याग्निधर्मशास्त्रगोब्राह्मणद्विडन्ने शाखारण्डान्ने चैवम् । पुंश्चल्यभिशस्तम्लेच्छचाण्डालदस्युभिर्बलाद्वासीकृतानां गवादिहिंसने तदुच्छिष्टमार्जने भोजने खरोष्ट्रादिविद्धवराहमक्षणे तत्स्त्रीभिः संगमे भोजने च मासोपिताद्विजानां कायम् । आहिताग्नेश्चान्द्रं पराको वा । संवत्सरोपितस्य चान्द्रं पराकश्च ।

अथ जातमृताशौचान्नभोजने—तत्र द्विजाशौचे सवर्णानामुपवासस्त्रिरात्रं वा । विप्रक्षत्रियवैश्याशौचेष्वमत्या विप्रो भुक्त्वा नक्तैकद्वित्र्युपवासान्कुर्यात् । अभ्यासे त्वेकत्रिषञ्चसप्तोपवासान् । यद्वाऽभ्यासे द्वात्रिंशदष्टशतप्राणायामयुक्तान् । मत्या चेत्सांतपनकायमहासांतपनचान्द्राणि सर्वत्र पञ्चगव्यं वा । एकद्वित्रिचतुःकायानि वा । मत्याऽभ्यासे कायानि कृच्छ्रतत्कृच्छ्रचान्द्राणि । यद्वाऽभ्यासे एकद्वित्रिषण्मासानि यावकव्रतानि । अत्यन्तापदि द्वादशत्रिंशत्षष्टिशतप्राणायामाः । क्षत्रियस्य वैश्याशूद्राशौचयोर्वैश्यस्य शूद्राशौचे चैवम् । विप्राशौचे क्षत्रवैश्ययोरष्टशतजपो नक्तं वा । क्षत्राशौचे वैश्यस्य चैवम् । द्विजाशौचे शूद्रस्य स्नानम् । शूद्राशौचे शूद्रस्य स्नानं पञ्चगव्यं च । शूद्रं संपृश्याऽऽचमने स्नानं पाने पञ्चगव्यम् । ब्रह्मचार्यादेरुपवासः शतजपः पञ्चगव्यं च । त्रिरात्रं सहस्रजपः । पञ्चगव्यं चाधिकम् । जाताशौचे लघु योज्यमित्येके । आहिताग्न्याशौचे चैवम् । आशौचे भुक्तवन्तं न स्पृशेदापुरीषोत्सर्गात् । तत्प्रायश्चित्तं तदाशौचे गते कार्यम् । सकृद्धोजनमात्रेण भोक्तृणां च तावदशुचित्वादनधिकारात् । तद्ब्रह्मभोजने नक्तमुपवासो वा । कापालिके कापालिकान्ने पाने च क्रमात्कायं तदर्थं च । अभ्यासे द्विगुणम् । मत्या त्रिगुणम् । मत्याऽभ्यासे चतुर्गुणम् । अत्यन्ताभ्यासे चान्द्रं तदर्थं च । तत्स्त्रीगमने चैवम् ।

अत्यन्ताभ्यासेऽब्दकृच्छ्रम् । पतितान्ने द्रव्ये सति संभवे च तत्समुत्सृज्या-
तिकृच्छ्रं कुर्यात् । अन्नसत्रप्रवृत्तस्याग्निहोत्रिणाश्चाऽऽमे न दोषः । पक्वान्ने
त्वेकरात्रं त्रिरात्रं वा यावकं द्वादश चतुर्विंशतिर्वा प्राणायामाः । गृही-
त्वाऽग्निं समारोप्य पञ्च यज्ञानकुर्वन्परपाकनिवृत्तः पञ्च यज्ञान्कृत्वा नित्य-
परान्नोपजीवी परपाकरतो दानवर्जितः पर्वपक्षे मासे वा देवपितृन्भोजयेत् ।
अश्राद्धदस्तेषामनभ्यासे चान्द्रम् । पूर्वपरगणितव्यतिरिक्तनिषिद्धाचरण-
शीलान्नभोजने तूपवासो दिनम् । संवत्सराभ्यासे पराकः । अत्राऽऽदिष्टं
विप्रस्यैव । तत्र क्षत्रस्य पादोर्ध्वं वैश्यस्यार्धं शूद्रस्य पादः कल्प्यः ।
तत्तत्स्त्रीणामर्धं रजस्वलानां तत्रतत्रोक्तमेव कार्यम् । इत्यभक्षणप्राय-
श्चित्तम् ।

अथ जातिभ्रंशकरादिप्रायश्चित्तम्-जातिभ्रंशकरेऽपि च्छया महासांतपनमनि-
च्छया कायम् । संकरीकरणेषु मासं यावकं कृच्छ्रातिकृच्छ्रं वा । अपा-
त्रीकरणेषु कृच्छ्रमतिकृच्छ्रं वा । मलिनीकरणेषु महासांतपनं तप्तकृच्छ्रं
वा । ब्राह्मणैः कृत्वा रासमादिप्रयाणं निन्दिताद्भनादानं च कृत्वा
कृच्छ्रार्धं चरेत् । अत्र स्त्रीणामर्धं रजस्वलानां तत्र तत्रोक्तं कार्यमेव ।

इत्युपपातकप्रायश्चित्तानि ।

अथ प्रकीर्णप्रायश्चित्तम्-तत्र खरयुक्तमुष्टयुक्तं वा यानमारुह्याध्वानं
गत्वा नम्रः स्नात्वा भुक्त्वा च स्वस्त्रियं दिवा गत्वा मत्या सवस्त्रोऽपोऽव-
गाह्य प्राणायामेन शुध्येत् । अमत्या स्नानमात्रम् । साक्षात्खररोहणे तु
द्विगुणम् । गुरुं हुंकृत्य त्वंकृत्य विप्रं छलवादेन निर्जित्य वाससा बद्ध्वा
वा शीघ्रं प्रसाद्योपवसेत् । अभ्यासे त्रिरात्रम् । विप्रं हन्तुं दण्डोद्यमने
कृच्छ्रः । ताडनेऽतिकृच्छ्रः । रक्तस्रावणे कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ । आभ्यन्तर-
रक्ते त्वग्भेदे कृच्छ्रः । अस्थिभेदेऽतिकृच्छ्रोऽङ्गकर्तने पराकः । पादेन
प्रहार उपोष्य स्नात्वा प्रसादयेत् । पादेन स्पर्शे तु प्रसादनम् । असंनि-
धावप्सु वाऽग्नौ चाऽऽर्तो विण्मूत्रनिषेवणे सचैलो जलमाप्लुत्य गां स्पृष्ट्वा
शुध्येत् । मत्पोष्य सचैलं स्नायात् । अभ्यासे चानार्तस्य च तप्तकृच्छ्रः ।
श्रीतस्मार्तलोपे तूपवासः । पश्चात्प्रतिपदोक्तेष्ट्यादिप्रायश्चित्तमपि सूर्यो-
दये स्वस्थो मत्या सुप्तोऽह्नि तिष्ठन्सावित्रीं जपन्नुपवसेत् । सूर्यास्तमये
सुप्तो रात्रौ तिष्ठन्सावित्रीं जपन्नाद्यात् । स्नानादिकर्मलोपे तूपवासोऽष्ट-

शतजपो वा । जीर्णमलवद्वस्त्रधारणादिस्नातकव्रतलोपे तूपवासोऽष्ट-
शतजपो वा । पञ्चमहायज्ञेष्वन्यतमलोपे त्वनातुरस्योपवासो धनिनः
कृच्छ्रार्धम् । आहिताग्नेः पर्वण्युपस्थानलोपे चैवम् । ऋतौ भार्यागम-
नलोपे चैवम् । प्रथमायां भार्यायां जीवन्त्यां द्वितीयभार्याया वैतानिकै-
र्दहने सुरापानसमवत् । स्वभार्यां क्रोधादगम्येति वदेच्चेद्वर्णानां कृच्छ्र-
नवषट्त्रिरात्राणि । अस्नात्वा भोजनादौ तूपवासो दिनजप्यं च । एक-
पङ्क्त्योपविष्टानां स्नेहादिना विषमदाने दापने याचने कायम् । उद-
कावरणमार्गहन्तुः कन्याविघ्नकस्य च समेषु विषमपूजादिकर्तुंश्च मैक्षास्त्रे
चान्द्रम् । सुरापस्य गन्धमाधाय सोमपो ब्राह्मणोऽप्सु निमग्नस्त्रीप्रा-
णायामांश्चिरधमर्षणं वा कृत्वा धृतप्राशनं च कुर्यात् । असोमपोऽन-
पिस्वितरस्यामन्त्रकप्राणायाम एव । मद्यगन्धे तदर्धम् । साक्षात्सुराघ्राणे
सुरापानसमवत् । अमत्या घ्राणे त्रिप्राणायामाः । मद्यघ्राणे विण्मूत्रकव्या-
दपूतिगन्धघ्राणे त्रिः प्राणायामाः । दर्शने प्राणायामः । स्पर्शने तु स्नानं
धृतप्राशनं च । सुरास्पर्शे स्नानं पञ्चगव्यं च । शवघ्राणेऽप्सु त्रिप्राणायामाः ।
असोमपस्यानप्सु । इतरस्यामन्त्रप्राणायामाः । शुष्कसुराभाण्डस्थापः
पीत्वा पक्षयावकम् । सुरामाजनस्थाप्सु शङ्खपुष्पीपकं पयसश्चिरात्रम् ।
पर्युषिताप्सु गन्धपुष्पीपयः षडहम् । शुष्कमद्यभाण्डस्थाप्सु सप्तरात्रं
यावकम् । अन्यत्र पूर्वोक्तार्धम् । सुरामद्यरसोपलब्धौ तारतम्यं कल्प्यम् ।
वमने चान्द्रं कायं वा । पुरीषादिदूषिता अपः पीत्वा सातपनं द्यहम् ।
रसोपलब्धौ पादकृच्छ्रः । मद्यविण्मूत्रविप्रुद्धभिः संस्पृष्टे मुखमण्डले
मृत्तिकागोमयैः प्रक्षाल्य पञ्चगव्यं पिबेत् । मदिरां दत्त्वा स्पृष्ट्वा प्रतिगृह्य
च स्नात्वा कुशाम्बु त्र्यहम् । संक्रान्त्यादिनिमित्तस्नानार्हो जग्ध्वा पीत्वाऽ-
ष्टसहस्रं जपेत् । शूद्रादिसंस्पर्शनिमित्ते तूपवासः चाण्डालादिस्पर्शनि-
मित्ते त्रिरात्रं कायं वा । रजकादिस्पर्शे तदर्धं वा । तत्स्पृष्टस्पर्शे तूपवास-
श्चिरात्रं वा । नित्यस्नानमकृत्वा भुक्तौ चोपवासश्चिरात्रं वा । नैमित्तिके
स्नाने सर्वत्राष्टसहस्रजपो द्वादश प्राणायामा वाऽधिकाः । अमेध्यश्वाद्य-
स्पृश्यस्पर्शने स्नात्वा भुक्तौ गृहस्थादेश्चिरात्रं मत्या षड्रात्रम् । व्रतिनः
कायं चान्द्रं वा । चण्डालादिस्पर्शने त्वस्नात्वा भुक्तौ चान्द्रम् । रजका-

द्यन्तस्पर्शने स्नात्वा भुक्तौ मत्या कायम् । श्वकाकादिस्पर्शनेऽस्नात्वा
 भुक्तौ मत्या त्रिरात्रम् । उत्पन्ने स्नाने भुक्त्वा पीत्वा त्रिरात्रं सांतपनम् ।
 अनाचम्य भक्षणे वाऽष्टशतजपः । भोजने तूपवासः । भोक्तुकामस्याऽऽ-
 पोशनात्पश्चादभ्यवहरणात्पूर्वं पुरीषनिर्गमे सचैलो बहिराप्लवः षट् प्राणा-
 यामाः । भुञ्जानस्य गुदनिस्त्रावे शौचं कृत्वोपोष्य पञ्चगव्यम् । भुञ्जा-
 नस्याशुचित्वे तद्भासं भूमौ क्षिप्त्वा स्नायात् । तद्भासाशने तूपवासः ।
 सर्वाङ्गाशने त्रिरात्रम् । भुञ्जानस्य मस्तके विष्ठादिपतनेऽन्नं त्यक्त्वा
 नद्यां स्नात्वा त्रिः प्राणायामाः । भुञ्जानस्य सगोत्रस्पर्शनेऽन्नं त्यजेत् ।
 उदकं स्पृष्ट्वा शुद्धिः । भुञ्जानस्यासगोत्रस्पर्शने भोजनं विरम्यैव
 शुद्धिः । (* भुञ्जानयोः सवर्णयोः स्पर्शने च विरम्यैव शुद्धिः ।)
 भुञ्जानस्योच्छिष्टक्षत्रियस्पर्शने स्नानं जपं च कृत्वा दिनान्तरे घृतप्राश-
 नम् । भुञ्जानस्योच्छिष्टवैश्यस्पर्शने चैवम् । त्रिषवणस्नानादिकम् ।
 भुक्तोच्छिष्टस्पृष्टौ सवर्णे स्नानं जपो वा । असवर्णे तूपवासः सहस्रजपो
 वा । भुक्तोच्छिष्टस्य शूद्रश्वादिस्पर्शे तूपोष्य पञ्चगव्यम् । रजकादि-
 स्पर्शे त्रिरात्रम् । ऊर्ध्वोच्छिष्टस्य चाण्डालादिस्पर्शे कायम् । अधरो-
 च्छिष्टे तूच्छिष्टो द्विज उच्छिष्टं द्विजं स्पृष्ट्वा शूद्रश्वादीन्वोपोष्य पञ्चगव्यं
 पिबेत् । उच्छिष्टो द्विजश्चाण्डालादिस्पृष्टस्त्रिरात्रं कुर्यात् । रजकादि-
 स्पर्शे तदर्धम् । अनुच्छिष्टस्पृष्टौ यत्र स्नानं विहितं तत्रोच्छिष्टस्पृष्टौ
 त्रिरात्रं कायं वा । उच्छिष्टोच्छिष्टस्पृष्टावेक एव दुष्यति । तत्स्पृष्टिनो
 न दुष्यन्ति । येन केनचिदुच्छिष्टः परं स्पृष्टः सन्सद्य आप्लुत्य प्राय-
 श्चित्तं सर्वत्र कुर्यात् । विण्मूत्राद्युत्सर्गे भुक्त्वा पीत्वा त्रिरात्रमुपवास-
 स्त्रिरात्रं वा गोमूत्रयावकेन । अशक्तौ यावकम् । जलपाने तूपवासः
 पञ्चगव्यं च । काञ्जिकादिना शौचं कृत्वा भुक्त्वा पुनर्जलेन शुद्धिं
 कृत्वोपोष्य पञ्चगव्यं पिबेत् । नीलवस्त्रादिधारणे केशनिर्मितचैलधारणे
 चोपवासः पञ्चगव्यं हिरण्योदकं चाधिकम् । नीलीमध्यगमने स्नात्वा
 त्रिः प्राणायामाः । नीलीं विक्रीणयन्पालयन्नीलीवृत्त्या जीवंश्च पतति ।
 विरक्तश्चेन्निमिः कृच्छ्रैः शुध्येत् । नीलीलवधारणेऽपि स्नानदानजपहो-
 मस्वाध्यायदेवतार्चनादि सर्वं निष्फलम् । नीलीक्षेत्रोत्पन्नभुक्तौ
 चान्द्रम् । नीलीक्षेत्रे नीलीमुत्पाद्य द्वादशाब्दात्परं शुध्येत् । नीली-

* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थो घ. पुस्तके वर्तते ।

१ ख. ग. घ. °नाधिक° । २ क. °ष्टद्वया° । ३ ग. °नीलावक्रधा° ।

जग्धौ चान्द्रम् । नीलीं धृत्वा मैथुने गर्भश्चाण्डालो जायते । नीलीं धृत्वा मृतः षष्टिवर्षसहस्राणि विष्टायां कृमिः स्यात् । मृते मर्तरि पत्नी नीलीं धृत्वाऽऽस्ते चेत्तावन्नरके मर्ता वसेत् । नीलीं धृत्वा यदज्ञानि दीयन्ते तत्र दातुर्भोक्तुश्च सांतपनम् । नीलीदारुभेदे रक्तदर्शने [च] चान्द्रम् । कम्बल पट्टसूत्रे नीलीदोषो नास्ति । ऐन्द्रं चापं पलाशाग्निं चान्यस्य प्रदर्शयोपोष्य क्रमाद्धनुर्दण्डं च दक्षिणां दद्यात् । पतितम्ले-
ज्छाशुद्धाधार्मिकसंभाषणे पुण्यकृतो ध्यायेद्ब्राह्मणेन वा सह संभाषेत । विना यज्ञोपवीतेनोच्छिष्टत्वे च मत्या भक्षणेऽम्बुपाने वा त्रिः प्राणा-
यामाः । भोजने नक्तम् । विष्णुसूत्रे षट् प्राणायामाः । मत्या चेन्द्रक्ष्य-
पानविष्णुसूत्रेष्वष्टशतजपः । भोजने तूपवासः । भुक्त्वाऽनाचम्योत्थाने
सद्यः स्नानम् । दण्ड्यचौराद्युत्सर्गे राज्ञ उपवासः । पुरोहितस्य त्रिरात्रम् ।
अदण्ड्यदण्डने राज्ञस्त्रिरात्रम् । पुरोहितस्य कृच्छ्रः । स्तेनपतिताद्यपा-
ङ्केयपङ्क्तिभोजने तूपवासः पञ्चगव्यं च । पलाशखट्वाशयनासनपादुका-
रोहणे त्रिरात्रं यावकम् । फलप्रदवृक्षच्छेदेऽब्दव्रतम् । पलायमानस्य
नृपस्यैवम् । विप्रयोरग्निविप्रयोगोविप्रयोर्दंपत्योश्च मध्ये गन्तुः सांत-
पनम् । होमकाले गवां दोहे सांनायाद्यङ्गे स्वाध्याये विवाहे च मध्यग-
मने चैवम् । अभ्यासे चान्द्रम् । दुःस्वप्नदुरिष्टदर्शनादौ घृतं हिरण्यं च दद्यात् ।
अतीर्थार्थिनः सिन्धुसौवीरसौराष्ट्राब्धिप्रत्यन्ताङ्गवङ्गकलिङ्गान्धदेशगमने
पुनः संस्कारः । तीर्थार्थे न दाषः । प्रत्यर्कादिमेहने चाऽऽत्मशकृद्दर्शने च
सूर्यं विप्रं गां वा पश्येत् । वह्नेरधःकरणे पादप्रतापने च कुशैः पादमार्जने
चोपवासो यावकं वा । क्षत्रवैश्ययोरभिवादाने विप्रस्योपवासः । शूद्रा-
भिवादाने त्रिरात्रम् । शय्यापादुकोपानदासनारूढान्धकारस्थश्चाद्धोम-
जपकृद्देवपूजाभिरतानां समित्पुष्पकुशाम्बुगन्धाक्षताम्बुपाणीनामेतेषां
चाभिवादाने चैतेऽप्यन्यानभिवाद्य सर्वे त्रिरात्रं कुर्युः । अन्यत्र निम-
न्त्रितस्यान्यत्र भोजनेऽप्येवम् । इत्यादि देशकालवयोर्थशक्त्यपेक्षं सर्वत्र
प्रायश्चित्तं देयम् । अनुपदिष्टेषु दण्डार्थवादस्तुतिनिन्दाभिः कल्प्यम् ।
श्रीवृद्धबालातुराणां च योग्यं देयम् ।

इति प्रकीर्णप्रायश्चित्तम् ।

अथ यस्तूद्धतो महापापप्रायश्चित्तं न कुर्यात्तस्य पतितस्य सर्वे सपिण्डा
बान्धवाश्च रिक्तातिथौ सायाह्ने ग्रामाद्वहिरपां पूर्णं दास्याऽऽहतं कुम्भं
प्राचीनावीतिनो मुक्तशिखा गुरुसंनिधावस्माकं त्वं मृत इति निनयेयुः ।

ततोऽनिरीक्षमाणा अप उपस्पृश्य ग्रामं प्रविशेयुः । ततस्तं सर्वधर्म-
बहिष्कृतं संभाषणादिषु वर्जयेत् । यदि प्रमादात्संभाषणादि कृतममत्या
सावित्रीं जपन्नेकरात्रं तिष्ठेत् । मत्या त्रिरात्रम् । अभ्यासेऽब्दे पातित्यम् ।
अथ कृतप्रायश्चित्त आगते सपिण्डास्तेन सह पुण्ये जले स्नात्वाऽपां
पूर्णकुम्भं पुण्ये देशे काले च पुण्यदिङ्मुखास्त्वमस्माकमिति निनयेयुः ।
ततः स गोभ्यो यवसं दत्त्वा भक्षिते शुद्धः । नचेत्पुनः प्रायश्चित्तं चरेत्स
व्यवहार्यश्च । स्त्रीणां पतितानां चैवं त्यागः परिग्रहश्च किंतु प्रधानगृहस-
मीपे कुटीं कृत्वा प्राणधारणार्थमन्नं मलिनं वासश्च दत्त्वा भोगरहितां
रक्षेत् । स्त्रीणामपि महापापातिपापानुपापान्यभ्यस्तानि चोपपापानि
पतननिमित्तानि । विशेषतो हीनवर्णगमनं गर्भपातनमब्राह्मण्या अपि
मर्तृहिंसनं तानि पतनहेतूनि । शिष्यगागुरुगाजुङ्घितोपगतानामप्येवं
प्रायश्चित्तम् । क्षत्रियादेः प्रायश्चित्तं ब्राह्मणमन्तरे कृत्वा ब्रूयात् । स्त्रीशू-
द्राणां जपहोमवर्जं वाच्यम् । अमन्त्रकाः प्राणायामाः सर्वत्र वाच्या
एव । यागाद्यनुष्ठानशीलानुशीलानां जपादिकम् । इतरेषां तु तप-
आदि । नामधारकमूर्खनिर्धनानां तप एवानधीतानां च । कर्तृव्यतिरि-
क्तैर्विज्ञातदोषो विख्यातदोषः । स विद्वानपि शीघ्रं पर्षदनुमतं व्रतं प्राय-
श्चित्तं कुर्यात् । तत्र वेदधर्मज्ञा विप्राः सहस्राद्येकान्ता यावन्तो यथायोग्यं
पर्षद्यतिवर्जम् । पर्षद्दक्षिणा च लक्षगवादि किञ्चिदन्तं यथायोग्यं कृच्छ्र-
संख्या वा । पर्षत्तुष्टिर्वा । तत्र सकृदाप्लुत्य संचलो वाग्यतः स्नात्वाऽऽर्द्र-
वासाः पर्षद्दक्षिणां दत्त्वा पापं व्याख्याय प्रायश्चित्तं तद्व्रतमादाय पुनः
स्नात्वा व्रतं चरेत् । पर्षच्च ब्रूयात् । न चेत्तत्समा स्यात् । अज्ञात्वा वदे-
च्चेत्तत्पापं सर्वमापतेत् । पर्षन्मतं विना कुर्वन्दिगुणं कुर्यात् । केशरक्षार्थं
च द्विगुणं चरेत् । विद्वद्विप्रस्त्रीणां वपनं नेष्यते ।

इति स्मृत्यर्थसारे प्रकाशप्रायश्चित्तम् ।

अथ रहस्यप्रायश्चित्तम्—तत्र कर्तृव्यतिरिक्तैरविज्ञातदोषो रहस्यप्रायश्चित्तं
चरेत् । अविद्वान्स्तु मुखान्तरेण रहस्यप्रायश्चित्तं ज्ञात्वा रहश्चरेत् ।
स्त्रीशूद्राश्चैवं जपहोमवर्जम् । तत्राऽऽहारविशेषानुक्तौ पयःप्रभृतयः ।
कालविशेषानुक्तौ संवत्सरादयः । देशविशेषानुक्तौ शिलोच्चयादयो गौत-
मोक्ताः । तत्र जपेषु ऋषिदैवतच्छन्दोविनियोगा विज्ञेयाः । अमत्या
ब्राह्मणवधेऽनशंस्त्रिरात्रमन्तर्जले मग्नं ऋतं च सत्यं चेत्यधमर्षणसूक्तं
त्रिरावर्त्य त्रिरात्रान्ते पयस्विनीं गां दत्त्वा शुध्येत् । गोदानाशक्तौ

सध्याहृतिकाष्पोडश प्राणायामान्प्रतिदिनं समावर्त्य शुध्येत् । अभ्यासे तु त्रिंशद्वात्रव्रतस्थः प्राणायामैः श्रान्तोऽघमर्षणं जपेत् । महापापैः शुध्येत् । मत्या चेत्प्राग्बोद्ध्वा निष्क्रम्य स्नातः शुचिवस्त्रो जलान्ते स्थण्डिलमुपलिप्य सकृत्क्लिन्नवासाः सकृत्पवित्रपाणिनाऽकांभिमुखोऽघमर्षणं प्रातः शतं मध्याह्ने शतम्पराह्णे शतमुदितनक्षत्रदर्शने चापरिमितं जपेत् । प्रसूतिमात्रं यावकं पिबेत् । सप्तरात्रादुपपापैर्द्वादशरात्रान्महापापसमैर्विंशतिरात्रान्महापापैः शुध्येत् । अन्यमहापापे मत्वाऽभ्यासे चैवम् । निर्गुणस्य ब्राह्मणस्य वधे तु प्राग्बोद्ध्वा निष्क्रम्य प्रवृद्धाश्वाचष्टसहस्राहुतीर्जुहुयात् । अनुग्राहककर्तुश्चैवम् । निर्गुणवधे गुणवतो हन्तुश्चिरात्रोपोषणं त्रिषवणस्नानं त्रिरघमर्षणजपश्च । प्रयोजकानुमतिकर्तुश्चैवम् । निमित्तकर्तुरघमर्षणस्यैवं त्रिर्जपः । इति स्मृत्युक्तं ज्ञेयम् । इदं प्रायश्चित्तजातं यागस्थस्त्रीक्षत्रवैश्येष्वात्रेय्यामाहिताग्निपत्न्यां गर्भिण्यामविज्ञाते च गर्भे चतुर्थांशन्यूनं कार्यम् । यद्वाऽहोरात्रोपोषितो रात्राबुदवासं कृत्वोत्तीर्य लोमभ्यः स्वाहेत्याद्यैरष्टभिर्मन्त्रैः प्रत्येकं पञ्च पञ्चाऽऽज्याहुतीरेवं चत्वारिंशज्जुहुयात् ।

इति ब्रह्महत्यादिप्रायश्चित्तम् ।

अथ सुरापाने प्रायश्चित्तम्—तत्र मत्या पैष्ट्याः सकृत्पाने गौडीमाष्योः पानावृत्तौ च त्रिरात्रोपोषितः कूष्माडीमिर्कग्भिश्चत्वारिंशदधृताहुतीर्जुहुयात् । त्रिरात्रोपवासाशक्तौ मासं प्रत्यहं षोडशकृत्वोऽपनः शोशुचदधम् ० । प्रति स्तोमेभिरुषसं वसिष्ठाः ० । महित्रीणामवोस्तु ० । एतोन्विन्द्रं स्तवाभेत्येषामन्यतमं जपेत् । मत्या चेन्महापापेऽब्दं प्रत्यहम् । देवकृतस्यैनस इत्यादिभिर्मन्त्रैर्होमः । नम इदुग्रं नम आविवासेत्यस्य वा जपं कुर्यात् । महापापाभ्यासे तु समाहितो गामनुगच्छेच्चाब्दम् । भिक्षाशी पावमानीं जपेत् । महापापसमुच्चये चैवम् ।

इति सुरापानप्रायश्चित्तम् ।

अथ सुवर्णस्तेये प्रायश्चित्तम्—तत्र ब्राह्मणसुवर्णहारी जले स्थित एकादशरुद्रजापी त्रिरात्रोपोषितः शुध्येत् । यद्वा भस्मच्छत्रो भस्मशय्याशयनो ब्रह्मवधात्सुरापानात्सुवर्णस्तेयाद्भुतल्पगमनाच्च शुध्येत् । अत्यन्तनिर्गुणब्राह्मणसुवर्णहरणे त्वस्य वामस्य पलितस्य होतुरिति सूक्तं सकृज्जपेत् । यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवमित्यादि वैषषड्भक्तं शिवसंकल्प-

सूक्तं जपेत् । सुवर्णन्यूनपरिमाणस्तेये चैवम् । अनुग्राहकप्रयोजकानां चैवम् ।

इतिसुवर्णस्तेये प्रायश्चित्तम् ।

अथ गुरुतले प्रायश्चित्तम्—तत्रामत्या गुरुपत्नीं गतस्त्रिरात्रोपोषितः सहस्रशीर्षा पुरुष इति षोडशर्चं सूक्तं चत्वारिंशत्संख्यया जपं होमं चाऽऽवर्त्यान्ते पयस्विनीं गां दत्त्वा शुध्येत् । सुरापानसुवर्णस्तेये चैवं वा । यद्वा गुरुतल्पगो हविष्पान्तमजरं स्वविदीति सूक्तं न तमंहो न दुरितमिति सूक्तं वा, इति वा इति मे मन इति सूक्तं वा सहस्रशीर्षा पुरुष इति सूक्तं वा प्रत्यहं वा षोडशकृत्वो जपित्वा मासेन शुध्येत् । मत्या चेद्देवकृतस्यैनस इत्याद्यैर्मन्त्रैः शाकलहोमः । महापातकावृत्तौ व्याहृतिभिस्तिर्ललक्षहोमः । व्यभिचारिणीगमने तु हविष्पान्तं वा पावमानीर्वा जनापं वा वालसिल्यान्वा निवित्प्रैषान्वा वृषाकपिं वा होतृबुद्रान्वा सकृज्जपित्वा शुध्येत् । गुरुतल्पातिदेशेष्वतिपातकेषु पादोनं योज्यम् । गुरुतल्पसमेषु पातकेष्वर्धोनं सर्वत्रैवम् । महापातकिसंसर्गं च यस्य येन सह संसर्गस्तस्यैव स प्रायश्चित्तं कुर्यादिति गुरुतले ।

इति महापातकप्रायश्चित्तम् ।

उपपातकानां रहः प्राणायामशतम् । यद्वा महापातके प्राणायामचतुःशतम् । अतिपातके त्रिशतम् । अनुपातके द्विशतम् । उपपातके शतम् । सर्वत्राभ्यासे द्विगुणम् । मत्या त्रिगुणम् । मत्याऽभ्यासे चतुर्गुणम् । प्रकीर्णकेषूपपापेषु चतुर्थांशप्राणायामाः । यद्वा प्रकाश उपपापे यत्र चान्द्रत्रयं तत्र तत्सहस्रप्राणायामाः । यद्वा गायत्र्या लक्षजपो महापापे । पादोनमतिपापे । अर्धमनुपापे । पादमुपपापे । तच्चतुर्थांशं प्रकीर्णकेषु चरेत् । यद्वा गायत्र्या व्याहृतिभिर्वा तिललक्षहोमो महापापे । अतिपातकादिषु पादोनादिकम् ।

इति स्मृत्यर्थसारे रहस्यप्रायश्चित्तम् ।

अथ कृच्छ्राणां लक्षणम्—तत्र व्रताङ्गभूता धर्मा यमा नियमाश्च । ब्रह्मचर्यं दया क्षान्तिर्दानं सत्यमकौटिल्यमहिंसाऽस्तेयं माधुर्यं दमश्चेति दशयमाः । स्नानमौनोपवासेज्यास्वाध्यायोपस्थनिग्रहगुरुशुश्रूषाशौचाक्रोधाप्रमादा इति दश नियमाः । सांतपने कृच्छ्रे पूर्वद्युरनाहारो गोमूत्रगोमयक्षीरदाधिसर्पिःकुशोदकान्येकीकृत्य पीत्वा परेद्युरपवसेत् । एष द्विरात्रः सांतपनः कृच्छ्रः । पूर्वद्युरपोष्यापरेद्युरिमानि समन्त्रकं स्वयं

संपूज्य हुत्वा समन्त्रकं प्राशनं यदा तदा ब्रह्मकूर्चसंज्ञकम् । गोमूत्रं
गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकं पञ्चगव्यसंज्ञकम् । तत्र ताम्रवर्णाया
गोमूत्रम् । श्वेताया गोमयम् । पीतायाः क्षीरम् । नीलाया दधि ।
कृष्णायाः सर्पिर्ग्राह्यम् । यद्वा सर्वं कापिलमेव । अलाम्बे सर्ववर्णानां
सर्वं ग्राह्यम् । गोमूत्रेऽष्ट माषाः प्रमाणम् । गोमये षोडश माषाः । क्षीरे
द्वादश माषाः । दधि दश माषाः । सर्पिष्यष्ट माषाः । कुशोदके तदर्धम् ।
गायत्र्या गोमूत्रम् । गन्धद्वारामिति गोमयम् । आप्यायस्वेति क्षीरम् ।
दधिक्रावण इति दधि । तेजोऽसि शुक्रमसीत्याज्यम् । देवस्यत्वेति कुशो-
दकम् । एतत्पञ्चगव्यं सप्तपत्रैरच्छिन्नाग्रैः शुक्वर्णैः कुशैरिरावतीदं
विष्णुर्मानस्तोके शंवतीत्यन्ताभिरग्नौ हुत्वा हुतशेषं प्रणवेनाऽऽलोक्ष्य
तेनाभिमन्त्र्य तेनोद्धृत्य तेनैव पिबेत् । मध्यमेन पलाशपत्रेण पद्मपत्रेण
स्वर्णपात्रेण ताम्रपात्रेण वा ब्रह्मतीर्थेन वा पिबेत् । एतद्ब्रह्मकूर्चसंज्ञकं
होमसहितं विज्ञेयम् । स्त्रीशूद्रौ तु विप्रैः कारयित्वा तूष्णीं पिबेताम् ।
ब्रह्मकूर्चत्रिरात्राभ्यासे यतिसांतपनम् । गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः
कुशोदकम् । एकैकं प्रत्यहं पीत्वैकरात्रोपवासे सांतपनकृच्छ्रः साप्ता-
हिकः । एषु शक्त्याद्यपेक्षया योज्यम् । एवमुत्तरत्रापि योज्यम् । महा-
सांतपनं तु गोमूत्रगोमयक्षीरदधिसर्पिषामेकैकं त्र्यहमावर्त्य पञ्चदशा-
हिकं स्यात् । यद्वा गोमूत्रगोमयक्षीरदधिसर्पिःकुशोदकानां षण्णामेकै-
काहं त्र्यहमावर्त्य त्र्यहमुपवास एकविंशतिरात्रकं महासांतपनम् ।
यतिमहासांतपनं तु गोमूत्रादीनां षण्णामेकैकस्य द्वादशहोत्राभ्यासे
स्यात् । तप्तकृच्छ्रश्च तप्तक्षीरघृतोदकानामेकैकं प्रत्यहं पीत्वैकरात्रोपवासे
स्यात् । यद्वोष्णजलक्षीरघृतोष्णोदकवाष्पमारुतानां चतुर्णां त्रिरभ्यासे
द्वादशरात्रस्तप्तकृच्छ्रः स्यात् । तत्र जलं त्रिपलं क्षीरं द्विपलं सर्पिः पल-
मानं पिबेत् । उष्णोदकवाष्पमानं त्रिरात्रस्य पूरणमात्रम् । पादकृच्छ्र
एकभक्तेन नक्तेनायाचितेनोपवासेन चैवं स्यात् । तत्र ग्राससंख्यैकभक्ते
पञ्चदश षड्विंशतिर्वा ग्रासाः । नक्ते द्वादश वा द्वाविंशतिर्वा ।
अयाचिते तु चतुर्विंशतिरेव । सर्वे ग्रासाः कुक्कुटाण्डप्रमाणा आस्य-
प्रवेशप्रमाणा वा ग्राह्याः । अनयोः पक्षयोः शक्त्या विकल्पः । यद्वैवं
पादकृच्छ्रः । एकभक्तत्रयं पादकृच्छ्रः शूद्रस्य देयः । नक्तत्रयं पादकृच्छ्रो
वैश्यस्य । अयाचितत्रयं पादकृच्छ्रो राज्ञः । उपवासत्रयं पादकृच्छ्रो

विप्रस्येति व्यवस्था च । अर्धकृच्छ्रस्त्वयाचितोपवासपादाभ्यां स्यात् ।
 षादोनकृच्छ्र एकभक्तायाचितोपवासपादैः स्यात् । प्राजापत्यकृच्छ्र
 एकभक्तनक्तायाचितोपवासैस्त्रिरावृत्तैः प्रातिलोभ्येन त्रिरावृत्तैर्वा बाला-
 तुराथ स्यात् । एकभक्तत्रयनक्तत्रयायाचितत्रयोपवासत्रयैः प्राजापत्यः
 स्याच्छक्तानामुपवासः प्रातिलोभ्येन वा । अतिकृच्छ्रस्तु पाणिपूरणमा-
 भ्रान्नभोजनयुक्तो न ग्राससंख्याकः । यद्वैकैकग्रासाशी भोजनदिने
 स्याच्छक्तस्यैषोऽतिकृच्छ्रः । शेषं पूर्ववत् । कृच्छ्रातिकृच्छ्रः पयसैकविंश-
 तिरात्रैः स्यात् । यद्वा द्वादशरात्रमम्बुमक्षणे कृच्छ्रातिकृच्छ्रं स्याच्छक्तस्य ।
 घराके द्वादशाहोपवासी स्यात् । सौम्यकृच्छ्रस्तु पिण्याकमोदनाग्रनि-
 स्त्रावं तक्रमुदकं सक्तुंश्च पञ्चदिनेषु क्रमात्प्राश्य षष्ठे ह्युपवासः स्यात् ।
 पिण्याकादीनां परिमाणं प्राणयात्रामात्रमेव स्यात् । पिण्याकसक्तुतकै-
 रुग्रहं चतुर्थेऽह्नुपवासो वा सौम्यकृच्छ्रः स्यात् । चान्द्रायणं तु शुक्ल-
 प्रतिपदादिदिनेषु मयूराण्डप्रमाणग्रासानामेकैकं वृद्ध्या पौर्णमास्यां
 पञ्चदश ग्रासाः स्युः । ततः कृष्णप्रतिपदादिष्वेकैकग्रासद्वासोऽर्थादमा-
 वास्यायामुपवासश्चान्द्रायणं यवमध्यं स्यात् । पिपीलिकामध्यं तु कृष्ण-
 प्रतिपदादिप्रक्रमे पौर्णमास्यन्तं स्यात् । सर्वत्र तिथिवृद्धिद्वासे ग्रासवृ-
 द्धिद्वासः । यद्वा चत्वारिंशदधिकशतद्वयग्रासानां यथाकथंचिदावृत्त्या
 मासेन चान्द्रायणं स्यात् । पञ्चविंशत्यधिकशतद्वयग्रासानामावृत्तौ मासेन
 चान्द्रायणं स्यात् । यतिचान्द्रायणं प्रत्यहं दिवाऽष्टाष्टग्रासैर्मासेन स्यात् ।
 शिशुचान्द्रायणं तु प्रत्यहं दिवा चतुर्ग्रासै रात्रौ चतुर्ग्रासैर्मासेन स्यात् ।
 ऋषिचान्द्रायणं तु प्रत्यहं त्रिभिस्त्रिभिर्ग्रासैर्मासेनैव स्यात् । यतिचान्द्रा-
 यणादिषु यथाकथंचिद्भिन्निशद्दिनमासो न चान्द्रगतित्वत् । सौमायनं तु
 गोक्षीरं स्तनचतुष्टयजं सप्तरात्रं पिबेत् । स्तनत्रयात्सप्तरात्रम् । स्तनद्व-
 यात्सप्तरात्रम् । स्तनैकेन षड्रात्रम् । त्रिरात्रं वायुमक्षिता चान्द्रायण-
 धर्मता च ।

इति कृच्छ्रचान्द्रायणादिलक्षणम् ।

अथ चान्द्रायणसाधारणधर्माः—त्रिकालं द्विकालं वा स्नानम् । तप्तकृच्छ्रे
 सकृत्स्नानम् । सर्वत्र स्नाने मार्जनाद्यधर्मर्षणादि कृत्वोत्तीर्य सौरमन्त्रेण
 सावित्र्या वा सूर्योपस्थानम् । ततः पुण्यमन्त्रं गायत्रीं चाष्टसहस्रं शतं

वा शक्त्या जपेत् । चतुर्भिक्षायावकपयोदधिधृतमूलफलकन्दादिहवि-
ष्यान्नमुच्यते । तद्धविष्यमाप्यायस्वेत्यभिमन्त्र्य ग्रासान्गायत्र्याऽभि-
मन्त्रयेत् ।

अथ प्रत्याम्नायो वक्ष्यते—प्राजापत्ये धेनुप्रदानं तन्मूल्यदानं गोदानं
वा तन्मूल्यदानं वा । तच्च गोमूल्यं निष्कं निष्कार्धं निष्कपादं
वा दद्यात् । अत्यशक्तौ तदर्धं तत्समभूधनधान्यवस्त्रादीन्वा दद्या-
द्द्वादशब्राह्मणभोजनं वा । तावद्भूधनधान्यवस्त्रादिदानं वा संहि-
तापारायणं वा गायत्र्ययुतजपो वा । तिलहोमसहस्रं वा । प्राणायाम-
शतद्वयं वा शक्त्या कुर्यात् । धेनुभोजनाद्यशक्त्यपेक्षया द्वित्रिचतुःपञ्चष-
ड्गुणं वर्धते । उपवासस्थान एकविप्रभोजनं तावद्धनधान्यवस्त्रादिदानं
वा । शक्त्या द्विगुणादिवृद्धिश्च । गायत्रीसहस्रजपो वा द्वादश
प्राणायामा वा शक्त्या कार्याः । चान्द्रायणस्थानेऽष्टौ प्राजापत्याः ।
तप्तकृच्छ्रे षट् । अतिकृच्छ्रे त्रयः कार्याः । सुखसाध्येषु तु चान्द्रायणे त्रयः
कार्याः । तप्तकृच्छ्रे सार्धकायद्वयम् । अतिकृच्छ्रे महासांतपने च कायद्व-
यम् । पराके पञ्च त्रयो वा कायाः कार्याः ।

अथ कृच्छ्रस्थाने तीर्थप्रत्याम्नायो वक्ष्यते—

वेदे तीर्थे च देवे च यज्ञे चैवौषधे गुरौ ।
यादृशीं भावनां कुर्यात्सिद्धिर्भवति तादृशी ॥
क्षेत्राग्न्यापः सुरा विप्रा गौर्गुरुस्तीर्थमुच्यते ।
निवासहोमस्नानार्चातोषपोषैः पुनाति तत् ॥

अथ पुराणेभ्यः सर्वतीर्थप्रत्याम्नाये किञ्चिन्मूलमुच्यते—

ब्रह्मविष्णुशिवा देवा इन्द्रोऽग्निर्यमनिर्ऋती ।
वरुणः श्वसनो यक्षः सोमः सूर्यो गुहो गणाः ॥
एते स्वयं तीर्थभूतास्तीर्थैः सिद्धिमवाप्नुवन् ।
मनवो वसवो रुद्रा आदित्या मरुतोऽनिलाः ॥
विश्वे देवास्तुषाः साध्या नागा यक्षाश्च राक्षसाः ।
इत्याद्यनेकदेवाश्च तीर्थैः सिद्धिमवाप्नुवन् ॥
भृगवोऽङ्गिरसोऽगस्त्यविश्वामित्रात्रिकश्यपाः ।
वसिष्ठाद्या महात्मानस्तीर्थैः सामर्थ्यमाप्नुवन् ॥

हरिश्चन्द्रो नलो वैन्यः पुरुकुत्सः पुरुखाः ।
 सगरः कार्तवीर्याद्यास्तीर्थे राज्यमवाप्नुवन् ॥
 इन्द्रभैरवरामाद्या गौतमाद्या महर्षयः ।
 ब्रह्महत्यादिपापानि तीर्थैरेव व्यपोहयन् ॥
 विश्वामित्रः सपुत्रस्तु महापापं व्यपोहयत् ।
 सुतीर्थतपसा ब्राह्मणं प्राप्य वासिष्ठशापतः ॥
 त्रिशङ्कुमपि चण्डालं विप्रं कृत्वाऽप्ययाजयत् ।
 तं तु तेनैव देहेन स्वर्गलोकमवेशयत् ॥
 अनुषोष्य त्रिरात्रादि तीर्थान्यनुपगम्य च ।
 अदत्त्वा काञ्चनं गाश्च दरिद्रो नाम जायते ॥
 व्रतोपवासकृच्छ्रादीनकृत्वा तीर्थसेवनम् ।
 अदत्त्वाऽन्नाश्ववस्त्रादि दरिद्रो जायते ध्रुवम् ॥
 तथा देवीपुराणे—पाण्डवा राज्यलाभाय दुरितोपशमाय च ।
 श्रीकृष्णनारदव्यासश्रीकण्ठेन्द्राजलोमशैः ॥
 मार्कण्डेयपुलस्त्याजसप्तर्षिप्रमुखैस्तथा ।
 द्वादशद्वादशाब्दानि कृच्छ्राण्यादाय भक्तितः ॥
 तीर्थैरकुर्वन्नित्यादि पुराणे श्रूयते कथा ।
 विश्वनाथेन यतिना निर्बीजेन महात्मना ॥
 विंशत्यब्दाच्छताब्दान्तं सर्वदा तीर्थसेवनात् ।
 बहुस्मृतिपुराणज्ञैर्बहुभिः सहचारिणा ।
 कृत्स्नं तीर्थफलं प्रोक्तं यन्न साध्यमपीर्यते ॥
 मार्कण्डेयाजहनुमज्जाम्बवद्रोमशादिभिः ।
 कृत्स्नं तीर्थफलं प्रोक्तं गोदानक्रतुसाम्यतः ॥
 द्वापरान्ते पुराणानि व्यासः स्वल्पायुषां नृणाम् ।
 हिमान्तादक्षिणे देशे संकोच्य व्यवहारयेत् ॥
 भूतप्रेतपिशाचाश्च पितरो ब्रह्मराक्षसाः ।
 अद्यापि प्रवदन्त्येवं कृच्छ्रार्थं तीर्थमर्थवत् ॥
 सूतः शूद्रः पुराणज्ञस्तीर्थैर्विप्रोऽभवत्ततः ।
 शिष्यान्नुचेऽक्षराङ्कानि तीर्थानि कुरुतेति वै ॥
 ते विश्वकर्मणे प्रोचुर्विश्वकर्मा च सर्ववित् ।
 शिष्यैः कृच्छ्राक्षराङ्कानि सर्वतीर्थेष्वकारयत् ॥

अद्यापि कृच्छ्रवर्णाङ्का दृश्यन्ते तत्र तत्र च ।

लिप्यङ्कानामविज्ञाने प्रकारान्तरमुच्यते ॥

पुराणस्मृतिविद्विष्णुप्रोक्ततीर्थफलाप्तये ।

उक्तं लोकोपकारार्थं यत्रासाध्यमपीयेते ॥

पुराणस्मृतिषु तीर्थकल्पेषु च तीर्थफलं गोदानसमं दशधेनुसमं शत-
धेनुसमं गोसहस्रफलमग्निहोत्रफलं पुण्येष्टिफलं यज्ञफलमश्वमेधफलमु-
पपातकनाशनं पातकनाशनं महापातकनाशनमुपवासफलं त्रिरात्रफलं
कृच्छ्रफलं चान्द्रायणफलं पक्षोपवासफलं मासोपवासफलं षण्मासोप-
वासफलं संवत्सरोपवासफलं लभेदित्यादिवचनेष्वर्थवादप्रशंसां विसर्ज्य
सर्वत्र योग्यतया कृच्छ्राणि परिकल्प्य तीर्थफलान्युक्तानि । तीर्थसंग्रह-
कारैरपि तथैवोक्तानि । कायकृच्छ्राचरणाशक्तानां पातित्यपरिहारार्थ-
मस्माभिस्तथैवोच्यन्ते । तत्र मागीरथ्यां स्नानं षष्टियोजनगतानां
षडब्दकृच्छ्रसमम् । अत्र यात्रा योजनवृद्धौ । योजनस्यार्धकृच्छ्रा वृद्धिः ।
पूर्वं सप्तमातृका राक्षसभयाज्ञद्योऽभूवन् । मये गते पुनर्देव्योऽभूवन् ।
ततो नदीशुष्कखातेषु मागीरथी सप्तवर्णां सप्तधाऽवहत । तासु विष्णु-
गङ्गादिसप्तमातृकाणां सकृत्सप्तगङ्गासु स्नानं पादकृच्छ्रसमम् । प्रयागे
द्विगुणम् । गङ्गाद्वारे गङ्गासागरसंगमे चैवम् । वाराणस्यां गङ्गाऽतीव
दुर्लभा । समुद्रान्ते पुण्यं न गण्यते । वाराणस्यां महापातकं न प्रवि-
शति । तत्र मृतो मुक्त एव । सर्वयात्रा देशान्तरभाषाभेदविषये महाप-
र्वतव्यवधाने महानदीव्यवधाने षट्चतुर्द्वियोजनन्यूना भवति । यमुनायां
स्नाने तु द्वादशकृच्छ्रसमं विंशतियोजनगतस्य । मथुरायां द्विगुणम् ।
सरस्वत्यां चतुरब्दकृच्छ्रसमं चत्वारिंशद्योजनगतस्य । प्रभासे द्वारवत्यां च
द्विगुणम् । एतयोर्नद्योर्योजनवृद्धौ पादकृच्छ्रवृद्धिः । दृषद्वतीशतद्रुविषा-
शावितस्ताशरावतीमरुवृद्धासिक्रीमधुमतीपथस्वतीघृतवत्यादिदेवनदीषु
स्नानं त्रिंशत्कृच्छ्रसमं पञ्चदशयोजनगतस्य । चन्द्रमागावेत्रवतीशरयूगौ-
मतीदेविकाकौशिकीनित्यजलामन्दाकिनीसहस्रवक्त्रापौनःपुन्यापूर्णपु-
ण्याबाहुदावारुणीगण्डक्यादिदेवनदीषु स्नानं षोडशकृच्छ्रसमं द्वादश-
योजनगतस्य । एतासु परस्परसंगमे त्रिनदीफलम् । अन्यासु समुद्रगासु
महानदीषु षट्कृच्छ्रफलम् । महानदेषु महानद्यर्धफलम् । शोणमहा-

मदे गङ्गार्धफलम् । नदेषु नद्यर्धफलम् । वैरोचननदेषु महानद्यर्ध-
 फलम् । पुष्करतीर्थेषु प्रयागसमम् । सनिहत्यां तथैव । माहिष्मत्यादौ
 नित्यप्रत्यक्षाग्नौ होमो दशगुणः । गयां महानदीं सेतुरामेश्वरं सोमेश्वरं
 भीमेश्वरं श्रीरङ्गं पद्मनाभं पुरुषोत्तमं नैमिषं बदर्याश्रमं पुण्यारण्यं धर्मा-
 रण्यं कुरुक्षेत्रं श्रीशैलं महालयं केदारं पुष्करं रुद्रकोटिं नर्मदामाम्नातके-
 श्वरं कुब्जाम्रं कोकामुखं प्रभासं विजयेशं पुरीन्द्रं पञ्चनदं गोकर्णं शङ्कु-
 कर्णं मद्रकर्णमयोध्यां मथुरां द्वारवतीं मायामवन्तीं गयां काश्चीं शाल-
 ग्रामं शंभलग्रामं कम्बलग्राममेवमादिमुक्तिक्षेत्राणि संसेव्य लभन्ते गया-
 स्नानम् । सर्वेभ्यो वाराणसी विशिष्टैव । महाप्रयागे मृतस्यापि मुक्तिरेव ।
 अन्यप्रयागे मरणं मुक्तिबीजम् । नर्मदायां चतुर्विंशतियोजनगतस्य चतुर्विं-
 शतिकृच्छ्रसमम् । कुब्जिकासंगमे द्विगुणम् । मुक्तितीर्थे चतुर्गुणम् ।
 ताप्यां दशकृच्छ्रसमं दशयोजनगतस्य । पयोष्ण्यामष्टयोजनगतस्याष्टकृ-
 च्छ्रसमम् । तत्र संगमे द्विगुणम् । गोदावर्यां षष्टियोजनगतस्य त्र्यब्दं
 कृच्छ्रसमम् । तत्र त्रिंशद्योजनगतस्यैकादशतीर्थेषु प्रतिलोमानुलोमस्नानं
 षष्टिकृच्छ्रसमम् । वज्रसंगमप्रयागे तद्विगुणम् । सप्तगोदावर्यां भीमे-
 श्वरे त्रिगुणम् । कुशतर्पणे गयासमम् । वज्ररायां द्वादशयोजनगतस्य
 द्वादशकृच्छ्रसमम् । गोदावर्यां विश्लेषे समुद्रान्तं षड्गुणम् । प्रणीतायां
 चतुःकृच्छ्रसमं चतुर्योजने । पूर्णायां तदर्धं तदर्धयोजने । कृष्णावेण्यायां
 पञ्चदशयोजने पञ्चदशकृच्छ्रसमम् । तुङ्गभद्रायां विंशतियोजनगतस्य
 विंशतिकृच्छ्रसमम् । पंपायां तद्विगुणम् । हरिहरे त्रिगुणम् । भीमरथ्यां
 दशकृच्छ्रसमं दशयोजनगतस्य । ककुत्स्थतीसङ्गे पञ्चदशकृच्छ्रसमम् ।
 तुङ्गभद्रावरदासंगमे पञ्चविंशतिकृच्छ्रसमम् । मलापहारिण्यामष्टकृच्छ्र-
 सममष्टयोजनगतस्य । निवृत्यां षट्कृच्छ्रसमं षड्योजनगतस्य । गोदावर्यां
 यात्रावृद्धौ योजने पादकृच्छ्रः । सिंहस्थे गुरौ सर्वत्र जाह्नवीसमम् ।
 कन्यास्थे गुरौ कृष्णावेण्यां सर्वत्र जाह्नव्यर्धं च ग्राह्यम् । तुङ्गभद्रायां
 तुलास्थे गुरौ जाह्नव्यर्धम् । कर्कटे गुरौ च कृष्णावेण्यायां मलहारि-
 संगमे प्रयागे त्रिंशद्योजनगतस्य त्रिंशत्कृच्छ्रसमम् । भागीरथीसंगमे
 प्रयागे द्विगुणम् । तुङ्गभद्रासंगमे प्रयागे त्रिगुणम् । निवृत्तिसंगमे प्रयागे
 चतुर्गुणम् । ब्रह्मेश्वरे पञ्चगुणम् । पातालगङ्गायां मलिकार्जुनदर्शने
 षड्गुणम् । ततः पूर्वं षष्टिकृच्छ्रसमम् । लिङ्गालये द्विगुणम् । समुद्रसंगमे

चैवम् । कावेर्यां प्रतीचीमहानद्यां पञ्चदशकृच्छ्रफलं पञ्चदशयोजनगतस्य ।
ताम्रपर्णीकृतमालापयस्विनीषु द्वादशयोजनैर्द्वादशकृच्छ्रसमम् । सह्यापा-
दोद्भवा वेदाद्रिपादोद्भवा नद्यः स्वदैर्घ्यानुसारेणैकद्वित्रिकृच्छ्रफलदाः ।
विन्ध्यश्रीशैलोद्भवा द्विगुणाः । हिमोद्भवास्त्रिगुणाः । स्मृतौ पुराणे च
यथाकथंचिदनुक्तौ कुल्यास्त्रिरात्रफलदाः । अल्पनद्यः कृच्छ्रफलदाः ।
सर्वत्र यात्रानुक्तौ कृच्छ्रसंख्यया योजनसंख्या स्यात् । एकयोजनगमादि-
षड्योजनगताः सरितः कुल्याः । ततो द्वादशयोजनगता अल्पनद्यः ।
ततश्चतुर्विंशतियोजनगता नद्यः । समुद्रगाश्च महानद्यः । महानदीस-
माख्याश्रिताश्च महानद्यस्तत्रोपवाससहितं नदीस्नानं कृच्छ्रसमम् ।
योजनादर्वागपि सूनीगर्दभीशुनीचाण्डालीकष्टगादिनद्यः पापनद्यश्च
वर्ज्याः । सर्वत्र समुद्रस्नानं दर्शं कार्यम् । देवतसमीपे सरःसरिन्नदी-
संगमेषु सदा च कार्यम् । समुद्रस्नानं पञ्चदशकृच्छ्रसमं पञ्चदशयोजनग-
तस्य । प्रख्यातदेवतासमीपे तद्विगुणम् । तत्र स्नात्वा तद्देवदर्शने स्थाणा-
दर्शने च त्रिगुणम् । सेतौ त्रिंशत्कृच्छ्रसमं त्रिंशद्योजनगतस्य । स्नात्वा
रामेश्वरदर्शने षट्कृच्छ्रसमं विन्ध्यदेशीयानां । सेतुरामेश्वरे जाह्नव्यां च
त्रिगुणं फलम् । जाह्नवीकेदारयोस्तथैव । दक्षिणाब्धिदेशीयानां जाह्नव्यां
षड्गुणम् । गङ्गादेशीयानां तु सेतुरामेश्वरे षड्गुणम् । स्कन्ददर्शने
त्रिंशत्कृच्छ्रसमं त्रिंशद्योजनगतस्य च । यत्र गङ्गासंज्ञाऽस्ति तत्र
चैवम् । सर्वत्र माषामेदपर्वतादिना यात्राह्लासो भवत्येव । श्रीरङ्गपद्मना-
भपुरुषोत्तमचक्रकोटमहालक्ष्मीदर्शने लवणार्णवस्नाने त्रिंशद्योजनग-
तस्य त्रिंशत्कृच्छ्रसमम् । केदारे त्रिगुणम् । सर्ववैष्णवमाहेश्वरसौर-
शाक्तेयज्येष्ठादिपीठदर्शने पञ्चदशकृच्छ्रसमम् । प्रख्याते द्विगुणम् ।
अहोबलेऽपि तथैव । श्रीशैलप्रदक्षिणं षट्कृच्छ्रसमम् । श्रीशैल एकैक-
द्वारदर्शने द्वादशकृच्छ्रसमम् । अम्बेषु प्रख्याततीर्थदेवतादर्शनेषु षट्कृ-
च्छ्रफलम् । सिद्धक्षेत्रे स्वयंभुदर्शनमन्यक्षेत्रे स्वयंभुदर्शनं च त्रिकृच्छ्र-
समं द्वियोजनगतस्य । सर्वत्र कृच्छ्रसंख्यया त्रयोदशयोजनसंख्या विज्ञेया ।
यत्रयत्र यद्विशेषतया दृष्टं तच्च ग्राह्यम् । सर्वत्र देशकालविशेषेण फल-
विशेषोऽस्त्येव । सर्वत्रोक्तदशांशफलं तीरस्थस्य योजनादर्वागभवति
तत्रापि क्रोशसंख्यया तारतम्यमस्ति । सर्वत्र यात्रावृद्धौ यात्राफलम् ।

योजने योजन उपवासः । तथा सति षडुपवासाः प्राजापत्य इति कल्पना भवति ।

तिर्यग्यवोदराण्यष्टावूर्ध्वा वा ब्रीहयस्त्रयः ।

प्रमाणमङ्गलस्योक्तं वितस्तिर्द्वादशाङ्गुला ॥

वितस्तिर्द्विगुणाऽरत्निस्ततः किष्कुस्ततो धनुः ।

धनुःसहस्रे द्वे क्रोशंश्चतुष्क्रोशं तु योजनम् ॥

साधर्गव्यूतिदेशं च योजनं परिचक्षते ।

गव्यूतिं पञ्चसाहस्रधनुर्भिः प्रमिते विदुः ॥

यात्रासु नियमाः । एकमक्ताधःशयने अनृतौ ब्रह्मचर्यमित्याद्याः । तीर्थे स्नानजपतर्पणादि कार्यम् । दैवतेऽर्घ्यपाद्याक्षतगन्धार्यैर्नादि कार्यमित्यादि तीर्थप्रत्याम्नायो योज्यः । एवं स्थिते यथा मनः पूर्तं भवति तथा कार्यम् । परार्थे तु गन्ता षोडशांशं लभते । प्रसङ्गेन गन्ताऽर्धफलम् । अनुषङ्गेन तीर्थं प्राप्य स्नाने स्नानफलमेव न यात्राफलम् । पितृपितृव्यपितामहप्रपितामहमातुलश्वशुरपोषकार्थदगुर्वाचार्योपाध्यायार्थं तेषां पत्न्यर्थं मातृष्वसृपितृष्वस्रथं च स्नात्वा स्वयमष्टमांशं लभते । साक्षात्पित्रोः कुर्वन्पुत्रश्चतुर्थांशं लभते ।

दंपती च सपत्न्यश्च लभन्तेऽर्धं मिथः फलम् ।

अर्थिनां तु फलह्वासः शुश्रूषाफलमीदृशम् ॥

कर्कटादौ मासद्वये निरन्तरं रजस्वला महानद्यः समुद्रगाः । तास्वपि भागीरथी गोमती चन्द्रभागा सरस्वती सिन्धुमहानदी शरयूश्च त्रिरात्रं रजस्वलाः ।

शुष्यन्ति याः कुसरितो ग्रीष्मकाले न चोदकैः ।

पूर्यन्ते चैव वर्षासु दशाहान्ते रजस्वलाः ॥

कुल्या अल्पनद्यो नद्यश्च सप्ताहं पक्षं मासं ता रजस्वलाः । बापीकूपतडागादिषु स्वल्पोदकेषु पुराणोदकवर्जितेषु त्रिरात्रं रजस्वलात्वम् । अतस्तत्र स्नानतर्पणादिकमप्रशस्तत्वान्न कार्यम् । तीरवासिनां तु न निषेधः । सरस्वत्यन्यगङ्गा यमुना च सर्वे च नदाः कदाचिदपि न रजस्वलाः । स्मृतिपुराणेषु यत्र गङ्गायमुनासरस्वतीशब्दोऽस्ति तत्रापि रजोदोषो

नास्तीत्याहुः । अतीरवासिनामपि उपाकर्मणि चोत्सर्जने व्रतस्नाये चन्द्रसूर्यग्रहे च रजोदोषो नास्ति । क्षुद्रनद्यः सर्वा न रजस्वलाः ।

इति तीर्थविधिः ।

अथ महापातकेषु द्वादशवार्षिकादिव्रतस्थानेषु प्राजापत्यादयस्तत्प्रत्याम्नायाश्चोच्यन्ते—
तत्र द्वादशवार्षिके द्वादशदिनेष्वेकैकं प्राजापत्यं परिकल्प्यैवं कल्प्यमाने षष्ट्यधिकशतत्रिंशत्प्राजापत्या द्वादशवार्षिकेषु भवन्ति । तस्मान्महापातके त्वमत्या सकृत्करणे षष्ट्यधिकशतत्रयं कार्यांश्चेत् । तदशक्तौ षष्ट्यधिकत्रिंशद्वेनूर्दद्यात्तन्मूल्यं वा । गोमूल्यत्वेन षष्ट्यधिकत्रिंशन्निष्कान्वा निष्कार्धानि वा निष्कपादान्वा शक्त्या दद्यात् । मूल्यदानेऽप्यशक्तौ तावन्त उदवासाः कार्याः । तत्राप्यशक्तावेकैकस्य प्राजापत्यस्यायुतगायत्रीजपसंख्यया षट्त्रिंशल्लक्षसंख्याको गायत्रीजपः कार्यः । षष्ट्यधिकशतत्रयवेदपारायणानि वा कार्याणि । तावन्ति तिलहोमसहस्राणि वा । तावन्तः शतद्वयप्राणायामा वा । इत्यादि कृच्छ्रप्रत्याम्नायत्वेन षष्ट्यधितशतत्रयसंख्यया महापातकेषु योज्यम् । अतिपातकेषु पादन्यूनद्वादशाब्दनववार्षिकव्रतस्थाने सप्तत्यधिकशतद्वयं कार्याः कार्याः । तदशक्तौ धेनुदानादि कार्यम् । अनुपातकेषु षड्वार्षिकव्रतस्थाने साशीतिशतकायाः । धेन्वादयश्च तत्संख्याकाः । उपपातकबहुत्वे त्रैवार्षिकं व्रतं कार्यम् । तत्स्थाने त्रिवार्षिके नवतिसंख्याकाः कार्याः कार्याः । धेन्वादयश्च तत्संख्याकाः । एकैकोपपातकेषु त्रैमासिकव्रतमुक्तम् । तत्स्थाने सार्धसप्त कायाः प्रत्याम्नायश्च । धेन्वादयस्तत्संख्याकाः । वृषभैकादशगोदानसहितत्रिरात्रात्मका गोवधव्रते तु सार्धैकादश काया उपवासादयश्च तत्संख्याकाः । मासपयोव्रते सार्धकायद्वयं प्रत्याम्नायश्च तद्वत् । पञ्चगव्यमासे चैवम् । पराके तु कायत्रयं प्रत्याम्नायश्च तद्वत् । सप्ताहं सांतपने त्वर्धकाया इत्यादि । प्रकीर्णकेषु प्राजापत्यं पादादिकल्प्या कल्प्यम् । प्राजापत्यः षडुपवासा इति वा शक्त्या कल्प्यम् ।

अथ सर्वप्रायश्चित्तानि वक्ष्यन्ते—तत्र महापातकादवाचीनपापेषु बहुषु विविधेष्वज्ञातादिष्वत्यन्तगुणवानत्यन्तविरक्तः प्रतिनिमित्तं कर्तुमशक्तौ प्रायश्चित्तं षडब्दकृच्छ्रं साशीतिशतसंख्याकं प्राजापत्यं चरेत् । धेन्वादिप्रत्याम्नायं वा तत्संख्यया कुर्यात् । अभ्यासे द्विगुणं मत्या त्रिगुणं मत्याऽ-

भ्यासे चतुर्गुणम् । अत्यन्ताभ्यासे निरन्तराभ्यासे वा पञ्चगुणम् । बहुकालाभ्यासे षड्गुणम् । प्रकीर्णकेषु क्षुद्रपापेषु चातिबहुष्वमत्या कृतेषु प्रतिनिमित्तं कर्तुमशक्तौ प्रायश्चित्तमब्दकृच्छ्रं त्रिंशत्संख्याकप्राजापत्यं चरेत् । धेन्वादिप्रत्याम्नायं वा तत्संख्यया कुर्यात् । अभ्यासे द्विगुणं मत्या त्रिगुणम् । मत्याऽभ्यासे चतुर्गुणम् । अत्यन्ताभ्यासे निरन्तराभ्यासे वा पञ्चगुणम् । तथा बहुकालाभ्यासे षड्गुणम् । क्षुद्रपापेष्वज्ञातकृतेषु प्रतिनिमित्तं प्रायश्चित्ताशक्तौ कृच्छ्रातिकृच्छ्रचान्द्रायणानि कुर्यात् । तत्स्थाने द्वादश प्राजापत्यान्वा चरेत् । धेन्वादिप्रत्याम्नायं वा कृच्छ्रस्थाने तत्संख्यया कुर्यात् । अभ्यासे द्विगुणं मत्या त्रिगुणं मत्याऽभ्यासे चतुर्गुणम् । अत्यन्ताभ्यासे निरन्तराभ्यासे च पञ्चगुणम् । तथा बहुकालाभ्यासे षड्गुणम् । इदं प्रायश्चित्तचतुष्टयमुत्तमस्य । मध्यमस्य द्विगुणम् । जघन्यस्य त्रिगुणम् । इष्टापूर्तशुभाशुभमहाकर्मस्वनुपहतानामपि ज्ञात्विगाचार्ययजमानादीनां कृच्छ्रातिकृच्छ्रचान्द्रायणाख्यं सर्वप्रायश्चित्तं भवेत् । तत्स्थाने द्वादश प्राजापत्यान्वा तदर्धं वा वदन्ति ।

इति स्मृत्यर्थसारे सर्वप्रायश्चित्तविधिः ।

सर्वत्रानुक्तनिष्कृतौ कृच्छ्रातिकृच्छ्रचान्द्रायणानि समस्तव्यस्तरूपेण योग्यतया योज्यानि । क्षुद्रेषूपपापेषूपवासस्त्रिरात्रकाया वा योग्यतया योज्याः । अतिक्षुद्रेषु द्वादश षड्वा प्राणायामा योग्यतया योज्याः । स्त्रीशूद्राणाममन्त्रकाः प्राणायामाः । पुरुषाहारहन्तकाराग्रदानानि वा योज्यानि तावद्धनधान्यादिदानं वा कार्यम् । होमे भूर्भुवः स्वः स्वाहेत्याहुतिः कार्या । कर्मण्यङ्गलोपे भूर्भुवः स्वरितिजपः १०८ । वाग्यमलोपे विष्णुस्मरणं शिवस्मरणं वा । अज्ञातन्यूनसंपूर्णतार्थमच्युतस्मरणं शंभुस्मरणं वा कार्यम् ।

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु ।

न्यूनं संपूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥

अज्ञानादथवा लोभात्प्रच्यवेताध्वरेषु यत् ।

स्मरणादेव तद्विष्णोः संपूर्णं स्यादिति श्रुतिः ॥

इति पञ्चपुराणवचनम् ।

इति स्मृत्यर्थसारे सर्वप्रायश्चित्तविधिः समाप्तः ।

निष्कपरिमाणम् । निष्कश्च लोकशास्त्रयोरेकवाक्यतया माषाः, चत्वारिंशत् ४० । तदर्धं २० तदर्धं १० सुवर्णं तदशक्तौ रजतं वा । अष्ट-
प्राजापत्यैरेकं चान्द्रायणं षड्भिस्तप्त(मिर्वा)कृच्छ्रः । त्रिभिरतिकृच्छ्रः ।
एवमब्दव्रते त्रिंशत्संख्याकाः प्राजापत्याः ।

इति विश्वामित्रमहामहेश्वरनागमर्तृविष्णुमष्टोपाध्यायसूनुना
यज्वना श्रीधराचार्येण श्रुतिस्मृतिविदा कृते स्मृत्य-
र्थसारे प्रायश्चित्तप्रकरणं समाप्तम् ।